अनुवर्ग-सूची-कल्प

✽

रंगनाथन तथा नागर

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

WITH THE COMPLIMENTS OF

DR S R RANGANATHAN

भारतीय ग्रन्थालय संघ हिन्दी ग्रन्थमाला, ३

अनुवर्ग-सूची-कल्प

भारतीय ग्रन्थालय संघ

अध्यक्ष:

डॉ. श्री. रा. रंगनाथन, एम्. ए., डी. लिट्., एल्. टी., एफ्. एल्. ए.

मन्त्री:

श्री. स. दास गुप्त, बी. ए. (केन्टब), डिप्. लिब्. एस्. सी.

कोषाध्यक्ष:

श्री रामभद्रन बी. ए.; डिप. लिब्. एस्. सी.

हिन्दी ग्रन्थमाला

१. रंगनाथन (श्री. रा.): ग्रन्थ अध्ययनार्थ हैं, *Books are for use* का मुरारि लाल नागर द्वारा रूपान्तर. १९५०.
२. रंगनाथन (श्री. रा.) तथा नागर (मु. ला.): ग्रन्थालय प्रक्रिया. १९५१
३. रंगनाथन (श्री. रा.) तथा नागर (मु. ला.): अनुवर्ग-सूची-कल्प. १९५२.
४. रंगानाथन (श्री. रा.): ग्रन्थालय पंचसूत्र, Five laws of library science का रामस्वरूप गोयल तथा शिवनाथ राघव द्वारा रूपान्तर. (तैयार हो रहा है).

हिन्दी ग्रन्थमाला का प्राप्ति स्थान:

आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

अंग्रेज़ी ग्रन्थमाला

१. रंगनाथन (श्री. रा.): लायब्रेरी टूर, यूरोप एण्ड अमेरिका, १९४८: इम्प्रेशन्स एण्ड रिफ्लेक्शन्स. १९५०.
२. रंगनाथन (श्री. रा.), संपा.: पब्लिक लायब्रेरी प्रोविज़न एण्ड डाक्युमेन्टेशन प्रॉब्लम्स. १९५१.
३. रंगनाथन (श्री. रा.) तथा शिवरामन (के. एम्.): लायब्रेरी मेनुअल. १९५१.
४. रंगनाथन इदि.: इण्डियन लायब्रेरी डायरेक्टरी. १९५१.
५. रंगनाथन (श्री. रा.): लायब्रेरी बुक सेलेक्शन. १९५२.

अवगिल

इस सामान्य आख्या के साथ एक आवरण में त्रैमासिक अवदान ३१ मार्च ३० जून, ३० सितम्बर तथा ३१ दिसम्बर को प्रकाशित होते हैं।

हिन्दी ग्रन्थमाला, ३

अनुवर्ग - सूची - कल्प

(Classified Catalogue Code)

श्री. रा. रंगनाथन

तथा

मुरारि लाल नागर

१९५३

भारतीय ग्रन्थालय संघ

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता

काशमीरी गेट, दिल्ली

२ : ५५१थ

पंथ ५३
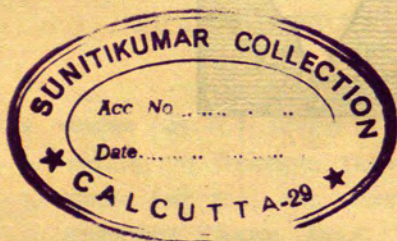
National Printing Works, Delhi.

विषय-सूची

ग्रन्थालय-शास्त्र-पंचसूत्री

ग्रन्थालयी सदासेवी पञ्चसूत्री-परायणः ।
ग्रन्था अध्येतुमेते च सर्वेभ्यः स्वं स्वमाप्नुयुः ।।
अध्येतुः समयं शेषेदालयो नित्यमेव च ।
वर्धिष्णुरेष चिन्मूर्तिः पञ्चसूत्री सदा जयेत् ।।

श्रीः

पूर्वपीठिका

ग्रन्थालय सूची के आन्तरिक स्वरूप का क्रमशः विकास हुआ है। उसकी तीन क्रमिक अवस्थाएं ग्रन्थकार, अनुवर्ण तथा अनुवर्ग-सूची हैं। अनुवर्ग-सूची सर्वान्तिम है। उसका विकास सबसे पीछे हुआ है। अतः स्वाभाविकतया उससे सम्बद्ध साहित्य तुलनात्मक दृष्टि से थोड़ा ही है। सूचीकरण सम्बन्धी सुव्यवस्थित कल्प के विषय में तो यह अभाव और भी अधिक स्पष्ट एवं निश्चित है। ग्रन्थकार-सूची के कल्पों की तो बड़ी भारी संख्या है—वे अत्यधिक हैं। सर्वानुवर्ण-सूची के कल्प भी पर्याप्त माने जा सकते हैं। किन्तु अनुवर्ग-सूची के लिए सर्वांगपूर्ण कल्पों की संख्या तो सर्वथा नगण्य सी है। इसी अभाव को ध्यान में रखकर यह छोटा सा प्रयत्न किया जा रहा है। इसके आधार मद्रास विश्वविद्यालय में २०-२५ वर्षों तक किए हुए परीक्षणात्मक प्रयोग हैं। साथ ही गत २० वर्षों में ग्रन्थालय-शास्त्र के छात्रों को यह विषय पढ़ाया भी गया है। इस अध्यापन के अनुभव को भी इस कल्प के निर्माण में आधार बनाया गया है।

यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ में उदाहरणों के क्रामक-समंक द्विबिन्दु वर्गीकरण पद्धति के अनुसार बनाये गये हैं, किन्तु सूची के निर्माण में इस ग्रन्थ की धाराओं के उपयोग के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि उस वर्गीकरण पद्धति को अपनाना ही पड़े। इसमें एक ही अपवाद है। वह है धारा ३१ तथा उसके उपभेद, जो अनुवर्ग निर्देशी संलेखों से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि जो ग्रन्थालय अन्य पद्धतियों का अनुसरण करते हों उनके लिए धारा ३१ तथा उसके उपभेद किसी काम के नहीं हैं। उनके लिए भी वे रुचिकर प्रतीत होंगे। कम से कम उनसे कुछ न कुछ मार्गप्रदर्शन तो हो ही सकेगा।

उपक्रमणिकाएं

आरम्भ के ८ अध्याय, अर्थात् अध्याय ०१ से ०८ उपक्रमणिकाओं से सम्बन्ध रखते हैं। वे विषय में प्रवेश कराते हैं। अध्याय ०१ में ग्रन्थालय-सूची के विकास की चर्चा है। अध्याय ०२ में अनुवर्ग-सूची में आने वाले संलेखों के विभिन्न प्रकारों की परिगणना है। अध्याय ०३ में ग्रन्थालय सूची के भौतिक स्वरूप

विशेषकर पत्रक-प्रकार का वर्णन है। अध्याय ०५ में उन संक्षिप्त रूपों की तालिका दी गई है जो संलेख बनाते समय काम आएंगे।

सूची-पत्रकों के व्यवस्थापन की धाराएं ०६ में दी गई हैं। अध्याय ०३ की लेखन-शैली की निर्देशक धाराएं तथा अध्याय ०६ की वर्णानुक्रमीकरण की धाराएं एक सूत्र में अनुस्यूत कर दी गयी हैं। **हमारे ग्रन्थालय-सूची-सिद्धान्त** (*Theory of library catalogue*) के अध्याय ६४ में वर्णानुक्रमीकरण के जिस रचनात्मक-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, उसका सर्वप्रथम उपयोग यहां किया गया है, यह हमारा विश्वास है। सम्भवतः अबतक किसी भी अन्य ग्रन्थ अथवा सूचीकरण की अन्य प्रणाली द्वारा वर्णानुक्रमीकरण को इस मात्रा तक यान्त्रिक नहीं बनाया गया है।

अनुगामी अध्याय में सूचीकरण की कतिपय परिभाषाओं के लक्षण संगृहीत किये गये हैं। इनसे प्रस्तुत अनुसन्धान में सुगमता होगी। उपक्रमणिका के अन्तिम अध्याय में सूचीकार के दृष्टिकोण से कृतियों का विश्लेषण दिया गया है। उसमें सामयिक प्रकाशन, समुच्चित, आवर्तित, पुस्तक, पृथक पुस्तक, संगत पुस्तक, विसंगत पुस्तक तथा अनेक-संपुटक पुस्तक आदि कृतियों के विभिन्न भेदों के लक्षण दिये गये हैं।

पुस्तक

अध्याय १ सबसे अधिक विस्तृत है। उसमें पृथक् पुस्तक के प्रधान संलेख लिखने की समस्त धाराएं दी गई हैं। इस प्रकार की पुस्तक के लिये जितने भी अतिरिक्त संलेख लिखने पड़ते हैं उनका वर्णन अनुगामी तीन अध्यायों में पाया जायगा। इन चार अध्यायों में प्रायः सभी मौलिक धाराएं आ जाती हैं। जो पुस्तकें दो या उससे अधिक संपुटों में होती हैं उनकी कुछ पृथक् विशेषताएं होती हैं। पंचम अध्याय में इन्हीं की चर्चा की गई है। संगत पुस्तकों से सम्बद्ध धाराएं षष्ठ अध्याय में दी गई हैं।

सामयिक प्रकाशन

अध्याय ७ तथा ८ में कुछ विशिष्ट वस्तुएं दी गई हैं। वे सामयिक प्रकाशनों से सम्बन्ध रखती हैं। सामयिक प्रकाशनों की अव्यवस्थाएं तथा विचित्रताएं सूचीकार को कितना अधिक किंकर्त्तव्य-विमूढ बना देती हैं यह सर्व-विदित है। विषय प्रतिपादन की सरलता के लिए अध्याय ७ में केवल उन्हीं सामयिक प्रकाशनों की चर्चा

की गई है जो सर्वथा साधारण प्रकार के होते हैं और जिनके सूचीकरण में किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

इस प्रकार मौलिक नियमों पर अधिकार प्राप्त कर लेने के पश्चात् अध्याय ८ में जटिलतर धाराएं दी गई हैं। जटिल समस्याओं को सुलझाने के लिये इनकी आवश्यकता पड़ सकती है। वहां भी धारा ८ में संभव जटिलताओं का विश्लेषण कर दिया गया है। उनके १८ आधारभूत प्रकार बनाये गये हैं। वे ६ वर्गों में विभक्त हैं। इसके अनन्तर उपर्युक्त सभी प्रकारों की समस्याओं को सुलझाने का तथा सूची-करण की कला को धाराओं के ६ वर्गों में प्रतिपादन करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। अन्त की तीन धाराओं में सामान्य प्रकार की जटिलताओं की चर्चा है।

असमाधेय समस्याएं

आरम्भ में यह विचार था कि एक अतिरिक्त अध्याय भी जोड़ दिया जाय जिसमें असमाधेय समस्याओं की चर्चा की जाय। उदाहरणार्थ, यह विचार था कि धारा ९२ में तथा उसके उपभेदों में मानचित्रों के सूची-करण की बात बताई जाय। धारा ९६३ में तथा उसके उपभेदों में विभिन्न प्रकार के प्रदर्शनों की चर्चा हो। धारा ९त८ बनाई जाय और उसमें तथा उसके उपभेदों में संगीत ग्रन्थों की विवेचना हो। इसी प्रकार और भी विचार था। किन्तु यह अनुभव किया गया कि इस प्रकार के विशिष्ट प्रकाशनों से प्राप्त अनुभव अभी तक अपर्याप्त है। अतः यही निर्णय किया गया कि इस प्रकार का अध्याय किसी आगामी आवृत्ति में ही समाविष्ट किया जा सकेगा।

धाराओं का समङ्काङ्कन

धाराओं के समङ्काङ्कन के सम्बन्ध में भी कुछ कह देना असंगत न होगा। समङ्काङ्कन दशमलव पद्धति के आधार पर है। प्रत्येक धारा के समंक के पूर्व में एक दशमलव बिन्दु लुप्त मान लेना चाहिए। यदि मन में ऐसी कल्पना कर ली जाय तो धाराओं की संख्याओं का क्रम स्वाभाविक प्रतीत होगा। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि समंक अत्यधिक सारूप्य रखते हैं। यदि यह बात ज्ञात हो जाय तो सम्बद्ध धाराओं का अनुसन्धान अत्यधिक सुकर हो जायगा।

उदाहरण

उदाहरणार्थ, अध्याय १ की धारा १ 'अधिसूचन यदि कोई हो' को प्रधान संलेख में आनेवाले अनुच्छेदों में चतुर्थ वस्तु के रूप में परिगणित करती है। उसी

अध्याय की धारा १४ अधिसूचन के वरण का प्रतिपादन करती है तथा 'माला-अधिसूचन' को प्रथम वस्तु के रूप में परिगणित करती है। उसी अध्याय की धारा १४१ माला-अधिसूचन के उपकल्पन तथा संलेख-शैली का प्रतिपादन करती है तथा माला समंक को वस्तुओं में से चतुर्थ वस्तु के रूप में परिगणित करती है। अतः धारा १४१४ माला समंक के वरण का प्रतिपादन करती है।

इसी प्रकार अध्याय ७ में धारा ७१ 'माला-अधिसूचन यदि कोई हो' को सामयिक प्रकाशन के मुख्य संलेख में आनेवाले अनुच्छेदों में तृतीय वस्तु के रूप में परिगणित करती है तथा धारा ७१३ उसके लिखने की शैली का प्रतिपादन करती है।

कल्प में लगभग ४२४ धाराएं हैं। इनमें से अधिकांश की समुचित टीकाओं द्वारा व्याख्या कर दी गई है। इन धाराओं को उदाहृत करने के लिए जितने उदाहरणों का समावेश किया गया है उनकी संख्या लगभग ७०१ है। इनमें किसी न किसी प्रकारके ३६१ विधि-संमत संलेख दिये गये हैं। ये संलेख इस ग्रन्थ में मुद्रित हैं। जब इन मुद्रित संलेखों को लिखित संलेखों में रूपान्तरित किया जाय तब मुद्रण-कला से सम्बद्ध तथा अन्य परम्परागत सामान्य रूढ़ियों का स्मरण रखना चाहिए। उदाहरणार्थ, मुद्रण के प्रवणवर्णों का यह अर्थ होता है कि लेखन में उन्हें अधोरेखांकित कर दिया जाय।

ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त

यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि यह ग्रन्थ धाराओं का एक कल्पमात्र है। इसमें ग्रन्थालय सूची के सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया गया है। मद्रास ग्रन्थालय संघ प्रकाशनमाला का ७ वां प्रकाशन **ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त** (*Theory of library catalogue*) इस प्रश्न को हल करता है। उसमें सूचीकरण के कतिपय उपसूत्र प्रतिपादित किये गये हैं। सूचीकरण के कल्पों के गुणदोष विवेचन में—उनकी तुलना में—इन उपसूत्रों को आधार बनाया जा सकता है। उपर्युक्त ग्रन्थ में (१) चा. ए. कटर प्रणीत **सर्वानुवर्ण सूची धाराएं** (*Rules for a dictionary catalogue*), (२) अमेरिकन लायब्रेरी असोसिएशन प्रणीत **सूची धाराएं, ग्रन्थकार तथा आख्या-संलेख** (*Catalogue rules, author and title entries*) तथा (३) प्रस्तुत ग्रन्थ अनुवर्ग सूची कल्प (*Classified catalogue code*) का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

प्रायोगिक सूचीकरण

साथ ही यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि प्रस्तुत ग्रन्थ में न तो प्रायोगिक सूचीकरण की चर्चा है और न सूचीकरण से सम्बद्ध परिपाटी का वर्णन है। मद्रास ग्रन्थालय संघ प्रकाशन ग्रन्थमाला का पंचदश ग्रन्थ **ग्रन्थालय सूची: तत्त्व तथा प्रक्रिया** (*Library catalogue: Fundamentals and procedure*) प्रायोगिक सूचीकरण का प्रतिपादन करता है। उसमें ३०६ उत्तरोत्तर उन्नत उदाहरण तथा अभ्यास दिये गये हैं। उसी ग्रन्थमाला के पंचम ग्रन्थ **ग्रन्थालय प्रबन्ध** (*Library administration*) के अध्याय ५ में परिपाटी का विशद वर्णन है।

अध्याय ०१

सूची-भाग

ग्रन्थालय सूची आपेक्षतः एक उपकरण है। अतः इसके अवयवों, सूक्ष्मताओं तथा रूप का इस प्रकार आयोजन होना है जिससे वह एक समर्थ उपकरण बन सके। इसका अर्थ यही है कि सूची की रचना में हमें तीन वस्तुओं का ध्यान रखना चाहिये। वे यह हैं:–

(१) उसका मुख्य धर्म;

(२) जब वह उपयोग में आ रही हो उस समय भी बीच-बीच में उसके सन्धान की तथा विवरणों के बहुधा वर्धन की आवश्यकता तथा–

(३) उसका जीवन-काल।

अधिकार

ग्रन्थालय के धर्मों की चर्चा मद्रास ग्रन्थालय संघ प्रकाशन ग्रन्थमाला के द्वितीय ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक हो चुकी है।[1] ग्रन्थालय शास्त्र के पंच सूत्र इस चर्चा के आधार हैं। उस समस्त चर्चा का सार इस प्रकार है:––ग्रन्थालय सूची का गठन इस प्रकार हो कि

(१) प्रत्येक अध्येता को उसका ग्रन्थ मिल सके;

(२) प्रत्येक ग्रन्थ के लिए उसका अध्येता उपलब्ध हो सके;

(३) अध्येता का समय बच सके; तथा

(४) ऐतदोद्देश्यार्थ, ग्रन्थालय के कर्मचारियों का भी समय बच सके। इन्हीं

---

१. रंगनाथन (श्री. रा.). **ग्रन्थालय शास्त्र पंचसूत्री** (*Five laws of library science*). (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, २). १९३१. पृ. २९७, २९८, ३०७-३१२, ३५१-३५९

धर्मों को कटर के शब्दों में और भी अधिक स्पष्टता के साथ इस प्रकार रखा जा सकता है[२]:—

(१) कोई पाठक अपना ग्रन्थ पाने में सफल हो सके, जब कि उस ग्रन्थ के विषय में उसे या तो

(क) ग्रन्थकार, या

(ख) आख्या, या

(ग) विषय का ज्ञान हो ;

(२) यह ज्ञात हो सके कि ग्रन्थालय में

(घ) किसी ग्रन्थकार का,

(ङ) किसी विशिष्ट विषय पर, तथा

(च) साहित्य के किसी विशिष्ट अंग के अन्तर्गत कितनी कृतियां उपलब्ध हैं ; तथा

(३) ग्रन्थ के वरण में ग्रन्थ सम्बन्धी

(छ) संस्करण, तथा

(ज) गुण की सहायता मिल सके।

अद्भुतालय रूढ़ि

ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता है कि एक लम्बे समय तक ग्रन्थालय सूची पर एक शक्तिशाली रूढ़ि का प्रभाव रहा है। उस समय ग्रन्थालय को एक अद्भुतालय ही माना जाता था और समझा जाता था कि यहां पर केवल संरक्षण की ही दृष्टि से ग्रन्थों का संग्रह होता है। इस रूढ़ि के प्रभाव में स्वाभाविक रूप से ग्रन्थालय सूची का एक मात्र धर्म यही माना गया कि वह संग्रह को ठीक प्रकार से गिनवा सके। इस तालिकात्मक सूची को अधिक से अधिक सरल बनाने के लिये एक ही पंक्ति पर एक ही आख्या लिखी जाती थी। इसमें ग्रन्थों का क्रम उनके परिग्रहण-क्रम में ही होता था और इसी क्रम में उनकी फलकों पर व्यवस्था रहती थी। इस प्रकार की सूची के निर्माण करने में कोई कठिनाई नहीं आती है और

---

२. कटर (चार्ल्स ए.). **सर्वानुवर्ण सूची की धाराएं** (*Rules for a dictionary catalogue*). आवृ. ४. १९०४. (युनाइटेड स्टेट्स, ब्यूरो आफ एजुकेशन, स्पेशल रिपोर्ट आन पब्लिक लायब्रेरीज़्, भाग २). पृ.१२.

इसी कारण इसके लिए विस्तृत विवरणात्मक कल्प की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

प्रचारक की भावना

इस अद्भुतालय की रूढ़ि को पदच्युत करने में जो शक्ति संलग्न है उसे "प्रचारकता" की शक्ति कहा जा सकता है। ग्रन्थालय सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण ही इस शक्ति का कारण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार ग्रन्थालय एक ऐसी संस्था है जो अपने क्षेत्र के प्रत्येक व्यक्ति को अपना नियमित ग्राहक बना डाले। यही उसका उत्तरदायित्व है। केवल एक बार ग्राहक बना लेने से ही काम नहीं चल सकता। उसे चाहिए कि अपने ग्राहकों की सेवा उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इतनी कुशलता तथा तत्परता के साथ करे कि वे सर्वदा के लिए ग्राहक बने रहें। ग्रन्थालय एक अद्भुतालय नहीं है; अपितु एक कारखाना है जो अपने में जीवन और चेतना लिये हुए है। इस विचार धारा के अनुसार ग्रन्थालय उस ग्रन्थ की चिन्ता नहीं करता जो निरन्तर उपयोग के कारण जीर्ण-शीर्ण हो गया हो, किन्तु उसकी चिन्ता का कारण वह ग्रन्थ होता है जो अपने फलक से कभी भी हिलने तक का नाम न ले। इन्हीं ग्रन्थों पर उसका सदैव ध्यान रहता है और उन्हीं के सफल उपचार में वे प्रयत्नशील रहते हैं। इस दृष्टिकोण ने ग्रन्थालय से सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु में–ग्रन्थ-वरण, फलकव्यवस्थापन, वस्तुकला, उपस्कर, स्थान, खुला रहने का समय, कर्मचारी, पाठकों के प्रति वर्ताव और सबके अन्त में, किन्तु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थालय सूची––इन सबों में क्रान्ति ला दी। इसी क्रान्ति के कारण तालिकात्मक सूची का नामोनिशान मिटता चला जा रहा है जिससे वह कहीं फिर पनपकर आधुनिक सेवा-भावना का गला न घोंट डाले।

प्रथम विजय

तालिकात्मक सूची अर्थात् अस्तित्व-पत्र की परम्परा तथा सेवा की भावना इन दोनों के बीच जो संघर्ष चला उसका यह परिणाम निकला कि एक पंक्ति पर एक ही आख्या लिखने की पद्धति पूर्ववत् बनी रही, पर इन संलेखों का क्रम परिग्रहण क्रम न रहा। उनकी व्यवस्था ग्रन्थकारों के नामों से आकारादि क्रम में होने लगी। परिग्रहण की परम्परा पहले से ही दोषपूर्ण थी पर उसके स्थान में अनुवर्ण व्यवस्था की जो प्रणाली आई वह भी दोषपूर्ण थी। इसका कारण यह है कि सेवा की भावना को अपने लक्ष्य का ही ज्ञान न था। उसे यह ज्ञात ही न था कि पाठकों को रुचिकर क्या है–ग्रन्थकार अथवा प्रतिपाद्य विषय ?

द्वितीय विजय

इन परिस्थितियों में भी प्रतिपाद्य विषय की महत्ता समझने में अधिक दिन नहीं लगे। इसका फल यह हुआ कि एक और सुविधा प्राप्त कर ली गई और वह यह थी कि वर्णानुसारी-एक-क्रम के स्थान पर इस प्रकार के उतने ही क्रम बनाये जायें जिनसे १५ अथवा २० वर्गों में समस्त ज्ञान-राशि विभक्त हो सके। हमारे अनेक ग्रन्थालयों की सूचियां आज इन्हीं में से किसी एक अवस्था की हैं।

मुक्ति

अस्तित्व पत्र की परम्परा से सूची का छुटकारा उस दिन हुआ जिस दिन पुस्तक-क्रम-पंजिका का आविष्कार हुआ। पुस्तक-क्रम-पंजिका पुस्तकों की सूची होती है। इसमें संलेख 'एक-आख्या-एक-पंक्ति' की शैली से लिखे जाते थे किन्तु उनका क्रम ठीक वही रहता था जो पुस्तकों का फलकों पर रहता था। इस प्रकार अस्तित्व पत्र की भावना तो दूर हो गयी। कारण, उसके लिये उसे एक अपनी स्वतंत्र पंजिका मिल गई। अब सूची स्वतन्त्र रूप से अपना विकास करने लगी और वह उस मार्ग का अनुसरण करने लगी जो स्वाभाविक था तथा सेवाभावना की उत्तरोत्तर जागृति में प्रेरणात्मक था।

एक-भागिक अनुवर्ण सूची

इस विकास का प्रथम स्वरूप अनुवर्ण सूची के रूप में प्रकट हुआ। इसमें एक ही भाग होता है। उसके अवयव भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। उनमें भेद एवं अन्तर इसलिए रखा जाता है कि सूची द्वारा जो विभिन्न धर्म पूरे किए जाने चाहिएँ वे पूरे किये जायें। इस प्रकार की सूची को किस प्रकार सर्वांग सुन्दर और सर्वगुण-सम्पन्न बनाया जाय उसके लिए कितने ही मेधावी विद्वान् गत शताब्दी के मध्यकाल से परिश्रम करते आ रहे हैं। इसके लिये अनेक नई कलाओं का आविष्कार हुआ और उसमें से विषय शीर्षक स्थिर करने का एक अति विशाल कार्य उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है।

यह कहा जाता है कि एक पीढ़ी के क्रान्तिकारी अर्थात् एक युग के रूढ़िध्वंसक ही अगली पीढ़ी के रूढ़िवादी हो जाते हैं। उनको अपनी ही नई परम्परा प्यारी लगती है और वे उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं सह सकते। उसे छोड़ने की तो बात ही न्यारी है। यही बात ग्रन्थालय सूचीकरण के सम्बन्ध में भी है। सर्वानु-वर्ण-सूची में अनेक असुविधाएं हैं—अनेक कठिनाइयां हैं। उनके संसर्ग से अर्थात्

उनका रसास्वाद लेते रहने से उन रूढ़िवादियों की दृष्टि इतनी संकुचित हो गई है कि वे सूची के अनन्तर तथा सद्योभावी विकास को या तो देख नहीं पाते और यदि देख भी पाते हैं तो मोहवश उसका प्राणपण से विरोध करने की चेष्टा करते हैं।

द्विभागिक अनुवर्ग-सूची

ग्रन्थालय सूची के अनन्तर-विकास में सूची २ भागों में विभक्त हो गई। उस विभाजन का आधार धर्मों का भेद ही है। उन दोनों भागों में से एक में वे अवयव होंगे जो इस बात का ज्ञान कराते हैं कि ग्रन्थालय में विभिन्न विषयों पर क्या पाठ्य सामग्री है तथा दूसरे भाग में अन्य सभी अवयव होंगे। प्रथम भाग में संलेखों का व्यवस्थापन क्रामक-समंक तथा वर्ग-समंक के अनुसार होता है और उससे ज्ञातेय क्रम उपलब्ध होता है। द्वितीय भाग में ठीक उसी प्रकार जैसे कोशों में अर्थात् वर्ण-क्रम होता है। सूची का यह द्विभागिक रूप एकभागिक सर्वानुवर्ण सूची की अपेक्षा अधिक विकसित एवं उन्नततर है। इसे वे लोग अवश्य मान लेंगे जो विकास का अर्थ यह मानते हैं कि धर्म के विभेद का समाधान करने के लिये अंग विन्यास में भी विभेद होना चाहिये। किन्तु कुछ लोग दूसरे विचार के भी हैं। वे यही मानते हैं कि विकास की अंतिम अवस्थाएं एकीभावकी ओर ले जाती है विभेद की ओर नहीं। अनुभव ही उन्हें बताएगा कि सर्वानुवर्ण सूची में कितनी कठिनाइयां हैं और वे ही कठिनाइयां सूची के अनुवर्ग रूप में किस प्रकार सरलतापूर्वक दूर हो जाती हैं। इस प्रकार की अनुवर्ग सूची ही इस कल्प का प्रतिपादित विषय है।

विलम्ब का कारण

द्विभागिक सूची को अपनी प्रमुखता प्रतिष्ठित करने में इतना समय क्यों लगा, उसका कारण सर्वानुवर्ण सूची के अनुगामियों का विरोध ही नहीं है, अपितु यह भी है कि अभी तक किसी ऐसी वर्गीकरण योजना का आविष्कार नहीं हो पाया था जो:–

(१) चाहे जितनी गम्भीर श्रेणी के विशिष्ट विषय का व्यक्ति-साधन कर सके;

(२) सभी स्तरों के विशिष्ट विषयों को स्वीकार्य ज्ञातेय क्रम में व्यवस्थापित कर सके; तथा

(३) किसी एक विशिष्ट विषय के विभिन्न ग्रन्थों को व्यक्ति-सिद्ध कर सके।

हेत्वाभास

अनुवर्ग सूची की तुलना में उसकी अपेक्षा सर्वानुवर्ण सूची को श्रेष्ठ मानते रहने की प्रवृत्ति तथा उससे चिपटे रहने की दृढ़ धारणा का कारण एक गूढ़ हेत्वाभास भी है। यह कहा जाता है कि साधारण पाठक केवल अनुवर्ण व्यवस्थापन से ही परिचित रहता है। यह तो निश्चित ही है कि सूची मुख्यतः उसी पाठक के लिए उद्दिष्ट है। अतः उस सूची को एकमात्र अनुवर्ण क्रम में ही रखना चाहिए। इस युक्तिवाद की यह युक्ति यथार्थ हैं, किन्तु 'एक मात्र' इस विशेषण के अन्तर्निवेश में एक हेत्वाभास छिपा हुआ है। इस युक्तिवाद की जो कुछ भी मांग हो सकती है वह यही है कि सूची में एक अनुवर्ण भाग भी होना चाहिये, जिसके द्वार से साधारण पाठक सूची में प्रवेश कर सकें। द्विभागिक अनुवर्ग सूची का दूसरा भाग इसी उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए रखा जाता है।

गहनतर धर्म

यदि पाठक की रुचि किसी विशेष पुस्तक के लिए है अथवा किसी विशिष्ट ग्रन्थकार की किसी विशिष्ट पुस्तक के लिए है तो अनुवर्ण भाग स्वयं उसके लिए पर्याप्त है और वह पाठक को पूर्णतया सन्तुष्ट कर सकेगा। किन्तु यदि वह पाठक किसी विशिष्ट विषय सम्बन्धी रुचि के कारण ग्रन्थालय में आता है तो उसे सन्तोष तभी हो सकता है——उसकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति तभी हो सकती है जब वह सूची उस पाठक के सामने उसके उद्दिष्ट विशिष्ट विषय सम्बन्धी संपूर्ण पाठ्य सामग्री के–उसके समस्त उपभेदों के तथा वह विशिष्ट विषय जिन विषयों का स्वयं उपभेद है उन सब व्यापक विषयों के——परिपूर्ण एवं परस्पर-सम्बद्ध विश्वचित्र को प्रस्तुत कर सके। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। बहुत थोड़े पाठक ऐसे मिलेंगे जो अपने विशिष्ट विषय को ठीक ठीक निर्दिष्ट कर सकें। साधारणतः जो विषय सोचा जाता है वह या तो अधिक व्यापक होता है या अधिक संकीर्ण। किन्तु जिस किसी मार्ग से अपने विशिष्ट विषय की ओर पहुंचने का प्रयत्न किया जाय वह मार्ग चाहे कितना ही दूरस्थ क्यों न हो, किन्तु अनुवर्ण भाग उसे ठीक मार्ग पर लगा देता है। मानों वह उस पाठक से कहता है कि 'भाई, जिस विषय का आप नामोच्चारण कर रहे हैं उसके तथा उससे सम्बद्ध सभी विषयों के ग्रन्थों के लिए अनुवर्ग भाग में अमुक संख्या के अन्तर्गत प्रदेश को देखिये। वहां उसे उसकी अभिरुचि के अनुकूल सम्पूर्ण क्षेत्र प्रदर्शित प्राप्त होता है। जब वह उस प्रदेश में प्रवेश करता है तो उसे वहां वह सब कुछ मिल जाता है जिसकी आव-

श्यकता का वह अस्पष्टरूप से अनुभव करता था। और सच पूछा जाय तो ठीक उसी समय उसे अपनी यथार्थ वस्तु का ज्ञान होता है।

समंक के द्वारा निर्दिष्ट प्रदेश में ज्यों ही पाठक प्रवेश करता है त्यों ही समंक का कार्य समाप्त हो जाता है। उसके अनन्तर समंक उसके साधन का उपकरण नहीं रहता और न वे उसके ध्यान को आकृष्ट करते हैं। उसका चित्त उसी सहायभूत ज्ञातेय क्रम में लीन हो जाता है जिस क्रम में उसकी पुस्तकों के नाम एक के पीछे एक आते रहते हैं। वह आनन्द-विभोर हो उठता है। इस आनन्द का मूल स्रोत क्या है ? वह यही है कि उस पाठक की अस्पष्ट आवश्यकताएं भी पूर्ण हो जाती हैं। उसे ऐसी वस्तुएं मिल जाती हैं जिनकी आवश्यकता का वह अनुभव तो करता था, किन्तु वे किस प्रकार मांगी जायँ यह वह नहीं जानता था। यही एक गहनतर धर्म है जो ग्रन्थालय-सूची द्वारा पूरा किया जाना चाहिये।

एक कर्त्तव्य

इस प्रकार की अव्यक्त इच्छाओं को पूर्ण करना ग्रन्थालय का परम कर्त्तव्य है। विशेषकर इसलिए कि साधारण पाठक यह नहीं जानता कि उन आवश्यकताओं को किस प्रकार मूर्त्त रूप दिया जा सकता है––उन्हें कैसे व्यक्त किया जा सकता है। सर्वानुवर्ण-सूची में तो विषयों के एक साथ एकस्थानीकरण की तो कौन कहे, उन्हें इधर-उधर बिखेर दिया जाता है और इस प्रकार 'अनुवर्ण-बिखेरन' की युक्ति यथार्थ रूप से सिद्ध हो जाती है। अनुवर्ण-व्यवस्थापन में और आशा ही क्या की जा सकती है ? सर्वानुवर्ण-सूची में यह शक्ति ही नहीं है कि सम्बद्ध विषयों को एक साथ प्रस्तुत कर सके। अतः इस प्रकार की सूची से पाठक को कभी सन्तोष नहीं हो सकता। इस सूची के 'और द्रष्टव्य' निर्देशनों के महावन तो पाठक को सर्वथा भ्रान्त और परिश्रान्त कर देंगे, कारण उसे यहां से वहां और वहां से वहां–बस भटकते ही रहना पड़ेगा।

यदि पाठक से यह कहा जाय :– अच्छा, आप यह कहते हैं कि आप सूची में अनुवर्ण-द्वार से ही प्रविष्ट हो सकते हैं, तो बहुत सुन्दर, आपके लिए उसकी व्यवस्था की जायेगी ; किन्तु आपको वर्णमाला का उपयोग न केवल आदि में ही करना पड़ेगा, अपितु निरन्तर और सर्वथा अन्त तक। यह कायरता है, शूरता नहीं। यह बड़ा भारी दण्ड है जो पाठक को दिया जा सकता है। यह वर्णमाला को बुरी तरह ढकेलने का तथा उसे उसके अधिकार क्षेत्र से बहुत दूर तक घसीटने का प्रयत्न है।

सच्ची समर्थता और शोभा इसी में है कि प्रत्येक उपकरण का उपयोग उसके उसी उद्देश्य तक सीमित रखा जाय जिसके लिए वह सर्वोत्तम रीति से उपयुक्त हो तथा जिसके लिए उसकी रचना की गई हो। किसी ग्रन्थालय की संपूर्ण अध्ययन सामग्री को प्रदर्शित करने का सर्वोत्कृष्ट साधन अनुवर्ग-व्यवस्थापन है, अनुवर्ण नहीं। ग्रन्थालय सूची द्वारा यह पूरा किया जाना चाहिये। साथ ही यह भी सत्य है कि पाठक उसमें अनुवर्ण द्वार से होकर ही प्रवेश कर सकता है। अतः अनुवर्ग तथा अनुवर्ण दोनों भागों से संयुक्त बनी हुई द्विभागिक सूची ही एकमात्र उपयोगी है।

भविष्य

यदि सूची का द्विभागिक रूप समान व्यवहार में आने लगे, तो यह निश्चित है कि इसकी अपेक्षा और अधिक विकसित तथा समर्थ रूपों का आविर्भाव हो सकेगा। किन्तु इस समय तो इतना ही पर्याप्त है कि द्विभागिक अनुवर्ग सूची को ही लोकप्रिय बनाया जाय। अतः इस कल्प में उसी के निर्माण की धाराएं दी गई हैं।

०१ सूची द्विभागा।
०१० अनुवर्गोऽनुवर्णश्च।
०११ प्रथमोऽनुवर्ग-विषय सूची।
०१२ द्वितीयोऽनुवर्ण-सूची विषय-वर्गानुवर्ण-निर्देशी च।

०१ सूच्यां द्वौ भागौ भवतः।
०१० तौ च भागौ अनुवर्गः अनुवर्णः च इति उच्येते।
०११ प्रथमः अनुवर्ग-भागः वर्गानुसारिणी विषयाणां सूची भवति।
०१२ द्वितीयः अनुवर्ण-भागः वर्णानुसारिणीसूची विषय-वर्गाणाम् वर्णानुसारी निर्देशी च भवति।

०१ सूची में दो भाग होते हैं।
०१० वे दो भाग अनुवर्ग और अनुवण कहे जाते हैं।

०११ **अनुवर्ग भाग वर्गों का अनुसरण करने वाली विषयों की सूची होती है।**

०१२ **अनुवर्ण भाग वर्णों का अनुसरण करने वाली सूची और विषय वर्गों का वर्णानुसारी निर्देशी होता है।**

अनुवर्ग भाग की ऐसी रचना होती है कि कटर द्वारा निर्दिष्ट (ग), (ङ), (च), (छ) तथा (ज) अंकित धर्मों की पूर्ति हो, जबकि अनुवर्ण भाग (क), (ख), (घ) तथा कुछ अंशों तक (ज) अंकित धर्मों को पूर्ण करता है।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो अनुवर्ण भाग ऐसी अनुवर्ण सूची ही है जिसमें से केवल विषय संलेख निकाल लिए गए हों।

अध्याय ०२

संलेख-प्रकार

०२ **संलेखश्चतुर्धा ।**

०२० **प्रधानः, विषयान्तरः, निर्देशी, नामान्तर-निर्देशी च ।**

०२०१ **अन्त्यास्त्रयोऽतिरिक्त-संलेखाः ।**

०२ संलेखस्य चत्वारो भेदाः भवन्ति ।

०२० तेच भेदाः प्रधानः, विषयान्तरः, निर्देशी, नामान्तर-निर्देशी च इति उच्यन्ते ।

०२०१ विषयान्तरः, निर्देशी, नामान्तर-निर्देशी चेति त्रयः संलेखाः अतिरिक्त-संलेखाः इति उच्यन्ते ।

०२ **संलेख चार प्रकार के होते हैं ।**

०२० **वे प्रकार प्रधान, विषयान्तर, निर्देशी और नामान्तर निर्देशी कहे जाते हैं ।**

०२०१ **विषयान्तर, निर्देशी और नामान्तर निर्देशी ये तीनों संलेख अतिरिक्त-संलेख कहे जाते हैं ।**

सूची में किसी कृति के सम्बन्ध में जो लेख होता है उसे संलेख कहा जाता है । प्रत्येक कृति के लिए कम से कम एक संलेख तो बनाना ही पड़ेगा । यह संलेख प्रधान संलेख कहा जाता है । किन्तु उस कृति के लिए एक से अधिक संलेखों की भी आवश्यकता पड़ सकती है । इस प्रकार के अधिक संख्या में बनाए हुए संलेख अतिरिक्त संलेख कहे जाते हैं । वे उक्त तीन प्रकारों में से किसी न किसी एक प्रकार के होते हैं । इनमें से कुछ का स्थान वस्तुतः उपभेदों की श्रेणी में ही है, जिन का प्रतिपादन अगले अध्यायों में उपलब्ध है (दृष्टव्य अध्याय ३ तथा ४) ।

प्रत्येक संलेख बनाते समय कृति का ध्यान रखा जाता है, पर जब कोई संलेख तैयार हो जाता है, तब सूची के किस भाग में उसे स्थान मिलता है तथा अन्य संलेखों के बीच उसका कौनसा अपेक्षित स्थान है, इन बातों का निर्णय कृति की सहायता से नहीं अपितु वह संलेख किस प्रकार का है तथा उसमें किन बातों पर ज़ोर दिया गया है, इन दो बातों से किया जाता है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि संलेख तैयार हो जाने के पश्चात् कृति का कोई कार्य नहीं रह जाता।

इस प्रकार प्रत्येक संलेख एक मौलिक अवयव होता है जिसके योग से सूची का निर्माण होता है। ये ईंटों का कार्य करती है जिससे ढांचा खड़ा हो जाता है। जिस प्रकार किसी निर्माण कार्य के लिए विभिन्न प्रकार की ईंटें तैयार की जाती हैं, उसी प्रकार सूची के निर्माण में अनेक प्रकार के संलेख होते हैं।

प्रधान-संलेख

प्रत्येक कृति के लिए एक तथा केवल एक ही प्रधान संलेख होता है। इसमें कृति का संलेख उसके प्रतिपादित विशिष्ट विषय के नाम से होता है। जैसा नाम से स्पष्ट है, यह कृति का मूलभूत संलेख होता है। यह उस ग्रन्थ के सम्बन्ध में अन्य किसी भी संलेख की अपेक्षा अधिक जानकारी प्रस्तुत करता है। इसके द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि उस कृति के लिए और कौन कौन से, एवं कितने संलेख बनाए गए हैं। एतदोद्देश्यार्थ साधन का प्रतिपादन वस्तु धारा १६ तथा उसकी उपधाराओं में उपलब्ध है तथा प्रथम अध्याय के सारे भाग में इसके निर्माण की चर्चा की गई है।

विषयान्तर-संलेख

किसी विशिष्ट कृति के लिए कितने विषयान्तर संलेख लिखे जा सकते हैं यह स्थिर नहीं। यह मूल कृति के प्रतिपाद्य विषयों पर निर्भर है। विषयान्तर संलेखों की संख्या कृति–कृति के साथ घटती बढ़ती है। किसी कृति के लिए कोई विषयान्तर संलेख की आवश्यकता नहीं होती और किसी-किसी के लिए एक की, या इससे भी अधिक की भी। यदि विषयान्तर-संलेख का उद्देश्य समझ लिया जाय तो इस प्रकार का अन्तर भी समझ में आ सकता है। हमारे ग्रन्थ **ग्रन्थालय शास्त्र पंचसूत्री** (*Five laws of library science*) में ग्रन्थालय शास्त्र के पंच सूत्रों को ध्यान

में रखते हुए इस प्रश्न की विस्तृत चर्चा की गई है।[3] किसी कृति में उसके मुख्य विशिष्ट विषय से अतिरिक्त अन्य जितने भी विषयों की चर्चा होगी उन विषयों के लिए विषयान्तर-संलेख लिखा जाता है। साथ ही यह भी भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक कृति में जितने भी गौण विषयों की चर्चा होगी उन सबके लिए एक एक विषयान्तर-संलेख लिखा जायगा।

इस प्रकार के संलेख की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि अधिकतर ग्रन्थ अनिवार्य रूप से समासित स्वरूप के होते हैं। बहुधा यह देखा जाता है कि कोई ग्रन्थ किसी विषय की मुख्य रूप से चर्चा करता है। वह ग्रन्थ एक या दो अध्याय अथवा कुछ पृष्ठों में किन्हीं विषयान्तरों की भी चर्चा कर बैठता है। यह भी संभव है कि किसी ग्रन्थ में निरन्तर प्रधानतः कोई विशिष्ट विषय वर्णित रहता है। किन्तु उसी में कतिपय अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी जानकारी बिखरी रहती है। यदि सूची में ग्रन्थ के मुख्य विषय का ही उल्लेख हो और पूर्वोक्त प्रकार के गौण विषयों के लिए कोई व्यवस्था न की जाय, अर्थात् यदि विश्लेषणात्मक विषयान्तर-संलेखों के देने का कोई प्रयत्न न किया जाय, तो उसमें ग्रन्थालय-शास्त्र के सूत्रों की निर्मम हत्या होती है। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि कर्तृगण, अर्थ तथा ग्रन्थालय की नीति जैसे व्यावहारिक विचार (कारण) विषयान्तर संलेखन कार्य को उतनी प्रचुरता एवं परिपूर्णता के साथ न होने दें जितनी ग्रन्थालय शास्त्र-सूत्रों द्वारा साधिकार वांछित हो।[4]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि विषयान्तर-संलेखों की संख्या कृति तथा ग्रन्थालय की ससीमताओं के साथ-साथ घटती-बढ़ती रहेंगी। यह पहले ही कहा जा चुका है कि इस प्रकार के संलेखों का निर्माण द्वितीय अध्याय में वर्णित है।

निर्देशी-संलेख

किसी विशिष्ट ग्रन्थ के लिए लिखे जाने वाले निर्देशी संलेखों की भी संख्या

३ विषयान्तर तथा द्वितीय सूत्र, पृ. २६७-२६८;
विषयान्तर तथा तृतीय सूत्र, पृ. ३०६-३१२;
विषयान्तर तथा चतुर्थ सूत्र, पृ. ३५१-३५६;
विषयान्तर-लेखन का अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण, पृ. ३५४-३५५;

४ रंगनाथन (श्री.रा.). ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त (*Theory of library catalogue*). १९३८. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ७). अध्याय ३२ तथा ३३.
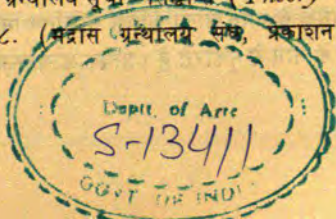
घटती बढ़ती रहती है। एक प्रकार की कृति ऐसी होती है जिसके लिए किसी प्रकार का भी निर्देशी संलेख नहीं लिखा जाता। वह है प्रशासनीय तथा उसी प्रकार की वार्षिक तथा समय समय पर प्रकाशित अन्य विवरण-कृतियां। साधारणतः अन्य प्रकार के प्रत्येक ग्रन्थ के लिए कम से कम एक संलेख तो होता ही है। इसकी संख्या अधिक भी हो सकती है, किन्तु ६ से अधिक कदाचित् नहीं।

इन संलेखों के द्वारा पाठक को उसकी पुस्तक प्राप्त हो जाती है। हां, यह शर्त है कि पाठक उस पुस्तक के विषय में कुछ न कुछ जानकारी रखता हो। कारण, निर्देशी-संलेख ग्रन्थ के ग्रन्थकार, संपादक, अनुवादक आदि के नामों से, माला के नाम से तथा कभी कभी आख्या से भी बनाये जाते हैं। प्रत्येक कृति के साथ ऐसे निर्देशी संलेख भी जुड़े रहते हैं जो विषयों के नामों का निर्देश करते हैं। ये पाठक को अनुवर्ग भाग के उस प्रदेश में ले जाते हैं जहां वह अपनी पाठ्य सामग्री को ज्ञातेय क्रम में परिगणित तथा प्रदर्शित पाता है। सारा तृतीय अध्याय केवल इसी प्रकार के संलेख-भेद का प्रतिपादन करता है।

नामान्तर निर्देशी संलेख

नामान्तर निर्देशी संलेख तो कदाचित् ही लिखे जाते हैं। कृतियों का बहुत थोड़ा ही प्रतिशत अंश ऐसा होता है जो इस प्रकार के संलेखों को जन्म दे। इसकी योजना का उद्देश्य यह है कि निर्देशी संलेखों की संख्या में मितव्ययिता हो। यह सूची के अनुवर्ण भाग में एक शीर्षक से दूसरे शीर्षक की ओर पाठक के ध्यान को आकृष्ट करता है। चतुर्थ अध्याय में इस प्रकार के संलेखों का वर्णन है।

०२१ आद्यौ प्रथम-भागे।

०२१ प्रधानः विषयान्तरः च इति द्वौ संलेखौ अनुवर्ग-भागे भवतः।

०२१ प्रधान तथा विषयान्तर ये दोनों संलेख अनुवर्ग भाग में होते हैं।

इन दो प्रकार के संलेखों में उनकी अपनी अपनी अग्ररेखाओं पर विषय का नाम क्रामक समंक से बनने वाली कृत्रिम सांकेतिक भाषा में लिखा रहता है जिसे हम वर्ग-समंक के नाम से पुकारते हैं। प्रत्येक कल्पना-गोचर विषय के लिए एक ही

वर्ग समंक होता है। इससे यह लाभ होता है कि इन वर्ग समंकों में क्रामक व्यवस्थापन यांत्रिक रूप से अपने आप ही हो जाता है अर्थात् उस समय यह जानने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि वे समंक किस विषय के रूपान्तर हैं और इन विषयों में कौन सा अन्तर्सम्बन्ध है। एक बार व्यवस्थापन हो जाने पर मालूम होता है कि विषयों के बीच हम जो क्रम चाहते थे, वही क्रम मौजूद है तथा वह पाठक को सर्वाधिक उपादेय है।

वर्ग-समंक-निर्माण की प्रक्रिया सूचीकार के अधिकार क्षेत्र में नहीं आती। वर्गीकरण एक स्वतन्त्र शास्त्र है। किसी कृति के विशिष्ट विषय का निर्धारण वर्गीकरण करने वाले के अधिकार-क्षेत्र में आता है—सूचीकार के नहीं।

०२२ अन्त्यौ द्वितीय-भागे।

०२२ निर्देशी नामान्तर-निर्देशी च इति द्वौ संलेखौ अनुवर्ण-भागे भवतः।

०२२ निर्देशी और नामान्तर निर्देशी ये दोनों संलेख अनुवर्ण भाग में होते हैं।

०२३ प्रधान-संलेखे आख्या-पत्र-मुखांशाः।

०२३१ आख्या-पत्र-पृष्ठ-पुष्पिका-प्रारम्भिक-पत्र-पार्श्वान्तरस्थ-संगत-सूचनमपि आवश्यकं चेत्।

०२३२ चतुर्थानुच्छेदे तु बाह्यमपि।

०२३ प्रधाने संलेखे विहिताः धाराः अनुसृत्य आख्या-पत्र-मुखस्य अंशाः अनुकार्याः।

०२३१ आख्यापत्र-पृष्ठे, इतरेषु प्रारम्भिक-पत्रेषु, पुष्पिकायां वा वर्तमानं संगतं सूचनमाप्यावश्यकं चेद्-अनुकार्यम्।

०२३२ परम् अधिसूचनाख्ये चतुर्थे अनुच्छेदे तु प्रारम्भिक-पत्रेभ्यो बहिः-स्थोऽपि भावः गृहीतुं शक्यः ।

०२३ प्रधान संलेख में, निर्धारित धाराओं का अनुसरण कर, आख्यापत्र-मुख के अंशों का अनुकरण करना चाहिए ।

०२३१ उपाख्या-पत्र, आख्या-पत्र-पृष्ठ, अन्य प्रारम्भिक पत्र अथवा पुष्पिका आदि में वर्तमान सूचन का भी आवश्यकतानुसार अनुकरण किया जा सकता है ।

०२३२ किन्तु अधिसूचन नामक चतुर्थ अनुच्छेद में तो प्रारम्भिक पत्रों से बाहर की सूचना भी दी जा सकती है ।

०२४ अतिरिक्त-संलेखः संक्षिप्तः ।

०२४० प्रधान-संलेख-परिणामः ।

०२४१ आख्या लघ्वी ।

०२४१० उपाख्यापत्र-मुखात् ।

०२४११ अभावे संक्षेपः ।

०२४१२ सहकारा-आवृत्ति-नाम-लोपः ।

०२४ अतिरिक्तः संलेखः प्रधानात् संक्षिप्तः कार्यः ।

०२४० स च प्रधान-संलेखं परिणम्य संक्षिप्य च उपलब्धव्यः ।

०२४१ अतिरिक्त-संलेखे आख्या लघ्वी कार्या ।

०२४१० उपाख्या-पत्र-मुखे आख्या मुक्ता चेद् ग्राह्या ।

०२४११ उपाख्या-पत्र-मुखस्य अभावे प्रधान-संलेखस्य आख्यां संक्षिप्य लघ्वाख्या उपलब्धव्या ।

०२४१२ लघ्वाख्यायां सहकारस्य आवृत्तेः च उल्लेखो न कार्यः ।

०२४ अतिरिक्त-संलेख प्रधान-संलेख की अपेक्षा संक्षिप्त होता है ।

०२४० वह प्रधान संलेख को परिवर्तित तथा संक्षिप्त करके प्रस्तुत किया जाता है।

०२४१ अतिरिक्त संलेख में छोटी आख्या ग्रहण की जाय।

०२४१० उपाख्या-पत्र-मुख की आख्या योग्य हो, तो ली जा सकती है।

०२४११ उपाख्या-पत्र-मुख के न होने पर प्रधान-संलेख की आख्या को संक्षिप्त कर लघु आख्या बना लेनी चाहिये।

०२४१२ लघु-आख्या में सहकार और आवृत्ति का उल्लेख नहीं करना चाहिये।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि लघु आख्या देने में सहकारों के नाम तथा आवृत्ति नहीं दी जाती हैं, जब तक इसका विशेष उल्लेख न हो।

०२४१२१ न चिर-गहने।

०२४१२१ परं चिरगहन-ग्रन्थस्य लघ्वाख्यायाम् सहकारस्य उद्भवस्य च लोपः न कार्यः।

०२४१२१ किन्तु चिरगहन-ग्रन्थ की लघु-आख्या में सहकार और उद्भव का लोप न करना चाहिये।

०२५ अग्ररेखा-लेखः संलेख-नाम-निरूपी।

०२५० यथा — क्रामक-समङ्क, वर्ग-निर्देशि, ग्रन्थकार, सहग्रन्थकार, सहकार, संपादक, भाषान्तरकार, व्याख्याकार, संग्राहक, चित्रकार, माला, आख्या, आख्या-प्रथम-पद, माला-संपादक, अवान्तरनाम-संलेखाः।

०२५ संलेखस्य अग्ररेखायां लिखितेन भावेन संलेखस्य नाम निरूपणीयम्।

०२५ संलेख की अग्ररेखा में लिखित वस्तु से संलेख का नाम निश्चित किया जाए ।

०२५० पूर्वोक्त धारा के अनुसार निम्नलिखित नाम होते हैं :—

क्रामक-समंक-संलेख, वर्ग-निर्देशी-संलेख, ग्रन्थकार-संलेख, सहग्रन्थकार-संलेख, सहकार-संलेख, संपादक-संलेख, भाषान्तरकार-संलेख, व्याख्याकार-संलेख, संग्राहक-संलेख, चित्रकार-संलेख, माला-संलेख, आख्या-संलेख, आख्या-प्रथम-पद-संलेख, माला-संपादक-संलेख और अवान्तर-नाम-संलेख ।

अध्याय ०३

लेखन-शैली

संलेखों को बनाने की शैली बहुत अंशों तक सूची के भौतिक स्वरूप पर निर्भर करती है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर तीन प्रकार के भौतिक स्वरूप स्वीकार किये जा सकते हैं :—संपुटित-पुस्तक स्वरूप, मुक्त-पत्र स्वरूप तथा पत्रक स्वरूप। स्वरूप के वरण में ग्रन्थालय शास्त्र के पंचम सूत्र को ध्यान में रखना पड़ता है।

पंचम सूत्र के अनुसार इस बात के लिए पूरा महत्व देना है कि सूची के जीवन काल में भी उसमें समय समय पर सुधार किए जाने तथा और अधिक विवरण दिए जाने की क्षमता मौजूद हो। इसका उल्लेख अध्याय ०१ के प्रारम्भिक परिच्छेद में आ चुका है तथा विशद प्रतिपादन मेरे ग्रन्थ **ग्रन्थालय शास्त्र पंचसूत्री** (*Five laws of library science*) में उपलब्ध है।[५]

सूची का भौतिक स्वरूप

चिरकाल से सम्मानित संपुटित-पुस्तक-स्वरूप के दिन तो सदा के लिए चले गये। अब वे फिर लौटकर नहीं आ सकते। कम से कम वर्धनशील ग्रन्थालय के सम्बन्ध में तो यह निरपवाद है। मुक्त-पत्र स्वरूप तथा पत्रक स्वरूप दोनों आपस में इतने अधिक सदृश्य हैं कि उनमें संलेखों के निर्माण के लिए सर्वथा अभिन्न प्रकार की शैली का उपयोग किया जाता है। इनमें से पत्रक स्वरूप सबसे बाद का और इसी कारण अधिक लोकप्रिय है। यह वांछनीय है कि धाराएं सर्वथा स्थिर एवं निश्चित हों। अतः इस अध्याय में केवल पत्रक-सूची के लिये संलेखों के निर्माण करने की शैली की चर्चा की गई है।

पत्रक-सूची

उचित क्रम को सर्वदा ही सरलता से बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक पत्रक में केवल एक ही संलेख लिखा जाय। हां, इसमें यह अपवाद है कि जहां कहीं धाराओं द्वारा कतिपय क्रमानुगत संलेखों को एक एकीकृतसंलेख के

---

५. पृ० ३९३–३९७।

रूप में लिखे जाने की व्यवस्था की गई हो वहां एक पत्रक में ही एक से अधिक संलेख समूहित किये जा सकते हैं।

अनुभव द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि ५″ × ३″ × ·०१″ परिमाण के पत्रकों का आकार सबसे अधिक सुविधाजनक होता है। सूचीकरण कार्य के लिए उन्हें 'मानित पत्रक' कहा जाता है। सूची एक उपकरण है। उसका जीवन काल अधिक से अधिक दीर्घ हो यह वांछनीय है। अतः जो पत्रक काम में लिये जायें वे टिकाऊ काग़ज़ के बने हुए हों। स्वच्छता तथा सुन्दरता के लिए यह आवश्यक है कि रेखा-युक्त पत्रक काम में लाये जायें।

मुद्रित या लिखित

किस वस्तु पर संलेख बनाये जायें इस विषय का निर्णय तो हो चुका। अब यह विचार करना है कि संलेख किस विधि से बनाया जाय। तात्पर्य यह है कि संलेख मुद्रित हो अथवा लिखित। मुद्रित हो तो वह सर्वोत्तम है, आदर्श है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु वह आर्थिक दृष्टि से भी मितव्यय-साध्य होना चाहिए। आजकल छपाई के जो दाम चल रहे हैं उनमें पृथक्-पृथक् ग्रन्थालयों के लिए यह किसी भी प्रकार मितव्ययी नहीं हो सकता। यह उन देशों में संभव है जहां सहकारी सूचीकरण व्यवहार में लाया जा रहा हो। कुछ भी हो, इस प्रकार के देशों की संख्या बहुत कम है। साथ ही सहकारी सूचीकरण की अपनी स्वतन्त्र समस्याएं हैं।[६] अतः इस ग्रन्थ में इस प्रश्न की चर्चा ही नहीं की गई है।

यदि पत्रकों को टाइप कराया जावे तो उसमें एक बाधा है। अबतक ऐसे रिबन का आविष्कार ही नहीं हुआ है जो स्थायी एवं अमिट छाप छोड़ सके। एकक पत्रकों को किस प्रकार काम में लाया जाय, इस प्रश्न को उठाने की आवश्यकता नहीं है। इसमें कोई कठिन समस्या निहित नहीं है। कारण, यह संभव है कि पत्रकों को योग्य लम्बाई के गोलों (चर्खियों) में प्रस्तुत करना अशक्य नहीं है।

अतः पृथक् ग्रन्थालयों में हाथों द्वारा लिखना ही एकमात्र व्यावहारिक मार्ग दिखाई पड़ता है।

कोई भी ग्रन्थालय सूची की एक ही प्रति से काम नहीं चला सकता। इसके अतिरिक्त आजकल की प्रवृत्ति तो यह है कि छोटे छोटे ग्रन्थालयों के समुदाय को

---

६ रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय सूची सिद्धांत (*Theory of library catalogue*). १९३८. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशनमाला ७). अध्याय ६२.

एक साथ एक सूत्र में आबद्ध कर दिया जाय। इस संघटन में सूची की कतिपय प्रतियों की आवश्यकता पड़ती है। कुछ भी हो, उन ग्रन्थालयों की संख्या इतनी कम होती है कि छपाई तो किसी प्रकार मितव्यय-साध्य नहीं हो सकती। अतः आज ग्रन्थालय जगत् इस दिशा में अनेक प्रकारके परीक्षणात्मक प्रयोग करने लगा है। यह आशा की जा सकती है शीघ्र ही प्रतिलिपीकरण की किसी स्वल्पार्घ रीति का आविष्कार हो जायगा।

किन्तु किसी भी अवस्था में यह तो निश्चित ही है कि प्रथम प्रति तो लिखनी ही पड़ेगी। अतः इस अध्याय की धाराएं पत्रकों में संलेखों को लिखने की शैली का निरूपण करती हैं।

इस प्रकार हमारे सामने दो और नई समस्याएं उपस्थित होती हैं। (१) उपयोग में ली जाने वाली स्याही तथा (२) वह लिपि जिसमें संलेख बनाये जाने वाले हों।

०३०१ मसी स्थिरा।

०३०२ क्रामक-वर्ग-समङ्कयोः सीस-लेखनी।

०३०१ संलेखाः स्थिरया मस्या लेख्याः।

०३०२ क्रामक-समंकः वर्गसमंकः च सीसलेखन्या लेख्यः।

०३०१ संलेख स्थायी स्याही से लिखे जायं।

०३०२ क्रामक समंक और वर्ग समंक पेन्सिल से लिखे जायं।

०३०३ वर्णाङ्काः स्पष्टोर्ध्वगविरलाः।

०३०३ सर्वेषु पदेषु समङ्केषु च सर्वे वर्णाः अङ्काः च स्पष्टाः ऊर्ध्वगाः विरलाः च लेख्याः।

०३०३ प्रत्येक पद तथा संख्या में सारे वर्ण और अंक स्पष्ट, उर्द्धग (खड़े) और विरल (छुट्टे) लिखे जायं।

ग्रन्थालय लिपि

जहां तक लिपि का सम्बन्ध है, हम दो परस्पर विरुद्ध तत्वों के बीच में हैं।

एक ओर तो, जिस लिपि में कोई व्यक्ति लिखता है वह सर्वथा उसकी वैयक्तिक लिपि होती है। इसी तत्त्व पर लेखन-शास्त्र (*Science of graphology*) अवलम्बित है। दूसरी ओर वर्धनशील ग्रन्थालय-सूची में प्रति सप्ताह नये-नये संलेख आते रहते हैं; और यह कार्य अनिश्चित रूप से अनेक पीढ़ियों तक निरन्तर चलता रहता है। अतः यदि क्रमशः आने वाले अनेक सूची-कारों की लिपि-सम्बन्धी समस्त अनियमितताओं को पूरी छूट दी जाय तो सूची अवश्य ही बेमेल की खिचड़ी बन जायगी। ग्रन्थालय-जगत् सूचीकारों की हस्तलिपि में विद्यमान वैयक्तिकता एवं स्वतन्त्रता को प्रसन्नता के साथ बलि चढ़ा देने के लिए प्रस्तुत है किन्तु किसी भी प्रकार सूची की बहुप्रकारक शैली द्वारा पाठकों की घृणा एवं विरसता को उत्पन्न नहीं होने देगा। तदनुसार उसने अभी अभी एक अवैयक्तिक लिपि का अभ्युन्नयन किया है और वह 'ग्रन्थालय लिपि' के नाम से विख्यात है। यह साधिकार घोषित किया गया है कि असुन्दर लेखन वाला व्यक्ति भी इस ग्रन्थालय लिपि का सफलता के साथ अभ्यास कर सकता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस लिपि में शीघ्रता के साथ लिखा जा सकता है।

लेखन शैली सम्बन्धी धाराएं

इस अध्याय की धाराओं के निरूपण के पूर्व ही पाठकों से क्षमा मांगने की आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि शैली के नियम धारा रूप में देने के स्थान पर मैं यह दिखला सकता कि पत्रक को किस ढंग से लिखा जाय, तो कितना अत्युत्तम होता। परन्तु यह सुविधा अभी तक किसी ग्रंथकार को उपलब्ध नहीं हो सकी है। इसी कारण मुझे नियमों के टेढ़े मेढ़े रास्ते को अपनाना पड़ा है। अतः मेरा यह निवेदन है कि पाठक मेरी इन कठिनाइयों को समझेंगे तथा स्वयं पत्र को विस्तृत लिख-लिख कर नियमों का अनुपालन करेंगे।

इसके अतिरिक्त नियमों के निर्माण करने में अपेक्षित रूप से अध्याय १ से ४ तक में प्रतिपादित सामग्री को ध्यान में रखा गया है। उसे जाने बिना इस अध्याय की धाराएं समझ में नहीं आ सकतीं। अतः आगे दी हुई धाराओं को समझने से पूर्व उन धाराओं को भी शीघ्र पढ़ लेना आवश्यक है। इसके विपरीत अध्याय १ से ४ तक की धाराओं को समझने के लिए इस अध्याय की धाराओं से कुछ परिचय होना आवश्यक है। इस प्रकार कुछ पुरस्तात् और कुछ पश्चात् अध्ययन अनिवार्य हो जाता है।

पत्रकगत रेखाएँ

०३०४	**पत्रक-प्रथम-सम-रेखा अग्रा ।**
०३०५	**वामोर्ध्वरेखा प्रथमोर्ध्वा ।**
०३०६	**प्रथमोर्ध्व-दक्षिणा द्वितीयोर्ध्वा ।**

०३०४	पत्रकस्य प्रथमा समरेखा 'अग्रा' इत्युच्यते ।
०३०५	पत्रकस्य वामभागस्था ऊर्ध्वा रेखा 'प्रथमोर्ध्वा' इति उच्यते ।
०३०६	प्रथमायाः ऊर्ध्वरेखाया दक्षिणभागस्था ऊर्ध्वा रेखा 'द्वितीयोर्ध्वा' इति उच्यते ।

०३०४	पत्रक की प्रथम सम रेखा 'अग्रा' कही जाती है ।
०३०५	पत्रक के बाईं ओर की ऊर्ध्व रेखा 'प्रथमोर्ध्वा' कही जाती है ।
०३०६	प्रथम ऊर्ध्वरेखा के दाहिनी ओर की ऊर्ध्व रेखा, 'द्वितीयोर्ध्वा' कही जाती है ।

अग्रानुच्छेदः

०३१	**अग्रारब्धोऽग्रानुच्छेदः ।**
०३११	**अग्रानुच्छेद-रेखाः प्रथमोर्ध्वायाः ।**

०३१	अग्ररेखायाम् आरब्धः अनुच्छेदः अग्रानुच्छेदः इति उच्यते ।
०३११	अग्रानुच्छेदस्य सर्वाः रेखाः प्रथमोर्ध्वरेखायाः आरब्धव्याः ।

०३१	अग्ररेखा से आरम्भ किया हुआ अनुच्छेद अग्रानुच्छेद कहा जाता है ।
०३११	अग्रानुच्छेद की सब रेखाएं प्रथमोर्ध्व रेखा से आरंभ की जायं ।

द्वतरानुच्छेदाः

०३२ अनुच्छेदान्तरारम्भो द्वितीयोर्ध्वायाः ।

०३२० न निर्देशि-परिग्रहण-समङ्कौ ।

०३२१ प्रथमेतररेखाः प्रथमोर्ध्वायाः ।

०३२ अन्येषाम् अनुच्छेदानाम् आरम्भरेखाः द्वितीयोर्ध्व-रेखायाः आरब्धव्याः ।

०३२० परं निर्देशि-संलेखीय-निर्देशिसमङ्कः प्रधान-संलेखीय-परिग्रहणसमङ्कः च स्वधारानुसारं यथास्थाने लेख्यौ ।

०३२१ सर्वेषाम् अनुच्छेदानाम् प्रथमेतररेखाः प्रथमोर्ध्व-रेखायाः आरब्धव्याः ।

०३२ **अन्य अनुच्छेद द्वितीयोर्ध्वरेखा से आरम्भ किये जायं ।**

०३२० **किन्तु निर्देशि-संलेख का निर्देशि-समंक और प्रधान-संलेख का परिग्रहण-समंक अपनी धारा के अनुसार यथास्थान लिखा जाय ।**

०३२१ **सब अनच्छेदों की प्रथमातिरिक्त अन्य रेखाएं प्रथमोर्ध्वरेखा से आरम्भ की जायं ।**

निर्देशि-समङ्कः

०३३० निर्देशि-संलेखीय-वर्ग - पुस्तक - अन्यतर-निरूपक-समङ्कः निर्देशि-समङ्कः ।

०३३१ द्वितीयानुच्छेद-अन्त्यरेखा-दक्षिणान्ते ।

०३३० निर्देशि-संलेखीयस्य वर्गस्य पुस्तकस्य वा निरूपकः समङ्कः निर्देशि-समङ्कः इति उच्यते ।

०३३१ निर्देशि-समङ्कः निर्देशि-संलेख्यस्य द्वितीयानुच्छेदस्य अन्त्यरेखायाः दक्षिण-पार्श्वान्ते लेख्यः ।

०३३० निर्देशि-संलेख के वर्ग अथवा पुस्तक का निरूपक समंक 'निर्देशि-समंक' कहा जाता है ।

०३३१ निर्देशि-समंक निर्देशि-संलेख के द्वितीय अनुच्छेद की अन्त्यरेखा के दाहिनी ओर अन्त में लिखा जाय ।

मालासमङ्कः

०३४ माला-संलेख-मालासमङ्कः प्रथमोर्ध्वायाः ।

०३४१ तदनुगामिपदं द्वितीयोर्ध्वायाः ।

०३४११ माला-समङ्क-दीर्घत्वे एकाक्षरान्तरम् ।

०३४ माला-संलेखे माला-समङ्कः प्रथमोर्ध्वरेखायाः आरब्धव्यः ।

०३४१ माला-समङ्कस्य अनुगामि-पदं द्वितीयोर्ध्व-रेखायाः आरब्धव्यम् ।

०३४११ परं मालासमङ्कः द्वितीयोर्ध्वरेखायाः पारं गच्छति चेत् तदनुगामि पदं एकाक्षर-स्थानं विहाय आरब्धव्यम् ।

०३४ माला-संलेख में माला-समंक प्रथमोर्ध्वरेखा से आरम्भ किया जाय ।

०३४१ माला-समंक के बाद आने वाला पद द्वितीयोर्ध्व-रेखा से आरम्भ किया जाय ।

०३४११ किन्तु यदि माला-समंक लम्बा होने के कारण द्वितीयोर्ध्व-रेखा को पारकर जाय तो उसके बाद आने वाला पद एक अक्षर के स्थान को छोड़कर आरम्भ किया जाय ।

परिग्रहण समङ्कः

०३५ परिग्रहणसमङ्कः अन्त्यरेखा-दक्षिणान्ते ।

०३५१ अनेकत्वेऽनुपुस्तक-समङ्कम् ।

०३५ प्रधान-संलेखस्य परिग्रहण-समङ्कात्मकः अनुच्छेदः सर्वाधोरेखायाः दक्षिणान्ते लेख्यः ।

०३५१ परिग्रहण-समङ्कस्य एकाधिकत्वे ते प्रातिस्विक-पुस्तक-समङ्क-क्रमानुसारं तथा लेख्याः यथा अन्त्यः समङ्कः सर्वाधोरेखा-दक्षिणान्तं भजेत् ।

०३५ प्रधान-संलेख का परिग्रहण-समंक-रूपी अनुच्छेद सबसे निचली रेखा के दाहिनी ओर अन्त में लिखा जाय ।

०३५१ यदि परिग्रहण-समंक एक से अधिक हों तो संवादि-पुस्तक-समंकों के क्रमानुसार वे इस प्रकार लिखे जायं कि अन्तिम समंक सबसे निचली रेखा के दाहिनी ओर अन्त में आय ।

शीर्षकम्

०३६०१ प्रधान-संलेख-द्वितीयानुच्छेदः शीर्षकम् ।

०३६०२ निर्देशि-अग्रानुच्छेदः च ।

०३६०३ नामान्तर-निर्देशि-अग्र-तृतीयानुच्छेदौ च ।

०३६१ अनेकत्वे आद्यं प्रधानम् ।

०३६१० अन्यद् उपशीर्षकम् ।

०३६११ प्रत्येकं वाक्यम् ।

०३६०१ प्रधान-संलेखस्य द्वितीयः अनुच्छेदः शीर्षकं भवति ।

०३६०२ निर्देशि-संलेखस्य अग्रानुच्छेदः अपि शीर्षकं भवति ।

०३६०३ नामान्तर-निर्देशि-संलेखस्य अग्रानुच्छेदः तृतीयानुच्छेदः च अपि शीर्षकौ भवतः ।

०३६१ शीर्षकस्य अनेक-वाक्यमयत्वे तेषाम् आद्यं प्रधानम् ।

०३६१० प्रधान-शीर्षकाद् अन्यत् शीर्षकम् 'उपशीर्षकम्' इति उच्यते ।

०३६११ शीर्षकस्य अनेकत्वे तेषां प्रत्येकं शीर्षकं पृथग् वाक्यं ज्ञेयम् ।

०३६०१ प्रधान-संलेख का द्वितीय अनुच्छेद शीर्षक होता है ।

०३६०२ निर्देशि-संलेख का अग्रानुच्छेद भी शीर्षक होता है ।

०३६०३ नामान्तर-निर्देशि-संलेख का अग्रानुच्छेद और तृतीयानुच्छेद भी शीर्षक ोता है ।

०३६१ यदि शीर्षक में एक से अधिक वाक्य हों तो उनमें पहला प्रधान शीर्षक कहा जाता है ।

०३६१० प्रधान शीर्षक से अन्य शीर्षक 'उपशीर्षक' कहा जाता है ।

०३७११ यदि शीर्षक अनेक हों तो उनमें से प्रत्येक शीर्षक पृथक् वाक्य माने जायँ ।

०३६२ शीर्षकं विशिष्टलिप्याम् ।

०३६२० न कोष्ठक-लेख्य-देशक-वर्णक-व्यक्ति-साधक-योजक-'अ.' 'इ.' संक्षेपाः ।

०३६२ अनन्तरधारा-निर्देश-वर्जं शीर्षक-पदानि निर्धारितायाः विशिष्टायां लिप्यां लेख्यानि ।

०३६२० परं कोष्ठक-लेख्यानि, देशकानि, वर्णकानि, व्यक्तिसाधकानि, योजकानि, पदानि 'अ.' 'इ.' संक्षेपाः च सामान्य-लिप्याम् लेख्याः ।

०३६२ अगली धारा में निर्दिष्ट स्थलों को छोड़कर, शीर्षक के पद निर्धारित विशिष्ट लिपि में लिखे जाएं ।

०३६२० किंतु कोष्ठक-लेख्य, देशक, वर्णक,व्यक्ति-साधक और योजक पद तथा 'अ.' 'इ'. संक्षेप सामान्य लिपि में लिखे जायं ।

यदि संलेख अंग्रेजी में हो और लिखित हो तो शीर्षक के लिए रोमन बड़े अक्षर (Block letters) काम में लाए जाएं। यदि मुद्रित हों तो छोटे (Small caps) काम में लाये जाएं।

यदि संलेख हिन्दी में हो और लिखित हो तो शीर्षक मात्राधिक लिपि में लिखा जाय। यदि मुद्रित हो तो अन्य अक्षरों से विभिन्न अक्षर काम में लाए जायं। उदाहरणार्थ यदि अन्य अक्षर (text) सफेद टाइप में हों तो शीर्षक कृष्णमुख (Black face) में हो सकते हैं।

'अर्थात्' इस पद के लिए 'अ.' यह संक्षेप प्रयुक्त किया जाता है।

०३६३ आदि-लेख्य-इतर - शीर्षक - व्यष्टि - नाम वृत्तकोष्ठके।

०३६३० यथानुक्रमम्।

०३६३ व्यष्टि-नाम्नि शीर्षके आदि-लेख्य-वर्जं नाम-पदानि वृत्तकोष्ठके लेख्यानि।

०३६३० तानि पदानि यथानुक्रमं लेख्यानि।

०३६३ **यदि व्यक्ति का नाम शीर्षक हो तो आदि में लिखे जानेवाले पदों को छोड़कर अन्य सब नाम के पद वृत्तकोष्ठक में लिखे जायं।**

०३६३० **वे पद क्रमानुसार लिखे जायं।**

०३६४ आदि-लेख्य-इतर-शीर्षक - प्रधान - शीर्षक, उपशीर्षक-अन्यतम-समष्टि-नाम वृत्त-कोष्ठके।

०३६४० रिक्तस्थाने रेखिका।

०३६४ समष्टि-नाम्नि शीर्षके, प्रधान-शीर्षके, उपशीर्षके वा आदिलेख्यवर्जं नाम-पदानि आदिलेख्यपद-स्थाने रेखिकां विधाय वृत्तकोष्ठके लेख्यानि।

०३६४० नाम्नः आदिलेख्यस्य पदस्य रिक्ते स्थाने रेखिका लेख्या ।

०३६४ यदि समष्टि का नाम शीर्षक, प्रधान-शीर्षक, उपशीर्षक हो तो आदि में लिखे जानेवाले शब्दों को छोड़कर अन्य सब नाम के पद वृत्तकोष्ठक में लिखे जायं।

०३६४० नाम के आदि में लिखे जाने वाले पद के रिक्त स्थान में रेखिका लिखी जाय।

०३६५ विषय-शीर्षकाणि विशिष्टलिप्याम् ।

०३६५१ विषयोपशीर्षकाणि अधोरेखाङ्कितानि च।

०३६५ सर्वाणि विषयशीर्षक-प्रदानि विशिष्टायां लिप्याम् लेख्यानि ।

०३६५१ सर्वाणि विषयोपशीर्षकाणि विशिष्टायां लिप्याम् लेख्यानि अधोरेखाङ्कितानि च कर्त्तव्यानि ।

०३६५ विषय शीर्षक के सब पद निर्धारित विशिष्ट लिपि में लिखे जायं ।

०३६५१ विषयोपशीर्षक के सब पद विशिष्ट लिपि में लिखे जायं तथा उनके नीचे रेखा खींची जाय ।

सहाय शब्दाः

०३६६ देशक-वर्णक-पदानि सामान्य-लिप्यामधो-रेखाङ्कितानि च ।

०३६७ व्यक्ति-साधक-योजक-पदानि सामान्य-लिप्याम् ।

०३६८ व्यक्ति-साधक-क्रमबोधक-समङ्कः नामान्ते

०३६६ सर्वाणि देशकानि, वर्णकानि च पदानि सामान्यायां लिप्याम् लेख्यानि अधो-रेखाङ्कितानि च कर्त्तव्यानि।

०३६७ सर्वाणि व्यक्ति-साधकानि योजकानि च पदानि सामान्यायाम् लिप्याम् लेख्यानि ।

०३६८ यदि नाम्नः व्यक्तिसिद्धिः समङ्केन चेत् सः क्रम-बोधकरूपेण नामान्ते लेख्यः ।

०३६६ सब देशक और वर्णक पद सामान्य लिपि में लिखे जायं तथा उनके नीचे रेखा खींची जाय ।

०३६७ सब व्यक्ति-साधक और योजक पद सामान्य लिपि में लिखे जायं ।

०३६८ यदि नाम की व्यक्ति-सिद्धि समंक से की जानी आवश्यक हो तो उसे क्रमबोधक रूप के नाम के अन्त में लिखा जाय ।

०३६९१ शीर्षक-वर्णक-व्यक्ति-साधक-पदानि पृथक् वाक्यम् ।

०३६९२ शीर्षक-अवान्तरनाम-अनुगत 'अ.' विशिष्ट-कोष्ठकं च ।

०३६९२० 'अर्थात्' इत्यस्य 'अ' इति संक्षेपः ।

०३६९१ शीर्षकस्य सर्वाणि वर्णकानि, व्यक्तिसाधकानि च पदानि पृथक् वाक्यम् ज्ञेयानि ।

०३६९२ शीर्षकस्य अवान्तरनामानुगतेन 'अ.' इति संक्षेपेण युक्तं कोष्ठकं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

०३६९१ शीर्षक के सब वर्णक और व्यक्ति-साधक पद पृथक् वाक्य माने जायं ।

०३६९२ शीर्षक में आने वाला, अवान्तर-नाम से अनुगत 'अ.' से युक्त कोष्ठक पृथक् वाक्य माना जाय ।

संलेख-शेष:

०३७२	**विराम-चिह्नानि अनुव्याकरणम् ।**
०३७५	**पदान्तराणि सामान्य-लिप्याम्**
०३७५१	**अन्वनुच्छेद-वाक्य-लक्षणम् ।**
०३७६	**व्यष्टि-समष्टि-नाम-पदानि अनुस्वाभाविक-क्रमम् ।**

०३७२	विरामस्य चिन्हानि व्याकरण-नियमान् अनुसृत्य देयानि ।
०३७५	अन्यानि पदानि सामान्यायां लिप्याम् लेख्यानि ।
०३७५१	तानि च अनुच्छेदस्य वाक्यस्य च लक्षणम् अनुसृत्य लेख्यानि ।
०३७६	व्यष्टेः समष्टेः च नाम्नः पदानि तेषाम् स्वाभाविकं क्रमम् अनुसृत्य लेख्यानि ।

०३७२	**विराम के चिन्ह व्याकरण के नियमों का अनुसरण कर लगाये जायं ।**
०३७५	**अन्य सब पद सामान्य लिपि में लिखे जायं ।**
०३७५१	**वे अनुच्छेद और वाक्य के लक्षण का अनुसरण कर लिखे जायं ।**
०३७६	**व्यष्टि और समष्टि के नामों के पद उनके अपने-अपने स्वाभाविक क्रम के अनुसार लिखे जायं ।**

विराम चिह्न एवं अन्य चिह्नों के प्रयोग के सम्बन्ध में व्याकरण के नियम सर्वथा कठोर अथवा स्थिर हैं, यह कहा नहीं जा सकता । मेरा तो यह विश्वास है कि उनमें इतना लचीलापन है कि व्यक्तिगत रुचियों को थोड़ी बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त है । किन्तु यदि इसी प्रकार किसी ग्रंथालय के अनेक सूचीकारों की व्यक्तिगत विभिन्न रुचियों को स्वतन्त्रता दी गई तो परिणाम यह होगा कि सूची सर्वथा भद्दी बन जायगी । अतः हमारा तो यह सुझाव है कि व्याकरण के नियम

जो स्वतन्त्रता देते हैं उसे प्रत्येक ग्रन्थालय अपने विभिन्न सूचीकारों तक न जाने दे। अपितु प्रत्येक ग्रन्थालय अपने स्वतन्त्र नियम बना सकता है और उन्हें कठोरता-पूर्वक कार्यान्वित कर सकता है। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। यह भी वांछनीय नहीं है कि ग्रन्थालयों की स्वतन्त्रता नष्ट कर दी जाय और कठोर नियमों के एकरूप संघात को सब ग्रन्थालयों पर समान रूप से लागू कर दिया जाय।

०३८ क्रामक-वर्ग, इतर, समङ्कः भारतीयः।

०३८१ अनुस्यूत-संख्या-संघातः आद्य-रेखिका-अन्त्यमयः।

०३८१० इदं पूरितसमङ्कनम्।

०३८११ अनन्ते नान्त्या।

०३८११० इदम् अपूरितसमङ्कनम्।

०३८२ समश्रेणि-पृथक्समङ्क, पूरितसमङ्कन, अन्तराले अल्पविरामः।

०३८७ वर्ग-पुस्तक-समङ्क-अन्तराले अङ्कत्रयस्थानम्।

०३८ क्रामक-समङ्कं वर्ग-समङ्कं च विहाय अन्यः समङ्कः भारतीयः लेख्यः।

०३८१ अनुस्यूतायाः संख्यायाः संघाते आद्या संख्या, रेखिका अन्त्या संख्या च भवन्ति।

०३८१० इदं समङ्कनम् पूरित-समङ्कनम् इति उच्यते।

०३८११ अनुस्यूतायाः संख्यायाः संघाते अनन्ते, अन्त्या संख्या न भवति।

०३८११० इदम् समङ्कनम् अपूरित-समङ्कनम् इति उच्यते।

०३८२ समश्रेणिकयोः पृथक्समङ्कयोः पूरितसमङ्कनयोः च अन्तराले अल्प विरामः कार्यः।

०३८७ वर्ग-समङ्कस्य पुस्तक-समङ्कस्य च अन्तराले अङ्क-त्रयस्य स्थानं रिक्तं त्याज्यम् ।

०३८ क्रामक-समंक और वर्ग-समंक को छोड़कर अन्य सब समंक भारतीय लिखे जायं ।

०३८१ अनुस्यूत-संख्या के संघात में आद्य-संख्या, रेखिका (डेश) और अन्त्य संख्या होती है ।

०३८१० यह समंकन पूरित-समंकन कहा जाता है ।

०३८११ यदि अनुस्यूत-संख्या के संघात का अन्त न हो तो अन्तिम संख्या न लिखी जाय ।

०३८११० यह समंकन अपूरित-समंकन कहा जाता है ।

०३८२ समश्रेणि वाले दो पृथक् समंकों के तथा दो पूरित समंकनों के बीच अल्प विराम किया जाए ।

०३८७ वर्ग-समंक और पुस्तक-समंक के बीच में तीन अंकों का स्थान रिक्त छोड़ा जाय ।

०३९१ असामान्य-पुस्तकानि त्रिविधानि ।

०३९१० अल्प-महाकार-सुरक्षणीयानि ।

०३९१ असामान्यानां पुस्तकानां त्रयः प्रकाराः भवन्ति ।

०३९१० तानि च अल्पाकाराणि, महाकाराणि सुरक्षणीयानि च भवन्ति ।

०३९१ असामान्य पुस्तकों के तीन प्रकार हैं ।

०३९१० वे अल्पाकार, महाकार और सुरक्षणीय होते हैं ।

अनुभव द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि पुस्तिकाओं को, महाकार पुस्तकों को तथा अन्य असामान्य पुस्तकों को उनकी अपनी स्वतन्त्र कक्षाओं में व्यवस्थापित किया जाय तो बड़ी ही सुविधा होगी। इसके विपरीत, यह भी वांछनीय नहीं है कि उनके संवादी संलेखों को सूची में उनके स्वाभाविक स्थान से निकाल कर अलग कर दिया जाय। अतः कोई ऐसी सरल रीति अपनानी चाहिये कि उन ग्रन्थों के संलेखों में ही यह प्रदर्शित कर दिया जा सके कि चयन-शाला में वे

किस कक्षा में पाये जा सकते हैं। अनेक परीक्षणों के पश्चात् मद्रास विश्वविद्यालय ग्रन्थालय ने एक योजना का आविष्कार किया है । वह योजना इस धारा के उपभेदों में वर्णित की गई है ।

पुस्तिका, महाकार पुस्तक इत्यादि के प्रमाण के निर्धारण में रूढ़िवादी नहीं बना जा सकता । यही कारण है कि इस धारा में निर्धारण के कार्य को अलग-अलग ग्रन्थालयों के भरोसे छोड़ दिया गया है। यह आशा की जाती है कि प्रत्येक ग्रन्थालय, अपने अनुभव के आधार पर, अपना कोई एक स्वतन्त्र निश्चय करेगा और वह निश्चय इस धारा का पूरक होगा ।

उदाहरण के रूप में मद्रास विश्वविद्यालय ग्रन्थालय में व्यवहृत निर्धारण यहां दिया जा रहा है:—

(क) किसी संपुट को अल्पाकार माना जाय यदि

(१) उसकी चौड़ाई १२″ से कम हो; तथा

(२) (अ) उसकी मोटाई २″ से अधिक न हो;

(आ) अथवा उसकी मोटाई १″ से अधिक न हो तथा उसकी ऊंचाई ६″ से कम हो;

अथवा

(इ) उसकी मोटाई २″ से अधिक न हो तथा उसकी ऊंचाई ५″ से कम हो;

अथवा

(ई) उसकी मोटाई ६″ से अधिक न हो तथा उसकी ऊंचाई २″ से कम हो ।

(ख) किसी संपुट को महाकार माना जाय, यदि उसकी चौड़ाई १२″ से कम न हो ।

(ग) किसी संपुट को सुरक्षणीय माना जाय यदि

(१) उसमें कम से कम ५० चित्र अथवा मानचित्र हों अथवा दोनों मिल कर उतने हों ।

(२) उसका कागज बहुत खस्ता हो, जैसे न दबाया हुआ कागज अथवा जिस पर मिट्टी अत्यधिक चढ़ गई हो ।

अथवा

(३) प्रतिपाद्य विषय की विशेषताके कारण अथवा संपुट की

दुर्लभता जन्य अमूल्यता के कारण अनुलय विभाग जिसे सुरक्षणीयकक्षा में प्रविष्ट करने के लिए सुझाव दे।

०३९११ अल्पाकार-पुस्तक समङ्के अधोरेखा।

०३९१२ महाकारीये उपरि।

०३९१३ सुरक्षणीये उभयतः।

०३९१४ प्रधान-इतर-कक्षेय-पुस्तक-समङ्के कक्षा चिह्नम्।

०३९११ अल्पाकाराणां पुस्तकानां पुस्तक-समङ्के अधस्तात् रेखा कार्या।

०३९१२ महाकाराणां पुस्तकानां पुस्तक-समङ्के उपरिष्टात् रेखा कार्या।

०३९१३ सुरक्षणीयानां पुस्तकानां पुस्तक-समङ्के अधस्तात् उपरिष्टात् च उभयत्र रेखा कार्या।

०३९१४ प्रधान-कक्षायाः इतरत्र विद्यमानानां पुस्तकानां पुस्तक-समङ्के तत्कक्षासूचकं कक्षाचिह्नम् कार्यम्।

०३९११ अल्पाकार पुस्तकों के पुस्तक-समंक के नीचे रेखा बनाई जाय।

०३९१२ महाकार पुस्तकों के पुस्तक-समंक के ऊपर रेखा बनाई जाय।

०३९१३ सुरक्षणीय पुस्तकों के पुस्तक-समंक के नीचे तथा ऊपर दोनों ओर रेखा बनाई जाय।

०३९१४ प्रधान कक्षा से अन्यत्र रखी हुई पुस्तकों के पुस्तक-समंकों पर उस कक्षा को सूचित करने वाला कक्षा-चिन्ह लगाया जाय।

जन-ग्रन्थालय में कक्षा-चिन्ह द्वारा यह सूचित किया जा सकता है कि वह ग्रन्थ किस शाखा-ग्रन्थालय में रक्खा गया है। विश्वविद्यालय अथवा महाविद्यालय ग्रंथालय में उस विभाग का सूचन होता है जहां वह ग्रंथ रखा गया हो[७] तथा विद्या-

७. **और द्रष्टव्य** रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रंथालय-प्रबन्ध (*Library administration*). १९३५. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ५) अनुच्छेद ८१.

लय ग्रंथालय में उस कक्षा (वर्ग) का सूचन होता है जिसके लिए वह उद्दिष्ट हो।[८]

०३९२ पत्रके पूरिते अपरम् ।

०३९२०१ 'अनन्तर-पत्रके सन्ततम्' इति पूरित-पत्रक-अन्त्य-रेखान्ते ।

०३९२०२ 'सन्ततम्' इति अनन्तर-पत्रक-अग्ररेखा-दक्षिणान्ते ।

०३९२०३ अग्रानुच्छेदः सर्वत्र ।

०३९२०४ तानि सन्त तपत्रकाणि ।

०३९२ संलेखस्य एकस्मिन् पत्रके पूरिते सति अपरं पत्रकं ग्राह्यम् ।

०३९२०१ 'अनन्तरे-पत्रके सन्ततम्' इत्ययं वाक्यांशः पूरितस्य पत्रकस्य अन्त्यायाः रेखायाः अन्ते लेख्यः ।

०३९२०२ 'सन्ततम्' इति पदम् अनन्तरस्य पत्रकस्य अग्ररेखायाः उपरि दक्षिणान्ते लेख्यम् ।

०३९२०३ प्रथमस्य पत्रकस्य अग्रानुच्छेदः सर्वेषु पत्रकेषु लेख्यः ।

०३९२०४ तानि सर्वाणि पत्रकाणि 'सन्तत-पत्रकाणि' इति उच्यन्ते ।

०३६२ यदि कोई संलेख लम्बा होने के कारण एक पत्रक पर पूरा न आ सके तो दूसरा पत्रक लेना चाहिये ।

०३६२०१ 'अनन्तर पत्रक' में 'सन्तत' यह वाक्यांश पूरित पत्रक के अन्त की रेखा के अन्त में लिखा जाय ।

---

८ **और द्रष्टव्य** रंगनाथन (श्री. रा.) .विद्यालय एवं महाविद्यालय ग्रन्थालय (*School and college libraries*). १९४२. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ११). अनुच्छेद ५५१ प्रभृति .

०३९२०२ 'सन्तत' यह पद अनन्तर-पत्रक की अग्ररेखा के ऊपर दाहिनी ओर अन्त में लिखा जाय ।

०३९२०३ प्रथम पत्रक का अग्रानुच्छेद सभी पत्रकों में लिखा जाय ।

०३९२०४ उन सभी पत्रकों को 'सन्तत-पत्रक' कहा जाता है ।

०३९२१ संघात विच्छेद-नाम परिवर्तन - अष्टमाध्याय-अष्टमधारा-निर्दिष्ट-अन्यतम, कारणक-नानापत्रक-लिखित-सरूपवर्ग-समङ्क-सामयिक-प्रधान-संलेख श्रेणिरपि ।

०३९२१ संघातस्य विच्छेदात्, नाम्नः परिवर्तनात्, अष्टमाध्यायस्य अष्टमधारायां निर्दिष्टात् वा हेतोः नानापत्रकेषु लिखिता सरूपवर्ग-समङ्किका सामयिकप्रकाशनानां प्रधान-संलेखश्रेणिरपि सन्तत-पत्राणि इति उच्यते ।

०३९२१ संघात के विच्छेद से नाम के परिवर्तन से अथवा आठवें अध्याय की आठवीं धारा में निर्दिष्ट कारण से, अनेक पत्रकों में लिखी हुई, समान वर्ग-समंक वाली, सामयिक प्रकाशनों के प्रधान-संलेखों की परम्परा भी 'सन्तत-पत्रक' कही जाती है ।

०३९२२ सन्तत-पत्रकेषु योजक-पदानि आद्ये ।

०३९२२१ आद्ये अधः ।

०३९२२२ अन्त्ये अग्रम् ।

०३९२२३ इतरेषु उभयतः ।

०३९२२ सन्तत-पत्रकेषु त्रिप्रभृतिषु सत्सु योजक-पदानि लेख्यानि ।

०३९२२१ प्रथम-पत्रके अन्त्यरेखायाम् अधोलेख्यानि ।

०३९२२२ अन्त्ये पत्रके उपरिष्टात् लेख्यानि ।

०३९२२३ इतरेषु पत्रकेषु अधस्तात् उपरिष्टात् च उभयत्र लेख्यानि ।

०३६२२ यदि 'सन्तत-पत्रक' तीन अथवा उससे अधिक हों तो योजक पद प्रथम पत्रक में अन्तिम रेखा पर नीचे लिखा जाय ।

०३६२२१ अन्तिम पत्रक में अग्ररेखा के ऊपर की ओर लिखा जाय ।

०३६२२२ अन्य पत्रकों में नीचे तथा ऊपर दोनों ओर लिखे जायं ।

०३९२३ सन्तत-पत्रके क्रम समङ्कः ।

०३९२३१ उपरितन-योजक-पदात् परम् ।

०३९२३ सन्तत-पत्रक-संघातस्य पत्रकेषु क्रम-समङ्कः लेख्यः ।

०३९२३१ सः क्रम-समङ्कः उपरितनात् योजक-पदात् परं लेख्यः ।

०३६२३ सन्तत-पत्रक-संघात के पत्रकों पर क्रम-समंक लिखा जाय ।

०३६२३१ वह क्रम-समंक ऊपरवाले योजक पद से आगे लिखा जाय ।

अध्याय ०४

लिप्यन्तरकरण

०४ **आख्या-पत्रे इष्ट-इतरा-लिपिके लिप्य-न्तरकरण, संमत-सारिणी-प्रमाणेन इष्ट-लिपिः ।**

०४ आख्या-पत्रे इष्टायाः इतरस्यां लिप्यां सति लिप्य-न्तर-करणाय संमतां सारिणीम् अनुसृत्य इष्टलिप्यां संलेखो लेख्यः ।

०४ **यदि आख्या-पत्र इष्ट लिपि से अन्य लिपि में हो तो लिपि परिवर्तन के लिए स्वीकृत सारणी का अनुसरण कर इष्ट लिपि में संलेख लिखा जाय ।**

इस ग्रन्थ की लिपि देवनागरी है । अतः इसके सभी उदाहरण देवनागरी में हैं । इसे शब्दान्तरों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि ये उदाहरण उस ग्रन्थालय के लिए छापे गये हैं जिसकी इष्ट लिपि देवनागरी हो ।

०४१ **रॉयल् एशियाटिक् सोसायटी ऑफ् ग्रेट् ब्रिटेन् एण्ड् आयरलैंड्-सामयिक-सारिणी प्रमाणम् ।**

०४१ रॉयल-एशियाटिक् सोसायटी ऑफ् ग्रेट् ब्रिटेन् एण्ड् आयरलैंड् सामयिके परिगृहीतानां लिपीनां लिप्यन्तरकरणे कृते तस्मिन् दत्ता सारिणी प्रमाण-रूपेण ग्राह्या ।

०४१ रायल एशियाटिक सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैंड सामयिक में स्वीकृत लिपियों के लिये उसमें दी हुई सारिणी को प्रमाण रूप से माना जाय।

अध्याय ०५

संक्षिप्त रूप

संलेखों के लिखने में निम्नलिखित संक्षिप्त रूप प्रयोग में लाये जायँ:—

उपोद्घात	उपो.
उपोद्घात लेखक	उपो.
उपोद्घातीय	उपो.
कल्पितनाम	कल्पित.
चित्र	चित्र.
चित्रकार	चित्र.
टिप्पण	टिप्प.
टिप्पणकार	टिप्प·
टिप्पणित	टिप्प.
पृष्ठ	पृ.
भाग	भा.
भाषान्तर	भाषा.
भाषान्तरकार	भाषा.
भाषान्तरित	भाषा.
लोकप्रिय	लोक.
विशिष्ट	विशि.
व्याख्या	व्याख्या.
व्याख्याकार	व्याख्या.
शताब्दी	शती.
संक्षिप्त	संक्षि.
संक्षेप	संक्षे.
संक्षेपक	संक्षे.
संख्या	सं.
संग्राहक	संग्रा.

संग्रहीत	संग्र.
संपादक	संपा.
संपादित	संपा.
संपुट	संपु.
संशोधक	संशो.
संशोधन	संशो.
संशोधित	संशो.
समर्पण	समर्प.
समर्पण-पात्र	समर्प.
समर्पित	समर्पि.
सह	सह.

अध्याय ०६

संलेख-व्यवस्थापन

०६१ **अनुवर्ग-भाग-व्यवस्थापने अग्रानुच्छेद-वर्ग-समङ्कः प्रमाणम् ।**

०६१ अनुवर्ग भागस्य संलेखाः तेषाम् अग्रानुच्छेदे विद्यमानैः वर्गसमङ्कैः व्यवस्थापनीयाः ।

०६१ **अनुवर्ग भाग के संलेख उसके अग्रानुच्छेदों पर दिये हुए वर्ग-समंकों से व्यवस्थापित किये जायं ।**

वर्ग समंकों का क्रामक व्यवस्थापन वर्गीकरण की उस पद्धति पर निर्भर है जो व्यवहार में हो। यदि द्विबिन्दु वर्गीकरण व्यवहार में हो तो व्यवस्थापन उस ग्रन्थ के अध्याय ०२ की धारा ०२३, ०२४ तथा ०२४१ से नियन्त्रित होगा।

०६११ **अग्रानुच्छेद-सरूप-वर्ग-समङ्क, संलेख-व्यवस्थापने अधोधाराः प्रमाणम् ।**

०६११ स्वीयेषु अग्रानुच्छेदेषु सरूपैः वर्गसमङ्कैः युक्तानां संलेखानां व्यवस्थापने अधोनिर्दिष्टाः धाराः अनुसर्तव्याः ।

०६११ **अपने अपने अग्रानुच्छेदों में समान वर्ग-समंकों से युक्त संलेखों के व्यवस्थापन के लिए निम्नलिखित धाराएं अनुसरण की जायं ।**

इस प्रकार के संलेख या तो उन कृतियों के प्रधान संलेख होंगे जो सम्बद्ध वर्गसमंक द्वारा व्यक्त विशिष्ट विषय का मुख्यतः निरूपण करते होंगे अथवा विषयान्तर संलेख होंगे जो उन विषयों का गौणतः निरूपण करते होंगे।

०६१११ सपुस्तक-समङ्काः अतद्भ्यः प्राक् ।

०६१११ पुस्तक-समङ्कैः सहिताः संलेखाः पुस्तक-समङ्कैः रहितेभ्यः संलेखेभ्यः प्राक् व्यवस्थापनीयाः ।

०६१११ पुस्तक-समंकसहित संलेख पुस्तक-समंकोंरहित संलेखों से पहले लगाए जायं ।

इस धारा का परिणाम यह होगा कि किसी विशिष्ट विषयों से सम्बद्ध प्रधान संलेखों को तथा विषयान्तर संलेखों को पृथक् कर दिया जाय, तथा उनमें भी प्रथम वर्ग को पूर्ववर्तिता दी जाय ।

०६११२ तद्व्यवस्थापने पुस्तक-समङ्कः प्रमाणम् ।

०६११२ पुस्तक-समङ्कैः सहिताः संलेखाः तेषाम् अग्रानुच्छेदे विद्यमानैः पुस्तक-समङ्कैः व्यवस्थापनीयाः ।

०६११२ पुस्तक-समंकसहित संलेख उनके अग्रानुच्छेदों पर दिए हुए पुस्तक-समंकों से व्यवस्थापित किये जायं ।

पुस्तक समंकों का क्रमिक व्यवस्थापन वर्गीकरण की उस पद्धति पर निर्भर है जो व्यवहार में हो । यदि **द्विबिन्दु वर्गीकरण** व्यवहार में है तो व्यवस्थापन उस ग्रन्थ के अध्याय ०३ की धारा ०३१२ तथा ०३१३ द्वारा नियन्त्रित होगा ।

०६११२० अग्रानुच्छेद-सरूप-वर्ग, पुस्तक-समङ्क-संलेखाः "सन्तत" संलेख-कक्षा ।

०६११२०१ तद्व्यवस्थापने स्वभाव-क्रमः प्रमाणम् ।

०६११२० अग्रानुच्छेदे सरूपैः वर्ग-समङ्कैः पुस्तक-समङ्कैः च सहिताः संलेखाः "सततानां" संलेखानां कक्षा इत्युच्यते ।

०६१११२०१ ईदृशाः संलेखाः तेषाम् स्वाभाविकेन क्रमेण व्यवस्थापनीयाः ।

०६१११२०१ अग्रानुच्छेद पर समान वर्ग-समंकों से तथा पुस्तक-समंकों से सहित संलेख "सतत" संलेखों की कक्षा कही जाती है।
०६१११२०१ इस प्रकार के संलेख उनके स्वाभाविक क्रम के अनुसार व्यवस्था-पित किए जायं।

०६१११३ एकाधिकावृत्तिकानां प्रधान-संलेखाः एकस्मिन् ।
०६१११३१ अयम् एकीकृतः ।
०६१११३२ पुस्तक-समङ्काः क्रमेणास्मिन् ।
०६१११३३ तद्व्यवस्थापने अन्त्य-पुस्तक-समङ्कः प्रमाणम् ।

०६१११३ कस्यचित् पुस्तकस्य एकाधिकावृत्तिषु विद्यमानासु तासां प्रधान-संलेखाः एकस्मिन् पत्रके लेख्याः ।
०६१११३१ अयम् संलेखः एकीकृतः इति उच्यते ।
०६१११३२ सर्वेषाम् संलेखानां पुस्तकसमङ्काः अस्मिन् एकीकृत-संलेखे क्रमेण लेख्याः ।
०६१११३३ ईदृशः संलेखः अग्रानुच्छेदे विद्यमानेन अन्त्यावृत्तेः पुस्तक-समङ्केन व्यवस्थापनीयः ।

०६१११३ यदि किसी पुस्तक की एक से अधिक आवृत्तियां हों तो उनके प्रधान-सलेख एक पत्रक पर लिखे जायं ।
०६१११३१ यह सलेख एकीकृत कहा जाता है ।
०६१११३२ सब सलेखों के पुस्तक-समंक इस एकीकृत संलेख में क्रमशः लिखे जायं ।

०६११३३ **इस प्रकार का संलेख उसके अग्रानुच्छेद पर दिए हुए अन्तिम पुस्तक-समंक से व्यवस्थापित किया जाय ।**

०६१४ **प्रातिस्विक - अग्रानुच्छेद - पुस्तक - समङ्क - रहित - संलेख - व्यवस्थापने प्रातिस्विक - तृतीयानुच्छेद-पुस्तक-समङ्कः प्रमाणम् ।**

०६१४ स्वीयेषु स्वीयेषु अग्रानुच्छेदेषु पुस्तक-समङ्कैः रहिताः संलेखाः तेषामेव स्वीयेषु स्वीयेषु तृतीयानुच्छेदेषु वर्तमानैः पुस्तकसमङ्कैः व्यवस्थापनीयाः ।

०६१४ **अपने अपने अग्रानुच्छेदों में पुस्तक-समंकों से रहित संलेख उन्हीं के अपने अपने तृतीय अनुच्छेदों पर दिए हुए पुस्तक-समंकों से स्थापित किए जायं ।**

इस धारा का परिणाम यह होगा कि किसी विशिष्ट विषय से सम्बद्ध विषयान्तर संलेख अपनी कृतियों की भाषाओं द्वारा समन्वित होंगे तथा प्रत्येक भाषा वर्ग में उनका व्यवस्थापन कृतियों के प्रकाशन वर्ष के कालक्रम से होगा ।

०६१४१ **पूर्वधारा-विषय-प्रातिस्विक - तृतीयानुच्छेद - सरूप - पुस्तक - समङ्क - संलेख - व्यवस्थाने प्रातिस्विक - तृतीयानुच्छेद - वर्ग - समङ्कः प्रमाणम् ।**

०६१४१ पूर्वोक्तायाः ०६१४ धारायाः अन्तर्वर्तिनः, स्वीयेषु स्वीयेषु तृतीयानुच्छेदेषु सरूपैः पुस्तकसमङ्कैः सहिताः संलेखाः तेषाम् स्वीयेषु स्वीयेषु तृतीयानुच्छेदेषु विद्यमानैः वर्गसमङ्कैः व्यवस्थापनीयाः ।

०६१४१ पूर्वोक्त ०६१४ धारा के अन्दर आने वाले, अपने अपने तृतीयानुच्छेदों पर सरूप (अभिन्न) पुस्तक-समंक वाले संलेख उनके अपने तृतीयानुच्छेदों पर दिए हुए वर्ग-समंकों से व्यवस्थापित किए जायं।

व्यवस्थापन निश्चित तथा दृढ़ करने के लिए यह साधारणतः सुविधाजनक साधन है।

०६१५ अग्रानुच्छेद - प्रातिस्विक - तृतीयानुच्छेद-पुस्तक-समङ्क-रहित, प्रातिस्विक-अग्रानु-च्छेद-सरूप-वर्ग-समङ्क-संलेखाः 'सन्तत' संलेख-कक्षा।

०६१५१ तद्व्यवस्थापने स्वभाव-क्रमः प्रमाणम्।

०६१५ अग्रानुच्छेदेषु स्वीयेषु स्वीयेषु तृतीयानुच्छेदेषु च पुस्तकसमङ्कैः रहिताः स्वीयेषु स्वीयेषु अग्रानुच्छेदेषु सरूपैः वर्गसमङ्कैः च सहिताः संलेखाः "सततानां" संलेखानां कक्षा इति उच्यते।

०६१५१ ईदृशाः संलेखाः तेषाम् स्वाभाविकेन क्रमेण व्यवस्थापनीयाः।

०६१५ अग्रानुच्छेदों पर तथा अपने अपने तृतीयानुच्छेदों पर पुस्तक-समंकों से रहित और अपने अपने अग्रानुच्छेदों पर सरूप अभिन्न वर्ग-समंकों से सहित सलेख "सतत" संलेखों की कक्षा कही जाती है।

०६१५१ इस प्रकार के संलेख उनके स्वाभाविक क्रम के अनुसार व्यवस्थापित किए जायं।

इस नियम का परिणाम यह होगा कि किसी सामयिक प्रकाशन के संलेखों का व्यवस्थापन स्वतः स्वाभाविक क्रम में हो जायगा।

०६२ अनुवर्ण - भाग-संलेख-व्यवस्थापने वर्णमाला प्रमाणम् ।

०६२० विराम-चिह्न - पदान्तराल, लेखन - शैली, प्रभृतिकम् उपेक्षणीयम् ।

०६२०१ इदं वर्ण-केवल-व्यवस्थापनम् ।

०६२ अनुवर्ण-भागस्य संलेखाः वर्णमालाम् अनुसृत्य व्यवस्थापनीयाः ।

०६२० विरामचिन्हानि पदयोः मध्ये विद्यमानम् अन्तरालं लेखनशैली च इत्यादिकं सर्वथा उपेक्षितव्यम् ।

०६२०१ इदम् उपेक्षित-विरामचिन्हादिकं वर्णानां केवलं व्यवस्थापनं वर्णकेवलव्यवस्थापनम् इति उच्यते ।

०६२ अनुवर्ण भाग के संलेख वर्णमाला का अनुसरण कर व्यवस्थापित किए जायं ।

०६२० विराम चिन्ह, पदों के बीच के खाली स्थान तथा लेखन शैली आदि की उपेक्षा की जाय ।

०६२०१ विराम चिह्न आदि की उपेक्षा करते हुए यह वर्णों का केवल व्यवस्थापन वर्ण-केवल-व्यवस्थापन कहा जाता है ।

वर्ण-केवल व्यवस्थापन के सम्भाव्य तथा उपयोगिता पर अनुसंधान जारी है।[९]

जिस नियम के अनुसार शब्द-अन्तर को वर्ण-अंतर की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती हो, उसे "अस्ति के पूर्वनास्ति" के नाम से पुकारा जाता है।[१०] इसी

९ रंगनाथन (श्री. रा.). एल्फाबेटिकल एरेन्जमेन्ट : ए सर्वे ऑफ ब्रेसिक प्रिंसिपल, इंडियन स्टेन्डर्ड इंस्टीटयूशन, बुलेटिन, संपु. २. १९५० में **प्रकाशित.** पृष्ठ ६६–७३.

१० **क्विन** (जे. हेनरी) तथा **एकाम्बे** (एच्. डब्ल्यु.). ए मेनुअल आफ केटेलागिंग एण्ड इन्डेक्सिग. १९३३. (लायब्रेरी असोसिएशन सीरीज् आफ लायब्रेरी मेनुअल्स, ५). पृ. २४९-५०.

प्रकार वाक्य-अन्तर की अपेक्षा अनुच्छेद अन्तर को प्राथमिकता देने वाले नियम को "वाक्य के पूर्व अनुच्छेद" की संज्ञा दी जाती है। "अस्ति के पूर्व नास्ति" इस नियम के आविर्भाव के पूर्व वर्णानुक्रमीकरण के सम्बन्ध में बड़ी विषम अव्यवस्था और अनिश्चितता थी। इस नियम के आविष्कृत हो जाने से बड़ी भारी उन्नति, व्यवस्था एवं स्थिरता हो गई है। किन्तु ग्रन्थालय सूची में वर्णानुक्रमीकरण करने में अनेक प्रकार की विषम समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। उन सब समस्याओं का समाधान करने में वह उपर्युक्त नियम सर्वथा असमर्थ है।

कहीं कहीं ऐसा भी निर्देशन किया जाता है कि जहां कहीं एक नामी पदों के तथा वाक्यांशों के कारण अव्यवस्था उत्पन्न होती हो, वहां उनके अर्थ को नियन्त्रक बनाया जाय, और उसके अनुसार व्यवस्था की जाय। उदाहरणार्थ यह क्रम रखा जा सकता है:–

१. स्थानों के नाम;
२. विषयों के नाम;
३. ग्रन्थों के नाम;
४. वस्तुओं के नाम; तथा
५. व्यक्तियों के नाम।

किन्तु इस प्रकार के निर्देशन का अर्थ होता है कि वर्णानुक्रमीकरण करते हुए ही अत्यन्त सूक्ष्म प्रकार का चिन्तन-मनन भी किया जाय। यह तो ठीक नहीं। कारण वर्णानुक्रमीकरण तो सर्वथा यान्त्रिक कार्य होना चाहिये।[११] इस कल्प के मूल में व्यवस्थापन को सर्वथा यान्त्रिक बनाने का उद्देश्य निहित है। उस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए लेखन शैली की धाराओं को तथा वर्णानुक्रमीकरण की धारा को सर्वथा संघटित रूप में निरूपित किया गया है। **ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त** (*Theory of library catalogue*) में निरूपित रचनातन्त्र सिद्धान्त को कार्यान्वित करने का यह एक सर्वप्रथम प्रयास है। किन्तु अब नई विचार-धारा के अनुसार उसे हटाकर वर्ण-केवल-व्यवस्थापन को प्राथम्य दिया जा रहा है।

---

११ रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त (*Theory of library catalogue*). १९३८. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ७). अध्याय ६४.

दर्शक पत्रकों का पौनःपुन्य

अनुवर्ण भाग में प्रति तीन इंचों के लिए एक दर्शक-पत्रक पर्याप्त होगा। किन्तु अनुवर्ग भाग में और अधिक दर्शक लगाने चाहिएं। उनकी अधिकता का नियंत्रण करनेवाली बात केवल एक ही है; और वह यह है कि दर्शक पत्रक पर्याप्त रूप से पृथक् पृथक् हों, जिससे वे पृथक् पृथक् स्पष्ट प्रतीत हों। केवल इस नियन्त्रण को मानते हुए प्रत्येक संभव वर्ग के लिए एक दर्शक पत्रक लगाना चाहिए। इस नियन्त्रण-कारी वस्तु को भी कुछ अंशों तक हटाया जा सकता है और उसके लिए मार्ग यह है कि शिखा पर अन्तर्वेशी वर्ग लिख दिया जाए तथा उसके उपवर्गों को दो या तीन स्तम्भों में उस शिखा वाले पत्रक के मध्य भाग में लिख दिया जाय।

अध्याय ०७

परिभाषा

अवधेय:—कतिपय परिभाषाओं के अन्तर्गत वृत्तकोष्टकों में जिन मूल ग्रंथों का उल्लेख किया गया है, वे निम्नलिखित हैं:—

१. एंग्लो अमेरिकन कोड का अभिप्राय है

अमेरिकन लायब्रेरी असोसिएशन तथा लायब्रेरी असोसिएशन : (ब्रिटिश) केटलाग रूल्स : आथर एण्ड टायटिल एन्ट्रीज. १९०८.

२. 'कटर' का अभिप्राय है

कटर (चार्ल्स एमि). रूल्स फार ए डिक्शनरी केटलाग. आवृ. ४,१९०४. (युनाइटेड स्टेट्स, ब्युरो आफ एजुकेशन : स्पेशल रिपोर्ट आन पब्लिक लायब्रेरीज़, भा. २.).

३. 'न्यू. इं. डि. का अभिप्राय है

मरे (जेम्स आगस्टस हेनरी). संपा. ए न्यू इंगलिश डिक्शनरी. १८८८-१९२८.

४. रंगनाथन का अभिप्राय है :

रंगनाथन (श्री. रा.). कोलन क्लासिफ़िकेशन, १९३९. (मद्रास लायब्रेरी असोसिएशन, पब्लिकेशन सीरीज़, १६).

अंशकार–निर्देशि-संलेख–**द्रष्टव्य** धाराएं ६१३-६१३९१ ।

अग्रा—**द्रष्टव्य** धारा ०३०१ ।

अग्रानुच्छेद—**द्रष्टव्य** धारा ०३१ ।

अपूरित-समंकन—**द्रष्टव्य** धारा ०३८१ ।

आख्या—बहुधा आख्यापत्र पर दिया हुआ पुस्तक अथवा सामयिक प्रकाशन का नाम।

आख्यापत्र—पुस्तक (अथवा सामयिक प्रकाशन) के आरम्भ अथवा उसके निकट दिया हुआ पत्र जिस पर आख्या तथा बहुधा ग्रन्थकार, संग्राहक अथवा संपादक का नाम भी दिया रहता है और प्रकाशक का नाम एवं प्रकाशन का स्थान

तथा तिथि भी दी रहती है (न्यू. इं. डि.)। कभी कभी सूचन की उपर्युक्त सभी वस्तुएं दो या अधिक पत्रों में बिखरी रहती हैं। उस अवस्था में वे सभी पत्र समूहात्मक रूप में आख्या पत्र माने जाएंगे।

आवर्तित—**द्रष्टव्य** धारा ०८६२ तथा ०८६२१।

आवृत्ति—कोई साहित्यिक कृति (अथवा कृतियों का संग्रह) स्वयं ग्रन्थकार अथवा पंचाद्भावी सम्पादकों द्वारा जिस रूप में प्रकाशित की जाए वैसा कोई एक रूप। (न्यू. इं. डि.)।

उन्मुद्रण—किसी निबन्ध आदि की पृथक् रूप में मुद्रित प्रति जो प्रथम किसी बृहत्तर प्रकाशन के अंक रूप में प्रकाशित हो चुकी हो।

उपशीर्षक—**द्रष्टव्य** धारा ०३७१।

उपाख्या—आख्या-पत्र से पूर्ववर्ती पत्र पर दिया हुआ पुस्तक का नाम। (कटर)।

द्रष्टव्य धाराएं ०२४१ तथा ०२४११।

कल्पित नाम—वास्तविक नाम से भिन्न, मिथ्या अथवा काल्पनिक नाम, अथवा अन्य कोई निर्धारण, जो ग्रन्थकार द्वारा स्वयं अपनाया गया हो अथवा अन्य किसी के द्वारा दिया हुआ हो।

कल्पित माला—**द्रष्टव्य** धारा १४१६।

कृति—साहित्यिक अथवा संगीत-विषयक रचना (न्यू. इं. डि.)।

क्रामक समंक—जो चिन्ह किसी कृति का व्यक्ति-साधन करता है तथा अन्य कृतियों की अपेक्षा फलक पर उसका स्थान निर्धारित करता है। इसमें दो भाग होते हैं—'वर्ग-समंक' तथा 'पुस्तक-समंक' (रंगनाथन)।

ग्रन्थकार—**द्रष्टव्य** व्यष्टि ग्रन्थकार, समष्टि ग्रन्थकार।

विश्लेषक—अंशकार-निर्देशि-संलेख से अभिन्न।

दर्शक-पत्रक—पत्रक सूची में इष्ट स्थान की अथवा अग्रानुच्छेदी की प्राप्ति में सहायता देने के लिए लगाया हुआ बहिर्वर्ती चिन्हांकित पत्रक।

द्वितीयोर्ध्वा—**द्रष्टव्य** धारा ०३०३।

नाम-अग्राक्षर—ग्रन्थकार के नाम के प्रतिनिधि स्वरूप एक अथवा अधिक अक्षर।

नामान्तर-निर्देशी-संलेख—**द्रष्टव्य** धारा ४ तथा उसकी उपधाराएं।

निर्देशी संलेख—**द्रष्टव्य** धारा ३ तथा उसकी उपधाराएं।

परिग्रहण-समंक—ग्रन्थालय में अभिवृद्धि के क्रम के अनुसार किसी संपुट को दिया हुआ समंक (कटर)। यह आख्या-पत्र-पृष्ठ के केन्द्र में, अथवा वह रिक्त न हो तो उसके निकटतम स्थान में लिखा जाता है।

पुष्पिका—आख्या, लिपिकार अथवा मुद्रक का नाम, मुद्रण की तिथि तथा स्थान इत्यादि का सूचक लेख जो पूर्व काल में पुस्तक अथवा लिखित ग्रन्थ के अन्त में दिया जाता था।

प्राचीन समय में पुष्पिका में वह सूचन दिया जाता था जो आजकल आख्या-पत्र पर दिया जाता है (न्यू. इं. डि.)।

पुस्तक—**द्रष्टव्य** धारा ०८५०

निर्देशी-संलेख—**द्रष्टव्य** धारा ३२ तथा उसकी उपधाराएं।

समंक—पुस्तक-समंक का उद्देश्य यह है कि किसी विशिष्ट अन्त्य वर्ग की विभिन्न पुस्तकों का व्यक्ति-साधन किया जाय। उदाहरणार्थ, द्विबिन्दु पुस्तक समंक में भारतीय दस अंकों में से एक अथवा अधिक अंक, नागरी वर्णमाला के वर्ण, बिन्दु तथा रेखिका इनका बोधगम्य समूहन होता है (रंगनाथन)। यह आख्या-पत्र-पृष्ठ पर वर्ग समंक के नीचे लिखा जाता है।

पूरित समंकन—**द्रष्टव्य** धारा ०३८१।

पृथक-पुस्तक—**द्रष्टव्य** धारा ०८५१।

प्रथमोर्ध्वा—**द्रष्टव्य** धारा ०३०२।

प्रधान संलेख—**द्रष्टव्य** धारा १ तथा उसकी उपधाराएं।

भागोद्ग्रह—कृति का कोई अंश जिसका स्वतंत्र अस्तित्व हो। वह उन्मुद्रण हो सकता है, अथवा मूलकृति से पृथक्कृत भी हो सकता है।

माला—दो अथवा अधिक पुस्तकें किसी माला से सम्बद्ध कही जा सकती हैं, यदि

(१) वे किसी प्रकाशक अथवा समष्टि द्वारा, सामान्य रूप में अथवा एक-रूप शैली में प्रकाशित की गई हों तथा उनमें विषय अथवा उद्देश्य की समानता हो;

(२) प्रत्येक पुस्तक की अपनी स्वीय पृथक् तथा स्वतन्त्र आख्या हो;

(३) सभी संपुटों का सामान्य निर्देशी न हो;

(४) माला का नाम माला की सभी अथवा कम से कम एक पुस्तक में दिया हुआ हो।

वचन—किसी महापुरुष की स्मरणीय सदुक्तियों का अथवा गोष्ठी-वचनों का संग्रह।

वर्ग-निर्देशी-संलेख—**द्रष्टव्य** धारा ३१ तथा उसकी उपधाराएं।

वर्ग-समंक—कृति के प्रतिपाद्य विषय का सांकेतिक रूपान्तर। उदाहरणार्थ, द्विबिन्दु वर्ग-समंक में भारतीय दस अंकों में से एक अथवा अधिक अंक, नागरी वर्ण माला के केवल तथा सानुस्वार कतिपय वर्ण, रेखिका, द्विबिन्दु तथा △ आदि चिन्हों का बोध-गम्य समूहन होता है। (रंगनाथन)। यह आख्या-पत्र के पीछे परिग्रहण-समंक के नीचे लिखा जाता है।

विशिष्ट-विषयान्तर-संलेख—**द्रष्टव्य** धाराएं ६२२-६२२११।

विषय-विश्लेषक—विषयान्तर-संलेख से अभिन्न।

विषयान्तर-संलेख—**द्रष्टव्य** धारा २ तथा उसकी उपधाराएं।

विसंगत-पुस्तक—**द्रष्टव्य** धारा ०८५२२।

व्यष्टि-ग्रन्थकार—किसी कृति का प्रणेता अथवा लेखक। उस कृति के प्रतिपाद्य विषय का संपूर्ण उत्तरदायित्व उसके अपने व्यक्तिगत रूप में उसी पर रहता है और किसी समष्टि पर वस्तुतः नहीं रहता; न उसके अधिकारक रूप में उस पर रहता है।[१०]

शीर्षक—**द्रष्टव्य** धारा ०३६.

संलेख—कृति अर्थात् पुस्तक अथवा सामयिक प्रकाशन के लिए सूची में किया हुआ लेखन।

संगत-पुस्तक—**द्रष्टव्य** धारा ०८५२।

संग्राहक—विभिन्न लिखित अथवा मुद्रित स्रोतों से संगृहीत सामग्रियों का व्यवस्थापन कर लिखित अथवा मुद्रित कृति को जो बनाता है। आधुनिक व्यवहार में व्यष्टि-ग्रन्थकार से विपरीत।

समष्टि—वाद-गोष्ठी, प्रशासन अथवा व्यापार आदि सामान्य उद्देश्य अथवा सामान्य कर्म के लिए बहुधा एकत्रित एवं संघटित, व्यक्तियों का सामूहिक रूप में अभिप्रेत दल, समिति, संघ, लीग, फ्रेटर्निटि (न्यू. इं. डि.)।

---

१२ **और द्रष्टव्य** रंगनाथन (श्री.रा.). ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त (*Theory of library catalogue*). १९३८. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ७). अध्याय ५४.

ग्रन्थकार—जिस कृति के प्रतिपाद्य विषय का उत्तरदायित्व एकमात्र एक अथवा अधिक व्यष्टि ग्रन्थकारों के ऊपर हो, उनके व्यक्तिगत रूप में, नहीं रहता, अपितु मुख्यतः किसी समष्टि के ऊपर रहता है उस कृति को समष्टि-ग्रन्थकार-प्रणीत कहा जाता है। किसी कृति को कोई समष्टि केवल प्रकाशित करदे, आर्थिक सहायता दे दे, स्वीकृत कर ले, अथवा अधिकृत कर ले तो केवल इतने से ही उस कृति को समष्टि–ग्रन्थकार-प्रणीत नहीं कहा जा सकता। अर्थात् केवल यही कारण उस कृति को समष्टि-ग्रन्थकार-प्रणीत नहीं सिद्ध कर सकते। यदि किसी कृति के आख्या पत्र पर, जिस स्थान में साधारणतः ग्रन्थकार का नाम दिया जाता है उस स्थान पर, समष्टि के किसी अधिकारी का व्यक्तिगत नाम दिया हुआ हो तो उस अवस्था में ग्रन्थकारिता का निर्णय करने के लिए निम्नलिखित युक्ति काम में लानी चाहिए:–यदि उस कृति का मुख्य धर्म ज्ञान-जगत् की सीमा का विस्तारण हो तो उसे व्यष्टि-ग्रन्थकार-प्रणीत माना जाय। यदि वह कृति उस विशिष्ट समष्टि के प्रशासनीय उद्देश्य, धर्म तथा दृष्टिकोण की सीमाओं से बंधीहुई हो तो उसे समष्टि-ग्रन्थकार-प्रणीत माना जाए। [१३]

समासित-नाम—बहुधा रेखिका (हाइफन) अथवा योजक आदि अव्यय से योजित दो अथवा अधिक व्यष्टि नामों से निर्मित नाम। (एंग्लो अमेरिकन कोड)।

समुच्चित—**द्रष्टव्य** धारा ०८६१ तथा ०८६११।

सम्पादक—किसी अन्य व्यक्ति अथवा कतिपय व्यक्तियों की साहित्यिक कृति को सामग्री के चयन, संशोधन तथा व्यवस्थापन द्वारा प्रकाशन के लिए जो प्रस्तुत करे। (न्यू. इं. डि.)।

सम्पुट—लिखित अथवा मुद्रित कृति अथवा कृति का अंश जो कतिपय तावों में, कागज अथवा अन्य पदार्थ के पत्रों में होती है। वे ताव आदि एक में बद्ध रहते हैं, जिससे उन्हें किसी भी विशिष्ट स्थान में खोला जा सके। सभी पत्र बन्धन अथवा अन्य किसी प्रकार के आवरण द्वारा सुरक्षित किए रहते हैं।

सम्पुटक-आख्या—सम्पुट के बन्धन पर मुद्रित आख्या (कटर)।

---

१३ **और द्रष्टव्य** रंगनाथन (श्री.रा.). ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त (*Theory of library catalogue*). १६३८. मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ७). अध्याय ५४.

सहकार—सह-ग्रन्थकार, संशोधक, व्याख्याकार, सम्पादक, भाषान्तरकार, संग्राहक, संक्षेपक, निर्देशक, सहायक अथवा अन्य किसी भी गौण रूप में किसी कृति से सम्बद्ध व्यक्ति।

सह-ग्रन्थकार—एक दूसरे के सहयोग से किसी कृति के निर्माता। उनमें से प्रत्येक द्वारा लिखा हुआ अंश स्पष्ट नहीं होता, तथा बहुधा निर्दिष्ट भी नहीं होता।

सम्पादक—एक दूसरे के सहयोग से किसी कृति अथवा माला के सम्पादक।

सामयिक-प्रकाशन—**द्रष्टव्य** धारा ०८६०।

सुसंगत पुस्तक—**द्रष्टव्य** धारा ०८५२१।

सूची—किसी ग्रन्थालय अथवा संग्रह की कृतियां अर्थात् पुस्तकों तथा सामयिक प्रकाशनों की किसी विशिष्ट योजना के अनुसार बनी हुई तालिका।

अध्याय ०८

कृति-भेद

कृति-प्रकार
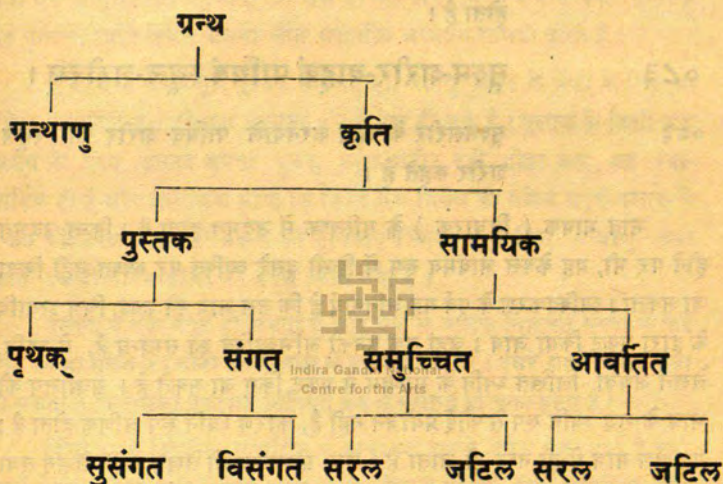
०८१ **प्रकटितो भावो ग्रन्थः ।**

०८१ जो भाव प्रकट किया गया हो, उसे ग्रन्थ कहते हैं ।

०८२ **प्रकटन-साधनं सूक्ष्म-शरीरम् ।**

०८२१ **विशिष्ट-भाषा, संघटना-रूप, चित्र-प्रभृतीनि तदङ्गानि ।**

०८२ भावस्य प्रकटन-साधनं सूक्ष्मशरीरम् इति उच्यते ।

०८२१ विशिष्टा भाषा, संघटनायाः रूपं, चित्रं तत्सदृशम्

अन्यत् च तस्य सूक्ष्मशरीरस्य अङ्गानि इति उच्यन्ते ।

०८२ **उस भाव के प्रकट करने के साधन को सूक्ष्म शरीर कहा जाता है ।**

०८२१ **वह सूक्ष्मशरीर विशिष्ट भाषा, संघटना प्रतिपादन का रूप, चित्र तथा उसी प्रकार की अन्य वस्तुओं का बना होता है ।**

०८३ सूक्ष्म-शरीर-वाहकं पार्थिवं स्थूल-शरीरम् ।

०८३ **सूक्ष्मशरीर के वहन करनेवाले पार्थिव शरीर को स्थूल शरीर कहते हैं ।**

भाव भावक (विचारक) के मस्तिष्क में उद्भूत होता है । किन्तु उद्भूत होने पर भी, यह केवल भावमय रूप में किसी दूसरे व्यक्ति पर व्यक्त नहीं किया जा सकता । व्यक्तिकरण के पूर्व यह अनिवार्य है कि उस भाव को शब्द, चित्र इत्यादि के द्वारा प्रकट किया जाय । जहां तक इनकी अभिव्यक्ति का सम्बन्ध है, ये ध्वनि, लेखन अथवा लिखित ध्वनि के माध्यम से प्रकट किए जा सकते हैं । ग्रन्थालय को भाव के शुद्ध ध्वनि रूप से कोई प्रयोजन नहीं है, कारण ध्वनि रूप क्षणिक होता है । यह क्षण मात्र में ही नष्ट हो जाता है । अतः ग्रन्थालय को लेखन,ध्वनि-लेखन तथा अन्य सजातीय सामग्रियों में मूर्त्त बनाए हुए भाव से ही प्रयोजन रहता है । कारण ये सुरक्षित तथा स्थायी रह सकते हैं । उपर्युक्त प्रकारों में से किसी एक प्रकार में व्यक्त भाव को 'ग्रन्थ' कहा जाता है ।

भाव के लेखन (record) को हम भाव का सूक्ष्म शरीर कहते हैं । अब वह लेखन चाहे परम्परा-प्रसिद्ध वर्णमाला हो, ध्वनि-लेखन हो अथवा चित्र के रूप में हो, वह भावलेखन है और उसे सूक्ष्म शरीर ही कहा जायगा । जब हम सूक्ष्म शरीर का विचार करते हैं तो हम उस पार्थिव वाहक को पृथक् ही रखते हैं,जिसमें उसका लेखन किया गया है । हम केवल उस विशिष्ट भाषा, विशिष्ट संघटनारूप अथवा विशिष्ट चित्रमय स्वरूप का ही ध्यान रखते हैं जिनमें उस भाव को मूर्त्त बनाया गया है ।

भाषा अथवा चित्र के रूप में व्यक्त होने पर भी, इस भाषात्मक अथवा

चित्रात्मक मूर्तिमान् भाव को जब तक स्थूल एवं स्थूलेन्द्रिय-ग्राह्य पार्थिव वस्तु पर अंकित न कर लिया जाए तब तक न तो उसे सुरक्षित रखा जा सकता है, न इधर उधर किया जा सकता है और न एक से दूसरे तक पहुंचाया जा सकता है। जब भाव को सूक्ष्म-स्थूलेन्द्रिय-अग्राह्य शरीर में मूर्तिमान् बना लिया जाता है और जब उन दोनों को पुनः स्थूल-स्थूलेन्द्रिय-ग्राह्य पार्थिव शरीर में इस प्रकार मूर्तिमान् बना लिया जाता है कि उन्हें सुरक्षित रखा जा सके, इधर उधर किया जा सके तथा एक से दूसरे तक पहुंचाया जा सके तो जो परिणाम के रूप में प्रकट होता है वह पुस्तक, ध्वनि-लेखन अथवा अन्य सजातीय अध्ययन सामग्री होती है।

सूची में न केवल पूर्ण पुस्तक के लिए ही, अपितु पुस्तक के अंशों के लिए भी संलेख दिए जाते हैं। इसे हम अध्याय ०२ में देख ही चुके हैं। पुस्तक के किसी अंश विशेष के लिए उसका अपना पृथक् स्थूल शरीर नहीं होता अतः यह स्वाभाविक ही है और आवश्यक भी है कि किसी अंश-विशेष का संलेख संपूर्ण पुस्तक के संलेख की अपेक्षा भिन्न हो। इसी की सुविधापूर्ण व्यवस्था के लिए "ग्रन्थाणु" तथा 'कृति' इन दो परिभाषाओं का वरण किया गया है।

पुस्तक में एक संपुट हो सकता है और एक से अधिक निश्चित संख्या के कई संपुट भी हो सकते हैं। दोनों ही अवस्था में यह पूर्ण होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उसका प्रकाशन निश्चित रूप से समाप्त हो चुका होता है।

किन्तु इसके विपरीत, सामयिक में आवश्यक रूप से अनेक संपुट होते हैं तथा उसमें प्रकाशक का यही उद्देश्य होता है कि अनन्त-संख्यक संपुट प्रकाशित किए जाएं। वे संपुट न्यूनाधिक रूप में, समय के समान अन्तर पर प्रकाशित होते हैं।

०८४ सूक्ष्म-शरीरमयो ग्रन्थो द्विधा।

०८४० ग्रन्थाणुः कृतिः च।

०८४१ प्रातिस्विक - स्थूल - शरीर - निरपेक्षः ग्रन्थाणुः ।

०८४२ प्रातिस्विक-स्थूल शरीर-सापेक्षः कृतिः ।

०८४१ यः प्रत्येकं स्वं स्वम् अधिकृत्य पृथक् स्थूलशरीरं न अपेक्षते सः ग्रन्थः ग्रन्थाणुः इति उच्यते।

०८४२ यः प्रत्येकं स्वं स्वम् अधिकृत्य पृथक् स्थूलशरीरम् अपेक्षते सः ग्रन्थः कृतिः इति उच्यते।

०८४ सूक्ष्म शरीर से युक्त ग्रन्थ दो प्रकार का होता है।

०८४० वे दो प्रकार ग्रन्थाणु और कृति होते हैं।

०८४१ जिस ग्रन्थ के प्रत्येक रच रच को लेकर पृथक् स्थूल शरीर की अपेक्षा नहीं होती उस ग्रन्थ को ग्रन्थाणु कहा जाता है।

०८४२ जिस ग्रन्थ के प्रत्येक रच रच को लेकर पृथक् स्थूलशरीर की अपेक्षा होती है उस ग्रन्थ को कृति कहा जाता है।

'वाल्मीकि रामायण' 'पृथक्' पुस्तक कही जायगी। कालिदास की 'शकुन्तला' 'पृथक्' पुस्तक कही जायगी।

०८४२० कृतिः द्विधा।

०८४२०१ पुस्तकं सामयिकं च।

०८४२० कृति दो प्रकार की होती हैं।

०८४२०१ वे दो प्रकार पुस्तक तथा सामयिक होते हैं।

०८५० पुस्तकं द्विधा।

०८५०१ पृथक् सङ्गतंच।

०८५१ एक-कृतिमयं पृथक्।

०८५२ एकाधिक-कृतिमयं सङ्गतम्।

०८५० पुस्तक दो प्रकार की होती हैं।

०८५०१ वे दो प्रकार पृथक् तथा संगत होते हैं।

०८५१ जिस पुस्तक में एक ही कृति हो उसे पृथक् पुस्तक कहा जाता है।

०८५२ जिस पुस्तक में एक से अधिक कृतियां हों उसे संगत पुस्तककहा जाता है।

०८५२० **सङ्गतं द्विधा।**

०८५२०१ **सुसङ्गतं विसङ्गतं च।**

०८५२१ **सामान्य - एकाख्या - सहित - कृतिमयं सुसङ्गतम्।**

०८५२१ यत्र अवयवस्वरूपाणाम् अंशकृतीनां सर्वसामान्या एका आख्या भवति तत् पुस्तकं सुसङ्गतपुस्तकम् इति उच्यते।

०८५२० **संगत पुस्तक दो प्रकार की होती है।**

०८५२०१ **वे दो प्रकार सुसंगत तथा विसंगत होते हैं।**

०८५२१ **जहां अवयवस्वरूप अंश-कृतियों की सर्वसामान्य एक आख्या होती है वह सुसंगत कही जाती है।**

इसके विपरीत, अभिनन्दन-ग्रन्थ में स्वभावतः एक से अधिक कृतियां होती हैं। पुस्तक जगत्, पटना द्वारा प्रकाशित 'पुस्तकालय' एक ऐसी पुस्तक है जिसमें अनेक कृतियां समाविष्ट हैं तथा उनके प्रणेता भी भिन्न भिन्न हैं। अतः इस प्रकार की पुस्तकों को 'संगत' कहा जायगा।

उपर्युक्त 'पुस्तकालय' नाम की पुस्तक सुसंगत कही जायगी।

०८५२२ **सामान्य-एकाख्या रहित कृतिमयं विसङ्गतम्।**

०८५२२ यत्र अवयवस्वरूपाणाम् अंशकृतीनां सर्वसामान्या एका आख्या न भवति तत् पुस्तकं विसङ्गत पुस्तकम् इति उच्यते।

०८५२२ **जहां अवयव-स्वरूप अंश-कृतियों की सर्वसामान्य एक आख्या नहीं होती वह पुस्तक विसंगत कही जाती है।**

रामायण तथा शकुन्तला यदि साथ ही एक संपुट में प्रकाशित की जायें अथवा संपुटित की जायें तो वह पुस्तक 'विसंगत' पुस्तक कही जायगी।

०८६० सामयिकं द्विधा।

०८६०१ समुच्चितम् आवर्तितं च।

०८६० सामयिक दो प्रकार का होता है।

०८६०१ वे दो प्रकार समुच्चित तथा आवर्तित होते हैं।

०८६१ यदि

१ यथासमय - प्रकाशित - संख्या, अवदान-गुच्छक - अन्यतम - नामक - नैकभागमय-आख्यापत्र-निर्देशि-आदि - समवेत - बहु-संपुटका ;

२ एकाधिक - व्यष्टि - ग्रन्थकार - प्रणीत, असतत-निरूपणात्मक, अलक्ष्यीकृत, एक विशिष्ट-विषयक, विविक्त-स्वतंत्र, समान पद-प्रतिसंपुट, विभिन्न-अंश, लेखमय, सकल संपुटका ;

३, १ नव - प्रथम - द्वितीय - मालादि नाम, विशिष्ट, एकैकाधिक, सतत-कक्षान्तःपाति सतत-संख्याङ्कित, सकल संपुटका ;

२ प्रति समय - भाग - प्रकाशित, सम्बद्ध-संपुट, लघुगण-संपुट, संख्याङ्कित, साम-यिक गण-संपुट, विभिन्न-भागात्मकाङ्कित, सामयिक-गणावयव-संपुटका ;

४, १ प्रथमे एकाख्या-विशिष्ट-सर्वसंपुटका ;

२ द्वितीये एकाख्या - विशिष्ट - सर्वसंपुटका,

प्रत्यवयव-भाग, अतिरिक्त वर्णकपद-वाक्यांश, विशिष्ट-आख्यायुक्त-सामयिक-गणा तत्तत्समवर्णकपद-वाक्यांश-विशिष्ट-विभिन्न-सामयिक गण, संवादि-भागा ;

५ संपुट-शाश्वतिक-प्रकाशनेच्छा च कृतिः चेत् सः कृतिः समुच्चितम् ।

०८६११ सकल-संपुट-संघातः च समुच्चितम् ।

०८६१११ संघात-पृथक्-संपुटोऽपि ।

०८६११२ संपुट-सामान्याख्या संघाताख्या ।

०८६१ यदि,

(१) यस्यां कृतौ समये समये प्रकाशिताः, प्रायशः संख्या, अवदानम्, गुच्छकः इत्येतेषाम् अन्यतमेन नाम्ना युक्तैः खण्डशः प्रकाशितैः अनेकैः भागैः निर्मिताः क्वचित्तु अखण्डाः आख्या-पत्रेण, निर्देशिता अन्यैश्च सहायैः सहिताः बहवः संपुटा भवन्ति;

(२) यत्र सकलेषु संपुटेषु एकस्मात् अधिकेन व्यष्टि-ग्रन्थकारेण प्रणीताः, असततं निरूपण-पराः, एक-मात्रं विशिष्टं विषयं न लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्ताः,विविक्ताः स्वतन्त्राः, समानपदाः , प्रतिसंपुटं विभिन्नाः च अंश-लेखाः भवन्ति ;

(३)(१) यत्र सर्वे संपुटाः नवमाला, प्रथममाला, द्वितीय-माला इत्यादि-नाम्ना विशिष्टायां एकस्याम् एका-धिकायां वा सततायां कक्षायां विद्यमानया सततया संख्यया अङ्किताः भवन्ति;

(२) कदाचित् प्रत्येकस्मिन् समयस्य भागे संबद्ध-संपुटानां लघुः गणः प्रकाशितः भवति, सामयिकगणः च संपुट-संख्यां लभते, सामयिक-गणस्यावयवरूपाः संपुटाः च संपुटस्य विभिन्न-भागात्मकतया अङ्किताः भवन्ति;

(४)(१)(३)(१) अङ्किते पक्षे सति सर्वेषां संपुटानां सैव एका आख्या भवति;

(२)(३)(२) अङ्किते पक्षे सति सर्वेषां संपुटानां सैव एका आख्या भवति, अथ च सा आख्या सामयिक-गणस्य प्रत्येकस्मिन् अवयव-स्वरूपे भागे अतिरिक्तेन वर्णकेन पदेन वाक्यांशेन वा विशिष्टा भवति, विभिन्नानां सामयिक-गणानां संवादिनो भागाश्च तेन तत्समेन वा वर्णकेन पदेन वाक्यांशेन वा विशिष्टा भवन्ति;

(५) संपुटानां शाश्वतिका प्रकाशनस्य इच्छा च भवति। चेत्, सा कृतिः समुच्चितम् इति उच्यते।

०८६११ संपुटानां सकलानां संघातः च "समुच्चितम्" इति उच्यते।

०८६१११ संघातस्य पृथग्-रूपः संपुटोऽपि 'समुच्चितम्' इति उच्यते।

०८६११२ सर्वेषां संपुटानां सामान्या आख्या संघातस्य आख्या भवति।

०८६१ **जिस कृति में**

(१) **समय समय पर प्रकाशित होनेवाले संख्या, अवदान, गुच्छक, इनमें से किसी एक नामधारी भागों से बने हुए, आख्या-पत्र, निर्देशी आदि अन्य वस्तुओं से सहित बहुत संपुट होते हैं;**

(२) **जहां सब संपुटों में एक से अधिक व्यष्टि-ग्रन्थकार द्वारा लिखे हुए, निरन्तर एक ही वस्तु का सतत निरूपण न करनेवाले**

किसी एकमात्र विशिष्ट विषय को लक्ष्य न बनाकर प्रवृत्त होनेवाले, विविक्त, स्वतन्त्र, समानपदी तथा प्रति संपुट में पृथक्-पृथक् अंशलेख होते हैं।

(३) १. जिसमें सब संपुट नवमाला, प्रथममाला, द्वितीय माला इत्यादि नाम से युक्त एक अथवा एक से अधिक सतत कक्षा में विद्यमान सतत संख्या से अंकित होते हैं;

२. कभी कभी प्रत्येक समय के भाग में सम्बद्ध संपुटों का छोटा समूह प्रकाशित होता है, वह सामयिक गण संपुट की संख्या को प्राप्त करता है तथा उसे सामयिक-गण के अवयव-रूपी-संपुट के विभिन्न भाग के रूप में अंकित होते हैं;

(४) १. यदि (३) १. चिन्हित प्रथम पक्ष विद्यमान हो तो सभी संपुटों के लिए वही एक आख्या होती है;

२. यदि (३) २. चिन्हित द्वितीय पक्ष विद्यमान हो तो सभी संपुटों के लिए वही एक आख्या होती है और साथ ही वह आख्या सामयिक-गण के प्रत्येक अवयव-स्वरूप भाग में अतिरिक्त वर्णक पद से अथवा वाक्यांश से विशिष्ट होती है तथा विभिन्न सामयिक-गणों के संवादी भाग उससे अथवा उसके समान वर्णक पद से अथवा वाक्यांश से विशिष्ट होते हैं; और

(५) संपुटों के शाश्वतिक प्रकाशन की इच्छा होती है, उस कृति को 'समुच्चित' कहा जाता है।

०८६११ संपुटों के सकल संघात को 'समुच्चित' कहा जाता है।

०८६१११ संघात का पृथक् रूप संपुट भी 'समुच्चित' कहा जाता है।

०८६११२ सब संपुटों की जो सामान्य आख्या होती है वही संघात की आख्या होती है।

भारतीय ग्रन्थालय संघ द्वारा प्रकाशित 'ग्रन्थालय' 'समुच्चित' माना जायगा।

०८६२ यदि

१ प्रतिवर्ष-निश्चितसमय-अन्तराल-प्रकाशित संपुट तल्लघुगणा ;

२ प्रकाशनकाल-विषयक-समप्राय सूचना-दायक, सर्व-पुरालेख-प्रकाशन, प्रतिपाद्यात्मक-काल, संपुट-तत्सामयिक-समूहका ;

३ वर्ष-प्रकाशन - समय पुरालेख - प्रकाशन, प्रतिपाद्यात्मक-भेदक, विशिष्ट-क्रमिक-संपुट, तत्सामयिक-गणा ;

४ संपुट-सम्बन्धि, समय-सूचक-अतिरिक्त-वर्णक-पद, विशिष्ट-एकाख्यायुक्त-सर्व संपुटका संपुट, सामयिक-गण, अतिरिक्त-अपर-वर्णक पद, विशिष्ट-आख्यायुक्त-पृथक्-संपुटा ;

५ संपुट-शाश्वतिक-प्रकाशनेच्छा च कृतिः चेत् सः आवर्तितम् ।

०८६२१ सकल-संपुट-संघातः आवर्तितम् ।

०८६२११ संघात-पृथक्-संपुटोऽपि ।

०८६२१२ संपुट-सामान्याख्या संघाताख्या ।

०८६२ यदि,

१ यस्यां कृतौ प्रतिवर्षं, निश्चिते समयस्य अन्तराले वा संपुटः संपुटानां लघुः गणः वा प्रकाशितः भवति;

२ सर्वे संपुटाः, संपुटानां सामयिकाः गणाः वा प्रकाशन-काल-विषयिकां, पुरालेख-प्रकाशनानां च प्रति-

पाद्य-विषयात्मक-विषयिकां समप्रायां सूचनां ददाति;

३ क्रमिकाः संपुटाः, संपुटानां सामयिकाः गणाः वा वर्षेण प्रकाशन-समयेन वा, पुरालेख-प्रकाशनेषु च प्रतिपाद्यात्मकेन भेदकेन भिन्नाः भवन्ति;

४ सर्वेषां संपुटानां सा एव एका आख्या भवति, तथा च सहैव संपुटेन सम्बद्धस्य समयस्य सूचकम् अतिरिक्तं पदं वाक्यांशः वा भवति, संपुटानां सामयिक-गण-विषये च पृथग्-रूपाः संपुटाः अतिरिक्तेन वर्णकेन पदेन वाक्यांशेन वा विशिष्टया आख्यया युक्ताः भवन्ति ;

५ संपुटानां शाश्वतिका प्रकाशनस्य इच्छा च भवति चेत्, सा कृतिः 'आवर्तितम्' इति उच्यते।

०८६२१ संपुटानां सकलः संघातः 'आवर्तितम्' इति उच्यते ।

०८६२११ संघातस्य पृथग्-रूपः संपुटोऽपि 'आवर्तितम्' इति उच्यते ।

०८६२१२ सर्वेषां संपुटानां सामान्या आख्या संघातस्य आख्या भवति ।

०८६२ **जिस कृति में**

(१) प्रतिवर्ष अथवा निश्चित समय के अन्तराल में संपुट अथवा संपुटों के छोटे समूह प्रकाशित होते हैं ;

(२) सब संपुट अथवा संपुटों के छोटे समूह उनके प्रकाशन काल से सम्बद्ध और पुरालेख प्रकाशनों के विषय में उनके प्रतिपाद्य विषय से सम्बद्ध प्रायः एक सी सूचनाएं देते हैं;

(३) क्रमिक संपुट अथवा संपुटों के सामयिक-गण वर्ष अथवा प्रकाशनकाल, और पुरालेख प्रकाशनों के विषय में उनके प्रतिपाद्य-विषय-रूपी भेदक से पृथक्-पृथक् पहचाने जाते हैं;

(४) सब संपुटों की वही एक आख्या होती है और साथ ही संपुट से सम्बद्ध समय का सूचक अतिरिक्त पद या वाक्यांश होता है, संपुटों के सामयिक-गण से सम्बद्ध पृथक् रूपवाले संपुट और दूसरे अतिरिक्तवर्णक पद अथवा वाक्यांश से, विशिष्ट आख्या से युक्त होते हैं ; और

(५) संपुटों के शाश्वतिक प्रकाशन की इच्छा होती है।

वह कृति आवर्तित कही जाती है ।

०८६२१ संपुटों के सकल संघात को 'आवर्तित' कहा जाता है ।

०८६२११ संघात का पृथक्-रूप संपुट भी 'आवर्तित' कहा जाता है।

०८६२१२ सब संपुटों की जो सामान्य आख्या होती है वही संघात की आख्या होती है ।

राजकमल प्रकाशन, देहली द्वारा प्रकाशित 'राजकमल वर्ष बोध' 'आवर्तित' माना जायगा ।

०८६३ सामयिक-प्रकाशन-संपुटोऽपि सामयिक प्रकाशनम् ।

०८६३ सामयिक-प्रकाशनस्य कश्चन एकः संपुटोऽपि सामयिक-प्रकाशनम् इति उच्यते ।

०८६३ सामयिक प्रकाशन का कोई एक संपुट भी सामयिक प्रकाशन कहा जाता है ।

०८७ एक-संपुटमयं एक-संपुटम् ।

०८८ सजातीय-सामान्य-आख्यापत्र आख्या-निर्देशि, अन्यतम-तत्समवाय-विशिष्ट, एकाधिक-संपुटमयम् एतदन्यत्-कारण अन्योन्य पृथक्करण-व्यवहार-निरपेक्ष

स्वतंत्र-वर्गीकरण सूचीकरणफलक-व्यवस्थापनासहं पुस्तकं नैक-संपुटकम् ।

०८७ यत्र पुस्तके एकः एव संपुटः भवति तत् पुस्तकं, एक-संपुटकं, पुस्तकम्, इति उच्यते ।

०८८ यत्र पुस्तके सजातीयेन सामान्येन च आख्या-पत्रेण, आख्यया, निर्देशिना वा तेषाम् समुदायेन वा विशिष्टाः एकाधिकाः संपुटाः भवन्ति, ये च एतेन अन्येन वा कारणेन पृथक्करणं पृथग्व्यवहारं च अन्योन्यं निरपेक्षं, स्वतंत्रं, वर्गीकरणं, सूचीकरणं, फलकेषु व्यवस्थापनं च न सहन्ते तत् पुस्तकम् 'नैक-संपुटकम्' इति उच्यते ।

०८७ **जिस पुस्तक में केवल एक ही संपुट होता है उस पुस्तक को एक संपुटक पुस्तक कहा जाता है ।**

०८८ **जिस पुस्तक में सजातीय और सामान्य आख्या पत्र से, आख्या से अथवा निर्देशी से अथवा इनमें से किसी के किसी प्रकार के समुदाय से युक्त एक से अधिक संपुट होते हैं तथा वे उपर्युक्त अथवा अन्य किसी कारण से पृथक् नहीं किये जा सकते और पृथक व्यवहार पाना अर्थात् वर्गीकृत, सूचीकृत तथा फलक-व्यवस्थापित किया जाना नहीं सह सकते ऐसी पुस्तक को नैक-संपुटक पुस्तक कहा जाता है ।**

"सामयिक प्रकाशन," "समुच्चित" तथा "आवर्तित" के लक्षण ऊपर दिए जा चुके हैं । सामयिक प्रकाशन सूचीकरण में अनेक जटिल समस्याओं को उपस्थित करते हैं । उनकी अव्यवस्थाएँ सभी प्रकार की कल्पनाओं से, एवं पूर्व अनुमानों से परे सिद्ध होंगी; अर्थात् कितनी ही कल्पनाएँ पहले से करें, कितने ही अनुमान पहले से लगालें, किन्तु वह सब सर्वथा व्यर्थ प्रमाणित होंगे । मालूम तो यह पड़ता है कि सामयिक-प्रकाशनों से सम्बद्ध

कोई भी वस्तु भूलभुलैयां के खेल से मुक्त नहीं रह सकती। प्रकाशक समष्टि नाम, आख्या, प्रकाशन-अवधि, आकार, पृष्ठांकन, संघात के सभी अथवा किसी एक संपुट में जोड़े जाने वाले बाहरी अनुगत आदि, और सबके अंत में किन्तु संभवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, वस्तु-जीवन, काल-विलय अथवा पुनरुज्जीवन।

सुविधा की दृष्टि से, सप्तम अध्याय में केवल सरल प्रकार के ही सामयिक प्रकाशन दिए गए हैं। सरल से तात्पर्य उन सामयिक प्रकाशनों से है जो किसी प्रकार की कठिनाई उत्पन्न नहीं करते। अष्टम अध्याय में उस विशिष्ट व्यवहार की चर्चा की जायगी जो जटिल प्रकार के सामयिक प्रकाशनों के लिए किया जाना चाहिये। जटिल से तात्पर्य उन प्रकाशनों से है जो अनेक प्रकार की अव्यवस्थाओं को प्रस्तुत करते हैं।

अध्याय १

एक-संपुटक-पृथक्-पुस्तक

१ प्रधान-संलेख

१ प्रधान-संलेखे अनुच्छेदाः पञ्च ।

१० यथा—

१ क्रामक-समङ्कः (अग्रानुच्छेदः);

२ शीर्षकम्;

३ आख्यादिः;

४ अधिसूचनम्;

५ परिग्रहण-समङ्कः च ।

१ पुस्तक के प्रधान संलेख म पांच अनुच्छेद होते हैं ।

१० वे अनुच्छेद निम्नलिखित हैं :—

१ क्रामक समंक (अग्रानुच्छेद) प्रथम अनुच्छेद होता है ।

२ शीर्षक द्वितीय अनुच्छेद होता है ।

३ आख्या तथा उसके साथ आने वाली अन्य वस्तुएं तृतीय अनुच्छेद होती हैं ।

४ अधिसूचन यदि हो, तो चतुर्थ अनुच्छेद होता है ।

५ परिग्रहण-समंक पांचवा अनुच्छेद होता है ।

किसी पुस्तक के विषय में जैसा अध्याय ०२ में उल्लिखित है, उसका प्रधान संलेख ही सब से अधिक जानकारी देता है। साथ ही यह मूलभूत संलेख होता है जिसमें अन्य सभी संलेखों के लिए सारी सामग्री मौजूद होती है। वस्तुतः यह कल्प तो और भी आगे बढ़ता है और यह व्यवस्था करता है कि किसी पुस्तक के लिए जितने भी संलेख लिखे जायं उन सबका उल्लेख

स्वयं प्रधान-संलेख में किया जाय (दृष्टव्य धारा १६ तथा उसके उपभेद) ।

प्रधान-संलेख में विवरण कितना व्यापक अथवा विस्तृत बनाया जाय इसका निर्णय करना किसी भी प्रकार सरल नहीं है । हमारे सामने एक सीमा पर प्रधान-संलेख को इस प्रकार बनाने की प्रथा है जिसमें पुस्तक का अधिक से अधिक विवरण प्राप्त हो। इसका एक उदाहरण यहां दिया जाता है जिसमें महाकवि बिल्हण के **विक्रमाङ्कदेवचरित** का ऐसा ही वर्णनात्मक विवरण दिया गया है:--

महाकवि बिल्हण.

विक्रमांकदेवचरित.

महाकवि श्री बिल्हणविरचितम् । विक्रमांकदेवचरितम् । महाकाव्यम् । रेखा । The Vikramankadevacharita. Mahakavya. रेखा । Edited by Shastri Murari Lal Nagar, Sahityacharya. Sadho Lal Research Scholar. Sarasvati Bhavana, Benares. रेखा । 1945 रेखा ।

उपाख्या पत्र :—

The Princess of Wales, Sarasvati Bhavana, Texts Series. (Published under the authority of the Government of the United Provinces) रेखा । General Editor Dr. Mangal Deva Shastri M.A., D. Phil. (oxon) Principal Government Sanskrit College, Benares. रेखा । No. 28 रेखा । The Vikramankadevacharita Mahakavya रेखा ।

पृ. १०+१२+४०+३२५+४२+६, जिनका प्रतिपाद्य निम्नलिखित है:-

एक रिक्त पत्र (१-२); उपाख्या-पत्र, पृष्ठ भाग में मुद्रक का नाम तथा पता आदि (३-४); आख्या-पत्र, पृष्ठ भाग रिक्त (५-६) आमुख (५-६); महाकवि कल्हण की सदुक्ति (कवि प्रशंसा), पृष्ठ भाग रिक्त (७-८); विषयानुक्रमणी, पृष्ठ भाग रिक्त (९-१०); प्रस्तावना (१-१२); भारतवर्ष का मानचित्र; (ई. ११श शतक)

उपोद्घात (१–४०); महाकाव्य (१–२०८); चरित-चन्द्रिका (टिप्पणी) (२०९–३२५) पृष्ठ भाग रिक्त (३२६) श्लोकानुक्रमणी (१–३१) प्रधान-नाम-विषय-अनुक्रमणी (३२–३५); विक्रमादित्य-नीलगुण्ड-ताम्र-शासन (३६–४२); परिशिष्ठ क-घ (१–६).

विषयानुक्रमणी

इस प्रकार का व्यापक वर्णन उन पुरानी छपी हुई पुस्तकों के सम्बन्ध में ही उपयोगी हो सकता है जिन्हें अंग्रेजी में इन्क्युनबुला के नाम से पुकारा जाता है। किन्तु आधुनिक पुस्तकों के सम्बन्ध में तथा ग्रन्थालय के वर्तमान उद्देश्यों को देखते हुए वह अनावश्यक है। ग्रन्थालय-सूची पर ग्रन्थ-सूची का कितना प्रभाव पड़ा है इस विषय में कटर ने जो विचार प्रकट किए हैं, वे उद्धरण करने योग्य हैं। "ग्रन्थ-सूचीकारों ने आख्यापत्र के ही सम्बन्ध में एक संप्रदाय स्थापित कर लिया है। वे उसकी तुच्छातितुच्छ विशेषताओं का भी पर्यवेक्षण करते रहते हैं। वे धार्मिक ग्रन्थ की भांति अन्धश्रद्धा के साथ उसका अनुसरण करते हैं। यदि वे आख्या-पत्र की सामग्री उद्धृत करते समय किसी अनावश्यक वस्तु का लोप करें तो वे लोप के लिए विन्दु, अन्तर्वेशन के लिए कोष्टक तथा रेखाओं के अन्तों को सूचित करने के लिए खड़ी रेखाओं का प्रयोग करते हैं। वे यहां तक उनका अनु-

सरण करते हैं कि वे उस आख्यापत्र की या तो तद्वत् मुद्र (Facsimile type) अथवा आलोक-चित्र-प्रतिलिपिकरण द्वारा अनुकृति कर लेते हैं। इस प्रकार का अनुसरण लेनाक्स ग्रन्थालय अथवा प्रिंस कलेक्शन ग्रन्थालयी के लिये ही उपयोगी हो सकता है, किंतु साधारण ग्रन्थालयी को उनसे कोई भी प्रयोजन नहीं होता।"[१४]

दूसरी ओर यह प्रथा है कि प्रधान संलेख को पर्याप्त रूप से इतना सूक्ष्म एवं संक्षिप्त बनाया जाय, जिससे वह एक ही पंक्ति में आ जाय।

विभिन्न ग्रन्थालयों में सूचीकारों ने जितने भी मार्ग अपनाये हैं वे सब के सब इन परिधियों के बीच में ही हैं।[१५] इस कल्प की यह धारा उन अनुच्छेदों का निरूपण करती है जो प्रधान-संलेख में होने चाहियें। इस अध्याय की अनुगामिनी धाराएं उस विधि का विशद निरूपण करती हैं जिसके अनुसार प्रत्येक अनुच्छेद बनाना चाहिये।

यह स्पष्ट हो जायगा कि हमने इस कल्प में दो अनुच्छेदों का लोप कर दिया है। अन्य कल्प में वे अब भी लटके हुए हैं। वे दो अनुच्छेद ये हैं—पत्रादि-विवरण और मुद्रणांक । इन दो अनुच्छेदों का अभी तक अस्तित्व बना रहने का मुख्य कारण मुद्रित सूची की परंपरा है। किन्तु आज के 'आधुनिक' ग्रन्थालय का तो स्वरूप कुछ और ही है। उसकी तुलना एक कारखाने से की जाती है, न कि संग्रहालय से और यह है भी ठीक। इस प्रकार के ग्रन्थालय में अब मुद्रित सूची के लिए कोई स्थान नहीं है। अब तो वहां लिखित अथवा टाइप की गई पत्रक-सूची काम में लाई जाती है। एक को हटाकर दूसरे को स्थान दिया जा रहा है। इस प्रकार के ग्रन्थालयों में अनुभव द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि उपर्युक्त दो अनुच्छेदों में दी गई सामग्री को अधिकांश पाठक कदाचित् ही मांगते हैं। अतः उनकी उन्हें आवश्यकता नहीं होती। उनसे पत्रक तो भर जाता है पर वे निरर्थक सिद्ध होते हैं। जो दो-चार व्यक्ति उस सामग्री की अपेक्षा करते हैं उनके लिए प्रकाशित व्यापारी-वर्ग की ग्रन्थ-सूचियां अथवा परिग्रहण-पंजिका का उपयोग किया जा सकता है और उन्हें इसकी जानकारी भली भांति हो जाती है।

---

१४ रूल्स फार ए डिक्शनरी केटलाग. पृ. २४.

१५. **और द्रष्टव्य** रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त (Theory of library catalogue). १९३८. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ७). अध्याय ०१-०२.

साथ ही एक बात और है। जहां तक मुद्रण-तिथि का सम्बन्ध है, यदि द्विबिन्दु वर्गीकरण उपयोग में लाया जाय तो वह क्रामक-समंक में ही दिया हुआ होता है। यदि कोई ऐसी वर्गीकरण-पद्धति काम में ली जाय जिसके क्रामक-समंक में प्रकाशन-तिथि न दी जाती हो तो संलेख के आख्या-भाग के अन्त में, अतिरिक्त वाक्य के रूप में प्रकाशन तिथि को जोड़ दिया जा सकता है।

पत्रादि-विवरण के विषय में विचार करने पर यह प्रतीत होगा कि अधिकांश पाठकों के लिए पुस्तकों का ठीक-ठीक सम्पूर्ण पृष्ठांक बतलाना अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होता। इसके विपरीत, प्रत्येक पाठक यह अवश्य जानना चाहता है कि पुस्तक का सामान्य आकार-प्रकार क्या है। वह यह जानना चाहता है कि उसकी उद्दिष्ट पुस्तक सहज रूप में है या नहीं। शब्दान्तरों में यह कहना चाहिये कि पुस्तिका है, महाकार पुस्तक है अथवा उसमें बहुत अधिक चित्रादि हैं। अध्याय ०३ की धारा ०३९१ तथा उसके उपभेदों से यह स्पष्ट हो जायगा कि इस प्रकार की जानकारी को व्यक्त करने के लिए मद्रास विश्वविद्यालय ग्रन्थालय में कितनी सरल युक्तियां काम में लाई जाती हैं।

क्रामक-समंक को प्रधान-संलेख में प्रथम अनुच्छेद के रूप में प्रमुख स्थान क्यों दिया जाता है इसको अनुवर्ग-सूची में बताने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु परिग्रहण समंक को प्रधान संलेख के अन्तिम अनुच्छेद के रूप में प्रविष्ट करने की व्यवस्था वस्तुतः असाधारण है। यह पाठक की दृष्टि में आने के लिए उद्दिष्ट नहीं है। वस्तुतः अध्याय ०३ की धारा ०३५ में यह स्पष्ट रूप से निरूपित किया गया है कि परिग्रहण समंक पत्रक की निम्नतम रेखा के दाईं ओर कोने में लिखा जाय, जिससे पाठक की दृष्टि में न आने की संभावना कम से कम हो जाय। प्रश्न यह हो सकता है कि इसे आखिर लगाया ही क्यों जाय? इसका उत्तर तो प्रबन्ध-सम्बन्धी व्यवस्था के पास ही प्राप्त है। यह परिग्रहण-पंजिका तथा सूची के बीच संयोजक कड़ी के रूप में कार्य करता है।[१६]

१६. रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय-शास्त्र-पंचसूत्री (Five laws of library science). १९३९. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, २). पृ. ३९६.

कभी-कभी विशिष्ट विवरण नाम से एक और नया अनुच्छेद होता है। वह संक्षेप में ग्रन्थ के महत्त्व अथवा विशेषताओं को या ग्रन्थकार के पद इत्यादि के सम्बन्ध में बताता है। उसमें सूचीकार की कोई समालोचनात्मक संमति के लिए कोई स्थान नहीं होता।[१७]

११ क्रामक-समङ्कः

११ क्रामक-समङ्कः आख्या-पत्र-पृष्ठात्।

११० स वर्गकार-निर्मितः।

११ क्रामक-समङ्कः आख्या-पत्रस्य पृष्ठात् ग्राह्यः।

११० सः वर्गीकरण-धाराम् अनुसृत्य वर्गकारेण निर्मितः भवति।

११ क्रामक-समंक आख्या-पत्र के पृष्ठ भाग से लिया जाय।

११० वह वर्गीकरण की धाराओं के अनुसार वर्गकार द्वारा लगाया हुआ होता है।

लेखन-शैली के लिए धारा ०३११ तथा ०३८७ देखिए। ध्यान रहे कि क्रामक समंक पेन्सिल से लिखा जाय।

१२ शीर्षक-वरणम्

१२ अधस्तनानाम् अन्यतमं शीर्षकम्।

१२०१ व्यष्टि-ग्रन्थकार-नाम;

१२०२ सह-व्यष्टि-ग्रन्थकार-नामनी;

१२०३ समष्टि-ग्रन्थकार-नाम;

---

१७ रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय सूची सिद्धान्त (Theory of library catalogue). १९३८. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ७). अध्याय ६३.

१२०४	सह-समष्टि-ग्रन्थकार-नामनी;
१२०५	कल्पित-नाम कल्पित-नामनी वा;
१२०६	ग्रन्थकार-इतर-व्यक्ति-नाम अर्थात् सह-ग्रन्थकार-इतर-सहकार-नाम;
१२०७	ग्रन्थकार-इतर-व्यक्ति-नामनी अर्थात् सह-ग्रन्थकार-इतर-सहकार-नामनी;
१२०८	उपपद-मानपद-इतर-आख्या-प्रथमपदम्;
१२०९१	पूर्वपूर्वम् ।

१२ शीर्षकस्य निर्धारणे अधोनिर्दिष्टानाम् अन्यतमं शीर्षकं ग्राह्यम् ।

१२०९१ एकाधिक-शीर्षकाणां विरोधे सति पूर्व-पूर्वंग्राह्यम् ।

१२ शीर्षक के चुनाव के लिए निम्नलिखितों में से एक शीर्षक लिया जाय ।

१२०१ व्यष्टि-ग्रन्थकार का नाम प्रथम प्रकार होता है ।

१२०२ दो सह-व्यष्टि-ग्रन्थकारों के नाम द्वितीय प्रकार होता है ।

१२०३ समष्टि-ग्रन्थकार का नाम तृतीय प्रकार होता है ।

१२०४ दो सह-समष्टि ग्रन्थकारों के नाम चतुर्थ प्रकार होता है ।

१२०५ एक अथवा दो कल्पित-नाम पांचवां प्रकार होता है ।

१२०६ ग्रन्थकार से इतर व्यक्ति का नाम, अर्थात् सह-ग्रन्थकार से इतर सहकार का नाम छठा प्रकार होता है ।

१२०७ ग्रन्थकार से अतिरिक्त अन्य दो व्यक्तियों के नाम, अर्थात् सह-ग्रन्थकार से अतिरिक्त अन्य दो सहकारों के नाम सातवां प्रकार होता है ।

१२०८ उपपद और मानपद से भिन्न, आख्या का प्रथम-पद आठवां प्रकार होता है ।

१२०९१ एक से अधिक शीर्षकों के विरोध होने पर पूर्व-पूर्व को प्राथमिकता दी जाय ।

१२१ व्यष्टि-ग्रन्थकारः

वरणम्

१२१ व्यष्टि-ग्रन्थकार-नाम तदेकमात्रत्वे ।

१२१० १२६३,१२८ धारेऽपधारौ ।

१२१ केवलम् एकस्य व्यष्टि-ग्रन्थकारस्य नाम्नि आख्या-पत्रे विद्यमाने तत् शीर्षकमिति स्वीकार्यम् ।

१२१० १२६३ तथा १२८ धारेऽत्र अपवाद-स्वरूपे ।

१२१ केवल एक यदि व्यष्टि-ग्रन्थकार का नाम आख्या-पत्र पर विद्यमान हो तो उसे शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२१० १२६३ तथा १२८ धाराएं इसमें अपवाद-स्वरूप हैं ।

"व्यष्टि-ग्रन्थकार" इस परिभाषा के लक्षण के लिए अध्याय ०७ देखिए ।

उपकल्पनम्

क्रिष्टीय-जुड़क-नाम

१२११ अर्वाचीन-क्रिष्टीय-जुड़कनाम्मां तात्विकं नामान्त्य-पदं पूर्वम् ।

१२११०१ नामाद्य-पदं तस्मात् परम् ।

१२११ अर्वाचीनानां क्रिष्टीयानां जुड़कानां च नाम्नां तात्त्विक-रूपम् अन्त्यं नाम्नः पदं सर्वेभ्यः पदेभ्यः पूर्वं लेख्यम् ।

१२११०१ नाम्नः आदौ अवस्थितं नामाद्य-पदं नामान्त्य-पदात् परं लेख्यम् ।

१२११ अर्वाचीन ईसाई तथा यहूदी नामों के तात्त्विक-रूप नाम का अन्तिम पद सबसे पहले लिखा जाय ।

१२११०१ **नाम के आदि में आने वाला नामाद्य-पद नामान्त्य-पद के पश्चात् लिखा जाय।**

लेखन-शैली के लिए धाराएं ०३२, ०३२१, ०३६२, ०३६३, ०३७ तथा ०३७३ देखिए।

उदा.

लाइनस्टाइन (अलफ्रेड).
शेक्सपीयर (विलियम).
शा (जार्ज बर्नार्ड).

१२१११ समासितनाम-पदं तथैव।

१२१११ समासितानि नामान्त्य-पदानि समासितानि नामाद्य-पदानि च समस्त-रूपेण एव लेख्यानि।

१२१११ **समास किए हुए नामान्त्यपद और समास किए हुए नामाद्य-पद दोनों समस्त रूपों में उसी प्रकार लिखे जायं।**

"समस्त-नाम" इस परिभाषा के लक्षण के लिए अध्याय ०७ देखिए।
ले आन इ रोमान (रिकार्यो).
लेवि देल्ला वीया (जार्जो).
मारव द वसेलो (जे. जे.).
मार्तें द्युगार (रोजेर).
मेरहार्ट फान बेर्नेख (गारो).
मार्टिन्स (फ्रान्सिस्को होजे दा रोचा).
क्विलर-काउच (आर्थर थामस).

१२१११२ समासित-उपसर्ग[१८]-नामान्त्य-पदमपि।

---

१८ सोपसर्ग नामान्त्य पदों के सम्बन्ध की धाराएं एंग्लो-अमेरिकन कोड की संवादिनी धाराओं का सार उपस्थित करती हैं।

१२११२ समासितोपसर्ग-सहितं नामान्त्य-पदं तदीयांशात्मकतया समस्त-रूपेण एव लेख्यम् ।

१२११२ यदि नामान्त्य-पद के साथ कोई उपसर्ग हो, और वह उससे समस्त हो, तो उस उपसर्ग को स्वभावतः उसी नामान्त्य-पद के अंश-रूप में समस्त-रूप से ही लिखा जाय ।

१२११२१ पृथग्लेख्य - नामान्त्यपद - उपसर्गोऽन्वधोधारम् ।

१ आंग्लनामोपसर्गो नामान्त्यपदात् पूर्वम् ।

२ उपपदमय-तदुपेत-फ्रेञ्च्-नामोपसर्गो नामान्त्य-पद युक् ।

३ अभावे नामाद्य-पद युक् ।

४ उपपदमय - इटालियन् - स्पेनिष् - अन्यतर-नामोपसर्गो नामान्त्य-पद युक् ।

५ उपपदेतरोऽपसर्गो नामाद्यपद-युक् ।

६ अन्यदेशीयोउपसर्गो नामाद्यपद-युक् ।

१२११२१ पृथग् - रूपेण लेख्यः नामान्त्य-पदस्य उपसर्गः अधोनिर्दिष्टाः धाराः अनुसृत्य लेख्यः ।

१ आंग्ल-नाम्नः उपसर्गः नामान्त्य-पदात् पूर्वं लेख्यः ।

२ फ्रेंच्-नाम्नः उपसर्गः उपपदमयः तदुपेतः वा चेत् सः नामान्त्य-पदेन सह लेख्यः ।

३ फ्रेंच्-नाम्नः उपसर्गः उपपदमयः तदुपेतः वा न चेत् सः नामाद्यपदेन सह लेख्यः ।

४ इटालियन्-नाम्नः स्पेनिष्नाम्नः च उपसर्गः उपपदमयः चेत् सः नामान्त्यपदेन सह लेख्यः ।

५ इटालियन्-नाम्नः स्पेनिष्-नाम्नः च उपसर्गः उप-पदेतरः चेत् सः नामाद्य-पदेन सह लेख्यः ।

६ नाम पूर्वेतर-देशीयं चेत् उपसर्गः नामाद्य-पदेन सह लेख्यः ।

१२११२१ **पृथक् रूप से लिखा जाने वाला नामान्त्य-पद का उपसर्ग निम्नलिखित धाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय :**

१ आंग्ल नाम का उपसर्ग नामान्त्य-पद से पूर्व लिखा जाय;

२ फ्रेंच नाम का उपसर्ग यदि उपपदमय हो अथवा उससे युक्त हो, तो वह नामान्त्य-पद के साथ लिखा जाय;

३ फ्रेंच नाम का उपसर्ग यदि उपपदमय न हो, अथवा उससे युक्त न हो, तो वह नामाद्य-पद के साथ लिखा जाय;

४ इटालियन नाम और स्पेनिश नाम का उपसर्ग यदि उप-पदमय हो, तो वह नामान्त्य-पद के साथ लिखा जाय;

५ इटालियन नाम और स्पेनिश नाम का उपसर्ग यदि उपपद से अन्य हो, तो वह नामाद्य-पद के साथ लिखा जाय;

६ यदि नाम पहले गिनाए हुए देशों से भिन्न हो तो उपसर्ग नामाद्यपद के साथ लिखा जाय ।

१२११५ पूर्ण-नामान्त्य - पद - अग्राक्षरमात्र - नामाद्य-पद-विस्तारः ।

१२११५ नामान्त्य-पदे पूर्णे सति नामाद्य-पदे च अग्राक्षरमात्रे सति तस्य विस्तारः कार्यः ।

१२११५ **यदि नामान्त्य-पद आख्या-पत्र पर पूर्ण दिया हो तथा नामाद्यपद के केवल अग्राक्षर दिए हों, तो उन अग्राक्षरों का विस्तार किया जाय ।**

नामाग्राक्षरों का विस्तृत रूप प्राप्त करने के लिए नाम–वृत्त, (Who's who), अनुवर्ण-चरितकोश, विश्वकोष, राजसेवक-सूची,

ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा राष्ट्रीय ग्रन्थालयों की मुद्रित सूचियां आदि अनुलय पुस्तकों का उपयोग करना चाहिए। उनमें इन समस्याओं का समाधान किया गया हो, यह संभव है। यदि ग्रन्थकार सम-सामयिक अथवा जीवित हो तो स्वयं उनसे अथवा उनके सम्बन्धियों से पत्र व्यवहार किया जा सकता है।

नामाग्राक्षरों का विस्तृत रूप प्राप्त करने में असाध्य कठिनाइयां आवेंगी तथा बहुत से व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह असम्भव सा ही होगा। इसका परिणाम यह होगा कि इन अवस्थाओं में हमें अपनी लीक का परित्याग कर देना होगा। यह वांछनीय है अथवा नहीं; यह प्रश्न विचारणीय है। यह तो निश्चित है कि एक से ही नामों की संख्या अधिक बढ़ जायगी पर इसका समाधान जन्म-तिथि अथवा विषयप्रेम आदि-आदि की सूचना देकर किया जा सकता है।

१२१२ हिन्दू नाम

१२१२ **अर्वाचीन-हिन्दू-नाम्नाम् तात्त्विक - नामान्त्यपदं पूर्वम्।**

१२१२१ **नामाद्य-पदं परम्।**

१२१२२ **नामाग्राक्षराणि च।**

१२१२३ **जाति-वर्ग-मात्र-सूचक-अन्त्य-तात्त्विक-पद-पूर्णोपान्त्य-पद - विशिष्ट - दक्षिण भारतीय-नाम्नाम् अन्त्य तात्त्विक-पदे पूर्वम्।**

१२१२३० **अनुस्वभाव-क्रमम्।**

१२१२४ **दास गुप्त-प्रभृति-बङ्गनाम्नाम् एकाधिक-अन्त्य-तात्त्विक-पदे पूर्वम्।**

१२१२ वर्तमानकालिकानां हिन्दू-नाम्नाम् तात्त्विक-रूपम् अन्त्यं नाम्नः पदं सर्वेभ्यः परेभ्यः पूर्वं लेख्यम्।

१२१२१ नाम्नः आद्यं पदम् नामान्त्यपदात् परं लेख्यम्।

१२१२२ नाम्नः अग्राक्षराण्यपि नामान्त्यपदात् परं लेख्यानि ।
१२१२३ दक्षिण-भारतीय-नाम्नाम् अन्त्ये तात्त्विकपदे केवलं जातेः वर्गस्य वा सूचके,उपान्त्ये पदे च आख्या-पत्रे पूर्णे उपलब्धे, अन्त्ये तात्त्विकपदे पूर्वं लेख्ये ।
१२१२३० तयोर्लेखने स्वाभाविकः क्रमः अनुसर्तव्यः ।
१२१२४ केषुचन दास् गुप्त-प्रभृतिषु बङ्गीयेषु नामसु अन्त्ये तात्त्विकपदे पूर्वं लेख्ये ।

१२१२ वर्तमान समय के हिन्दू नामों में तात्त्विक-रूप नाम का अन्तिम पद सब पदों से पूर्व लिखा जाय ।
१२१२१ नाम का आद्य-पद नाम के अन्त्य-पद के पश्चात् लिखा जाय ।
१२१२२ नाम के अग्राक्षर भी नामान्त्य-पद के पश्चात् लिखे जायं ।
१२१२३ दक्षिण भारतीय नामों में यदि अन्तिम तात्त्विक पद केवल जाति अथवा वर्ग का सूचक हो तथा उपान्त्य-पद पूर्ण दिया हुआ हो, तो वे दोनों अन्तिम तात्त्विक पद पूर्व लिखे जायं ।
१२१२३० उनके लिखने में उनका स्वाभाविक क्रम अनुसृत किया जाय ।
१२१२४ कतिपय 'दासगुप्त' आदि बंगदेश के नामों में अन्त के दोनों तात्त्विक पद पूर्व लिखे जायं ।

इस धारा में 'नामान्त्य शब्द' तथा "नामाद्य-शब्द" पदों का उल्लेख नहीं किया गया है और जिन कारणों वश इसको अन्य प्रकार से लिखा गया है, उनका प्रतिपादन अन्यत्र मौजूद है ।[१९]

आधुनिक हिन्दी नामों में तात्विक पद निम्नलिखित में से एक या अधिक के बोधक हो सकते हैं:–

(१) व्यक्ति का वैयक्तिक नाम;

१९ रंगनाथन (श्री. रा.) तथा शिवारामन् (के. एम.) शीर्षक के लिए हिन्दू नामों का उपकल्पन : धर्म बनाम स्थिति, माडर्न लायब्रेरियन, संपु. १०, १९४३, पृष्ठ ६३-७५ पर **प्रकाशित.**

शिवारामन् (के. एम.) सूचीकरण की मानित व्यवस्थाएं, मद्रास ग्रंथालय संघ, मेमोयर्स, १९४०, पृ. ९८-११२ पर **प्रकाशित.**

(२) व्यक्ति के पिता का वैयक्तिक नाम;

(३) स्थान का नाम जो सामान्यतः जन्म का अथवा पैतृक निवास का होता है; तथा

(४) पितृकुलीय नाम जो जाति का सूचक होता है अथवा व्यवसाय का, अथवा किसी पूर्वज की कोई धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी, रण सम्बन्धी अथवा अन्य किसी प्रकार की उपाधि होती है अथवा उसके जन्म या निवासस्थान आदि में से किसी एक को सूचित करता है।

पूर्वोक्त पदों का क्रम सर्वत्र एक सा नहीं होता है।

प्रायः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही उत्तरी तथा पश्चिमी भारत के हिन्दुओं में अपने नामों को ईसाई नाम के अनुरूप ढांचे में ढालने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। वे अपने पितृकुलीय नामों का प्रयोग नामान्त्य पद के रूप में करने लगे और उनका नाम ईसाई नाम की तरह नामाद्य-पद का काम देने लगा।

पश्चिमी भारत में, पितृकुलीय नाम के पहले प्रायः दो नाम आया करते हैं। प्रथम नाम स्वयं का व्यक्तिगत नाम होता है तथा दूसरा पिता का व्यक्तिगत नाम होता है। उदाहरणार्थ मोहनदास करमचन्द गांधी। इसमें मोहनदास महात्मा गांधी का व्यक्तिगत नाम है, करमचन्द उनके पिता का व्यक्तिगत नाम है तथा गांधी उनका पितृकुलीय नाम है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रायः मध्य भाग तक तृतीय नाम को महत्व देने की प्रथा नहीं चली थी। उस समय तक द्वितीय नाम का भी अधिक उपयोग नहीं होता था। उसका उपयोग एक से ही व्यक्तिगत नामों में केवल अन्तर करने के लिए ही किया जाता था, अन्यथा नहीं। किन्तु आजकल एक चाल सी चल पड़ी है जिसके अनुसार सारा महत्व तृतीय नाम को दिया जाता है और प्रारम्भ के दो नामों को नामाग्राक्षर के रूप में गौण पद प्राप्त होता है।

बंगाल में बहुधा जातिनाम के पूर्व व्यक्तिगत नाम पहले आता है और वे उस व्यक्तिगत नाम को एक पद के रूप में ही लिखते थे। अब उस एक पद के टुकड़े बहुधा दो शब्दों में इस प्रकार कर दिए जाते हैं जिससे वे दोनों ईसाई नाम का कार्य करें। उदाहरणार्थ, राममोहनराय को आज राममोहन राय लिखा जाता है। रमेशचन्द्र दत्त को रमेश चन्द्र दत्त तथा चित्तरंजन दास को सी. आर. दास लिखा जाता है। यहां यह भी स्पष्ट

कर देनां उचित है कि कतिपय जातिनाम युग्म शब्द के रूप में उपयुक्त किए जाते हैं। उदाहरणार्थ दासगुप्त, रायमहाशय, रायचौधरी।

जब कि उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में अंग्रेजी रूप का आत्मसात्-करण थोड़ा और बहुत स्थिरता तथा पूर्णता को प्राप्त कर चुका था, तब दक्षिण भारत इस प्रवृति से बिल्कुल ही अछूता रहा। वहां आजकल के और वह भी कतिपय नामों को छोड़कर बहुधा यही देखा जाता है कि जाति अथवा कोई पितृकुलीय विशिष्टता को सूचित करने वाला पद व्यक्तिगत नाम की अपेक्षा गौण बना दिया जाता है। इसके लिखने के दो प्रकार पाए जाते हैं। प्रथम प्रकार में यह व्यक्तिगत नाम के पूर्व पृथक् पद के रूप में लिखा जाता है, अथवा व्यक्तिगत नाम के साथ इस प्रकार मिलाकर लिखा जाता है कि वह एक पद प्रतीत हो। किन्तु उसे कदापि संक्षिप्त कर नामाग्राक्षर के रूप में नहीं लिखा जाता। कोई तो इस पितृ-कुलीय नाम का सर्वथा लोप ही कर देते हैं। जब इसका लोप कर दिया जाता है अथवा इसे व्यक्तिगत नाम के साथ एकीभूत कर लिखा जाता है उस अवस्था में नाम का अन्तिम पद व्यक्तिगत नाम होता है। अन्यथा अंतिम पद से पूर्व का पद व्यक्गित नाम होता है। व्यक्तिगत-नाम-स्वरूप पद के पूर्व साधारणतः एक या दो पद आया करते हैं। वे पद किस स्वरूप के द्योतक हैं वह दक्षिण भारत के प्रान्त-प्रान्त पर निर्भर है।

तेलगु तथा मलयालम देशों में व्यक्तिगत नाम से पूर्व बहुधा इस प्रकार का केवल एक पद लगाया जाता है। पूर्व लगाया हुआ पद "कुलनाम" से प्रसिद्ध है।

तामिल देश में सामान्यतः पिता का व्यक्तिगत नाम पूर्व लगाया जाता है। किन्तु यह नियम सार्वत्रिक एवं शास्वत नहीं है। कहीं कहीं पिता के व्यक्तिगत नाम के भी पूर्व किसी स्थान का नाम लगा दिया जाता है। वह स्थान सामान्यतः जन्म-स्थान अथवा पूर्वजों का निवास-स्थान होता है। किन्तु पिता का नाम तथा स्थान-नाम दोनों व्यक्तिगत नाम की अपेक्षा गौण बना दिये जाते हैं और उन्हें संक्षेप कर नामाग्राक्षर के रूप में लिखा जाता है।

कन्नड़ देश में सामान्यतः पिता का व्यक्तिगत नाम आगे नहीं लगाया

जाता। किन्तु व्यक्तिगत नाम के पूर्व किसी स्थान का नाम लगाया जाता है। वह स्थान बहुधा पूर्वजों का निवासस्थान होता है।

कतिपय अंग्रेजी पढ़े-लिखे दक्षिण-भारतीय हिन्दुओं में जैसा उल्लिखित है, आजकल एक प्रवृत्ति सी चल पड़ी है जिसके अनुसार वे उपर्युक्त परंपरा का अनुपालन न कर अपने नामों को अन्य प्रकारों से लिखते हैं। जो नाम इस प्रवृत्ति के शिकार बन चुके हैं वे सूची-कारों के लिए महती समस्या के रूप में उपस्थित हैं। कतिपय अंग्रेजी पढ़े लिखे दक्षिण-भारतीय हिन्दू अपने नामों के साथ खिलवाड़ करने की स्वतन्त्रता का किस सीमा तक उपयोग करते हैं वह आश्चर्यजनक है। कतिपय विशिष्ट प्रवृत्तियों का यहां उल्लेख किया जाता है।

एक प्रवृति के अनुसार कुछ लोग अपने पितृकुलीय अथवा जाति नाम को नाम का प्रमुख पद बना देते हैं और अन्य पद को उसकी अपेक्षा गौण बना देते हैं; यहां तक कि जो व्यक्तिगत नाम होता है उसे भी गौण बना दिया जाता है। उन नामों को गौण बना कर उनके स्थान पर नामा-ग्राक्षर लगा दिये जाते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो स्थान के नाम अथवा कुल के नाम को विशेष महत्त्व देते हैं। अन्य सभी पदों को गौण बना देते हैं, तथा उनके स्थान पर नामाग्राक्षरों का उपयोग करते हैं। पिता के व्यक्तिगत नाम को सर्व-प्रमुखता देने की तथा नाम के अन्य सभी पदों को गौण बना देने की प्रथा भी कहीं-कहीं मिल ही जाती है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने व्यक्तिगत नाम को दो भागों में बांट देते हैं और प्रथम भाग के स्थान में नामाग्राक्षर में संक्षेप कर उसे गौण बना देते हैं। विख्यात पदार्थ-शास्त्री सर सी. वी. रमन का नाम उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है। सी. का अर्थ उनके पिता के व्यक्तिगत-नाम 'चन्द्रशेखर' का नामाग्राक्षर है। उनका साहजिक व्यक्तिगत नाम वेंकटरमन है। इस नाम का तामिल देश में सामान्यतः एक शब्द के रूप में उपयोग किया जाता है। किन्तु उन्होंने उसे विभक्त कर उसके "वेंकट" और "रमन" ये दो पृथक् पद बना दिये हैं तथा उनमें प्रथम अर्थात् "वेंकट" को संक्षिप्त कर नामाग्राक्षर बना दिया है। उन्होंने ऐरयर इस अन्तिम जाति अथवा पितृकुलीय नाम को आगे नहीं लिखा है। किन्तु यह प्रथा असाधारण नहीं है अपितु इसका प्रचलन बहुधा खूब पाया जाता है।

सी. वी. रमन के विषय में कम से कम इतना तो सन्तोष है कि उन्होंने "वेंकटरमन" इस पद को ऐसी जगह पर तोड़ा है जहां उसे तोड़ना संगत माना जा सकता है। शब्दान्तरों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक भाग अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रह सकते हैं। किन्तु ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो अपने व्यक्तिगत नाम में चाहे जिस स्थान पर कुल्हाड़ी चला देते हैं जिसके फलस्वरूप उन टुकड़ों का कोई अर्थ नहीं होता।

ग्रन्थकारों को यह अधिकार है कि वे अपने नामों में चाहे जितनी तोड़-मरोड़ करें, पर सूचीकार को कोई अधिकार नहीं है कि वह ग्रन्थकारों के इस अधिकार के औचित्य या अनौचित्य पर विचार करे। यदि सूचीकार ऐसा कोई प्रयत्न करते हैं कि ग्रन्थकारों के नामों का पुनर्निर्माण किया जाय और उन्हें परम्परा, भाषाशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र के अनुरूप लाया जाय तो यह सूचीकारों की अनाधिकार चेष्टा समझी जावेगी। इसके भयंकर परिणाम निकलेंगे। अतः सर्वश्रेष्ठ मार्ग तो यह है कि आख्या-पत्र पर जो कुछ भी और जिस प्रकार ग्रन्थकार का नाम दिया हुआ हो उसे श्रद्धापूर्वक अक्षरशः अनुसृत किया जाय। हां, यह तो निश्चित ही है इस अनुसरण में धारा का निर्देश सर्वोपरि होगा।

इसके अनंतर लिप्यंतरकरण की भी कठिनाई है। यदि आख्या-पत्र देवनागरी लिपि में न होकर अन्य किसी लिपि में हो तो हो सकता है कि ग्रन्थकार का नाम उस लिपि में ठीक तौर से न दिया गया हो। उदाहरणार्थ, डा० रंगनाथन के कतिपय नामराशि मित्र अपने नामों को रंगनादन (Ranganadan), रेंगनातन (Ranganatan) रंगनाधुन, (Ranganadhun) इत्यादि रूपों में लिखा करते हैं। इस सम्बन्ध में सूचीकार को चाहिये कि वे आख्या-पत्र का दृढ़तापूर्वक अनुपालन करें अर्थात् आख्यापत्र को सर्वोच्च अधिकारी मानें। किंतु इस लिप्यन्तर-करण से जो दोष उत्पन्न हो उसके परिमार्जन के लिये एक यही उपाय काम में लाया जा सकता है कि शुद्ध रूप व्यवहार के लिये नामान्तर निर्देश कर दिया जाय। आख्यापत्र के प्रति दृढ़ श्रद्धा भाव ही एक अन्यतम मौलिक सिद्धांत है जिस पर सूची-करण का यह कल्प अवलम्बित है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो सर्वाधिक मौलिक होने का दावा रखता है और उसकी आधार-भीति यह है कि यह सर्वथा स्थिर एवं निश्चित है। अवान्तर नाम, नाम-परिवर्तन, काल्पनिक नाम आदि विषयों से सम्बन्ध रखने वाली अधिकांश धारायें इसी मौलिक सिद्धान्त पर अवलम्बित है। हमारी तो यह सम्मति है कि यदि इस सिद्धांत की उपेक्षा की जाय अथवा प्रयोग की

दृष्टि से इसकी अपेक्षा कम स्थिर सिद्धान्त की दृष्टि में इसे गौण बना दिया जाय तो बड़ी अव्यवस्था हो जायेगी। यदि ग्रन्थालय की सूचियों का विधिवत् परीक्षण किया जाय तो अधिकांश सूचियों में महती अव्यवस्था दृष्टिगोचर होगी। इस अव्यवस्था का उत्तरदायित्व उसी उपर्युक्त उपेक्षा-भाव को दिया जायेगा।

यहां आधुनिक हिन्दू नामों के कतिपय उदाहरण दिये जा रहे हैं :—

ग्रन्थकार नाम	प्रान्त
ठाकुर (रवीन्द्रनाथ).	बंगाल
राय (प्रफुल्लचन्द्र).	"
मालवीय (मदनमोहन).	उत्तर प्रदेश
गांधी (मोहनदास करमचन्द).	गुजरात
गोखले (गोपाल कृष्ण).	महाराष्ट्र
राधाकृष्णन् (सर्वपल्ली).	तेलुगू
शंकरन नैयर (चेट्टूर).	मलयालम
चेट्टूर (जी. के.).	मलयालम

अन्तिम के दो उदाहरणों को देखने से प्रतीत होगा कि एक में चेट्टूर गौण है और दूसरे में प्रमुख। इसका कारण यह है कि दूसरे नाम के महाशय अपने व्यक्तिगत नाम तथा जाति नाम को गौण बना कर अपने कुल-नाम को विधिवत् निरन्तर महत्व देते हैं तथा अपने कुल-नाम के अतिरिक्त अन्य सभी पदों को नामाग्राक्षरों द्वारा व्यक्त करते हैं। वे अपने जाति नाम का प्रयोग तो कभी नहीं करते परन्तु इसके अतिरिक्त अपने व्यक्तिगत नाम गोपालकृष्णन् को "गोपाल" और "कृष्णन्" इन दो शब्दों में विभाजित कर बंगाली प्रथा को अपनाते हुए उनके स्थान में उनके नामाग्राक्षरों का प्रयोग किया है।

कृष्णस्वामी एयंगर (एस.).	तामिल
श्रीस्वामी शास्त्री (वी. एस.).	"
शिवस्वामी एयर (पी. एस.).	"
ऐयर (ए. एस. पी.).	तामिल

इस अन्तिम उदाहरण में भेद का कारण यह है कि इन्होंने अपने व्यक्तिगत नाम पंचपकेशन को 'पी' इस नामाग्राक्षर के रूप में व्यवहृत किया है तथा 'ऐयर' इस जाति नाम को अपने नाम का एकमात्र व्यक्त शब्द बना दिया है।

रमन (सी. वी.). तामिल

इस नाम की विशेषताओं की चर्चा पहले ही की जा चुकी है।

राजगोपाल आचारी (पी.). तामिल

चारी (पी. वी.). तामिल

इनमें भेद होने का कारण यह है कि इन्होंने अपने 'वरद' इस व्यक्तिगत नाम को निरन्तर 'वी.' इस नामाग्राक्षर से बोधित किया है तथा 'चारी' इस अपभ्रष्ट जाति नाम को अपने नाम का एकमात्र व्यक्त पद बना दिया है।

मंगेश राव (सवूर). कन्नड़

किन्तु

सवूर (आर. एम.). कन्नड़

इस दूसरे भेद में इन्होंने अपने 'राम' इस व्यक्तिगत नाम को निरन्तर 'आर.' इस नामाग्राक्षर से बोधित किया है तथा 'सवूर' इस स्थान नाम को अपने नाम का एकमात्र व्यक्त शब्द बना दिया है। आरम्भ का नामाग्राक्षर 'एम.' मंगेशराव इनके पिता के नाम का आरम्भिक अक्षर है।

हिन्दू नाम के अवयवभूत पदों का मूल्य और महत्व भारत के विभिन्न स्थानों में किस प्रकार बदलता रहता है यह स्पष्ट किया जा चुका है। हिन्दू सभ्यता से अपरिचित व्यक्तियों के लिये यह बड़ा कठिन है कि वे उनका वास्तविक एवं उचित मूल्यांकन कर सके। सूचीकरण में एकरूपता लाने के लिये यह आवश्यक है कि नामों का एक कोष बनाया जाय। यह परमोपादेय होगा। उस कोष में सभी प्रकार के नाम हों—व्यक्तिगत नाम, कुलनाम, जातिनाम तथा अन्य सभी प्रकार के पितृ-कुलीय नाम। जहां तक हमारी धारणा है इस दिशा में कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया है। संभवत: सारे भारत के लिये एक कोष बनाने के स्थान पर यदि भारत के विभिन्न भाषा-भाषी प्रान्तों के लिये पृथक्-पृथक् कोष बनाये जायें तो वह अधिक सुविधाजनक होगा। कारण, विभिन्न भाषा-भाषी प्रांतों के अभ्यास भी विभिन्न होते हैं। यदि विभिन्न राज्यों के ग्रन्थालय संघ इस प्रकार के कोषों का निर्माण-कार्य हाथ में लें तो उनके लिये यह कीर्ति का कार्य होगा। भारतीय ग्रन्थालय संघ को यह काम हाथ में लेना चाहिये और इसे विभिन्न राज्य ग्रन्थालयसंघों को प्रेरणा देनी चाहिये, जिससे वे विशिष्ट मानित मार्ग का आश्रय लेकर आगे बढ़ सकें।

इस कार्य में ग्रन्थालय संघों को भाषा शास्त्रीय, ऐतिहासिक तथा मानव-शास्त्रीय अध्ययनों में संलग्न अन्य विद्वत् समष्टियों से सहायता लेनी पड़ेगी। संभवतः भारत के ग्रन्थालय संघों को कार्य करने की क्षमता तथा प्रौढ़ता लाने में बहुत वर्ष लगेंगे। अभी वे इतने योग्य नहीं हैं जिससे वे इतने बड़े कार्य का सुचारु रूप से निर्वहण कर सकें। किन्तु एक अन्य ऐसा संघटन है जो इस कार्य में हाथ बंटा सकता है। पिछले पचीस-तीस वर्षों से भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में गवेषणा कार्य अधिक जोरों पर है। जो विद्वान् इस प्रकार के गवेषणा कार्यों का मार्गदर्शन करते हैं वे यदि कतिपय नवयुवकों को इस कार्य में लगायें तो यह देश एवं समाज की महती सेवा होगी। इस कार्य में अतीत के लेखों का, मुद्रित कृतियों का तथा लिखित पुस्तकों का तो अवलोकन करना ही पड़ेगा, साथ ही साथ स्थान-स्थान पर जाकर प्राप्त सामग्री को कसौटी पर कसने के लिये वैयक्तिक पूछताछ की भी आवश्यकता होगी। भारत के विश्वविद्यालय यदि इस कठिन कार्य की ओर अपना ध्यान लगायें तो वे इस ज्ञान को और भी आगे बढ़ा सकेंगे तथा साथ ही साथ सूचीकरण में समर्थ एवं एकरूप शैली के प्रवर्तन में बड़ा भारी अंश-दान कर सकेंगे।

१२१३ मुसलमानी नाम

हमें मुसलमानी नामों का इतना अधिक अनुभव प्राप्त नहीं हो सका है कि हम उनकी शैली को धारा रूप में निरूपित कर सकें। वर्त्तमान काल में कुछ मुसलमान ऐसे हुए हैं जो योरोपीय प्रभाव में आये और वे परिणामस्वरूप अपने नामों को सरल लिखने लगे। जब वे अ-मुस्लिम भाषाओं में पुस्तकें लिखते हैं तब वे यहां तक बता देते हैं कि उनके नामों का कौन सा शब्द सर्वप्रथम लिखा जाय। इसे वे आख्यापत्र, आवरण-पृष्ठ, आमुख अथवा अन्य किसी स्थान में सूचित कर देते हैं। वे यह भी जता देते हैं कि उनके नामों के कौन से शब्द संक्षिप्त कर दिये जायं।

उदाहरणार्थः— **अमीरअली** (सैयद).
हैदरी (अकबर).
यूसुफ अली (ए.).

किन्तु अन्य मुसलमानों के साथ ऐसा नहीं है। उनके नाम इतने लम्बे तथा उनके अवयवों की इतनी अधिक संख्या होती है कि वे भारस्वरूप प्रतीत होते हैं। ऐसे अवसरों पर मुसलमानी संस्कृति के विशेषज्ञों की सम्मति प्राप्त करना अति श्रेय-

स्कर है किन्तु इस प्रकार की सम्मति से सरलतापूर्वक लाभ उठाने के लिए भी सूचीकार को चाहिए कि व्यक्ति के नामकरण की मुसलमानी रीति क्या है इसका कुछ ज्ञान तो उसके पास भी हो। नीचे हम हेस्टिंग्स के **एन्साइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स** तथा **एन्साक्लोपीडिया आफ इस्लाम** से संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं।

किसी मुसलमानी नाम में एक अथवा अधिक शब्दों के समूह रहते हैं, जो निम्नस्थ के सूचक होते हैं:–

(१) रूढ़ अथवा व्यावसायिक उपाधि अथवा लकब;

(२) वैयक्तिक (व्यष्टि) नाम अथवा इज़्म;

(३) पिता का नाम जिसके पूर्व "इब्न" "बिन" अथवा "ब" शब्द लगा होता है;

(४) पितामह, प्रपितामह इत्यादि के नामों की परंपरा, प्रत्येक नाम के पूर्व "इब्न" अथवा उसके विभिन्न रूप होते हैं;

(५) पैतृक अथवा मातृक—नाम अथवा कुन्याह, बहुधा उसके आरम्भ में "अबु" पद होता है;

(६) प्रदत्त उपाधि अथवा लकब; अथवा विनोद-नाम या उर्फ;

(७) सम्बद्धनाम अथवा निस्बाह, बहुधा उसके अन्त में ई होता है;

(८) साहित्यिक नाम अथवा तखल्लुस, बहुधा वह केवल ४-५ अक्षरों का ही बना होता है; तथा

(९) "ख्यातिनाम" अथवा वह नाम जिससे वह ग्रन्थकार जनता द्वारा अथवा ग्रन्थों में उल्लिखित होता हो; इस प्रकार के नाम के आगे यदि वह बहुधा आख्यापत्र पर दिया हो तो "अलमारुफ ब" अथवा "असहीर" पद लगे हुए होते हैं।

पदों के उपर्युक्त समूह सामान्यतः उपरिनिर्दिष्ट क्रम में आते हैं। किन्तु सर्वत्र यही क्रम हो यह कोई निरपवाद नियम नहीं है। परन्तु यह समझना तो भूल ही होगी कि प्रत्येक मुसलमानी नाम में उपर्युक्त सभी पद समूह आयें।

जब कभी ग्रन्थालय सूची के लिए शीर्षक लिखे जायं तब आरम्भ में आनेवाली रूढ़-उपाधि का तो सर्वत्र नियमतः लोप ही कर देना चाहिए। किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि उपाधियां कहीं व्यक्तिगत नाम ही न हों। उदाहरणार्थ, हकीम, काजी, मौलवी, आगा, हबीब, खागा, मीर, सरदार, सैयद।

व्यक्तिनाम अथवा **इज्म** में सामान्यतः एक या दो पद होते हैं। कभी कभी दो से अधिक भी होते हैं, किन्तु बहुत कम। व्यक्ति नाम को पहचानने का सरल एवं स्थूल प्रकार यह है कि यदि 'इब्न' अथवा उसका पर्याय नाम में हो तो यह मान ही लेना चाहिये कि प्रथम इब्न के पहिले आनेवाला पद व्यक्तिनाम ही है, तथा प्रथम इब्न के पश्चात् आने वाला पद पिता का नाम है। ऐसी अवस्था में व्यक्तिनाम के पदों का समूह, इब्न यह पद अथवा उसके पर्याय, तथा पिता का नाम ये सब आरम्भ में लिखे जायं; तथा नाम के अन्य सभी आवश्यक पद उसके अनन्तर लिखे जायं। इसके अतिरिक्त, यदि एक से अधिक इब्न अथवा उसके पर्याय हों तो द्वितीय तथा उसके अनन्तर के सभी इब्न अथवा उसके पर्याय तथा उनसे सम्बद्ध सभी पदों की उपेक्षा की जाय। यदि नाम में इब्न न हो तो प्रथम एक पद (अथवा दो पद) संभवतः व्यक्ति नाम ही होगा और उसे आरम्भ में लिखना चाहिये। हां, यदि कोई रूढ़ लकब हो तो उसका लोप कर दिया जाय।

कुन्याह् औपचारिक (गौण) नाम होता है। साधारणतः इसमें 'अबु' यह पद होता है, जिसका अर्थ होता है पिता का नाम; उसके अनन्तर सर्वज्येष्ठ पुत्र अथवा पुत्री का नाम होता है, किन्तु इस सम्बन्ध में अनेक अपवाद भी हैं। कतिपय कुन्याह् कतिपय नामों के साथ निरन्तर लगे ही रहते हैं, कारण उस नाम को धारण करने वाले व्यक्ति का वह कुन्याह् रह चुका होता है। इसके अतिरिक्त, बच्चों को भी कुन्याह् लगा दिया जाता है और जिन्हें बच्चे नहीं होते उन्हें भी नहीं छोड़ा जाता– उनके साथ भी लगा दिया जाता है। अतः हम कुन्याह् से यह अनुमान नहीं लगा सकते कि उस व्यक्ति को वह सन्तान थी ही जिसका नाम 'अबु' इस पद के बाद दिया हुआ हो। कतिपय स्थानों में तो कुन्याह् का अर्थ किसी भी प्रकार पितृत्व नहीं होता। उसके द्वारा और कोई विशेषता हो सकती है।साधारणतः कुन्याह् का स्थान पिता तथा अन्य पूर्वजों के नाम के अनन्तर होता है, किन्तु कभी कभी उसे आरम्भ में ही व्यक्तिनाम के पूर्व लगा दिया जाता है।

यदि कुन्याह् नाम के अंक के रूप में दिया हुआ हो तो सूची के शीर्षक में उसे वृत्त कोष्ठकों में लिखे जाने वाले नाम के अंक के साथ लिखा जाय।

कहीं कहीं ऐसा भी हो सकता है कि यह ही केवल एक नाम ज्ञात हो, तथा इज्म अथवा व्यक्ति नाम या तो कभी दिया ही न गया हो अथवा भुला दिया गया हो। ऐसी अवस्था में, शीर्षक में कुन्याह् सर्वप्रथम लिखा जाय तथा अन्य सभी पद उसके अनन्तर वृत्त कोष्ठकों में लिखे जायं।

लकब का लक्षण निषेधात्मक रूप से इस प्रकार किया जा सकता है कि नामधारी व्यक्ति जो नाम जन्म के साथ प्राप्त करता है उससे वह भिन्न होता है, और उसका स्थान नहीं ग्रहण कर लेता।

प्रदत्त उपाधि अथवा लकब को १२१५ धारा के अनुसार व्यवहार में लाया जाय।

यदि विनोद-नाम अथवा उर्फ का उपयोग करना ही हो तो उसे १२१६ धारा के सम्बन्ध में किया जाय अथवा धारा १२१८ के अनुसार उसके साथ व्यवहार किया जाय।

निस्बाह् एक विशेषण होता है। जिस व्यक्ति को यह दिया जाता है उसके सम्बन्ध में यह निस्बाह यह बतलाता है कि वह व्यक्ति किसी जाति विशेष का सदस्य है, किसी स्थान विशेष का निवासी है अथवा किसी विशिष्ट व्यवसाय में लगा हुआ है। यह इसी प्रकार का और कोई गुण भी प्रकट करता है, जिसके द्वारा उस नाम धारी व्यक्ति को पहचाना जा सकता है। इस निस्बाह् को पहचानने का यह लक्षण है कि बहुधा इसके अन्त में 'ई' होता है। कहीं कहीं यह भी देखा जाता है कि एक ही नाम के दो या उससे अधिक निस्बाह अङ्ग होते हैं। जो पद-समूह वृत्त कोष्ठक में रखा हुआ हो, निस्बाह उसके अगंतर रखा जाता है, तथा ब्रिटिश म्यूजियम ग्रंथालय की प्रथा के अनुसार अधोरेखांकित किया जाता है। इसे पृथक् वाक्य माना जाना चाहिये।

तखल्लुस साहित्यिक नाम होता है, जिसे अधिकांश साहित्यसेवी धारण करते हैं। यह कल्पित नाम के ही समान होता है। ग्रन्थकार बहुधा अपने कल्पित नाम को अपन तथ्यनाम के अनंतर रखा करते हैं, किंतु दूसरे व्यक्ति उसका उल्लेख केवल कल्पित नाम से ही करते हैं। तखल्लुस को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होती। कारण, यह तथ्य-नाम के अनन्तर आता है तथा इसमें दो ही चार अक्षर होते हैं। यदि इन बातों का ध्यान रखा जाय तो वह शीघ्र ही पहचाना जा सकता है। यदि वह तथ्य नाम के साथ दिया हुआ हो तो १२१८ धारा के अनुसार उसके साथ व्यवहार किया जाय और यदि आख्यापत्र पर केवल वह ही दिया हुआ हो तो धारा १२५ तथा उसके उपभेदों के अनुसार उसके साथ व्यवहार किया जाय।

ख्याति-नाम अथवा वह नाम जिससे कोई ग्रन्थकार जनता द्वारा जाना जाता हो अथवा ग्रन्थों में उल्लिखित होता हो, कुछ कठिनाई उत्पन्न करता है।

ग्रन्थकार के द्वारा लिखी हुई पुस्तकों में तथा ग्रन्थकार के ही द्वारा प्रस्तुत की हुई उन पुस्तकों की आवृत्तियों में आख्यापत्र पर साधारणतः वह ख्याति-नाम नहीं दिखलाई पड़ता। किन्तु ग्रन्थकार से भिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा संपादित आवृत्तियों में यह संभव है कि आख्यापत्र पर केवल 'ख्यातिनाम' ही हो। इस प्रकार के नामों के वरण तथा उपकल्पन के लिए हम निम्नलिखित सुझाव उपस्थित करते हैं। यदि आख्यापत्र पर तथ्य-नाम दिया हुआ हो तो उसे शीर्षक के रूप में व्यवहृत किया जाय तथा ख्याति-नाम को कल्पितनाम के रूप में व्यवहृत किया जाय। यदि आख्यापत्र पर तथ्यनाम न दिया हुआ हो, अपितु केवल ख्याति नाम ही दिया हुआ हो तो उसके साथ धारा १२५ तथा उसके उपभेदों का अनुकरण करते हुए उचित व्यवहार किया जाय।

'अल्' यह स्थिर उपसर्ग तथा उसके विविध रूप नाम के एक अथवा अनेक शब्दों के पूर्व में आ सकता है। यह जहां कहीं भी आये, उसे लिखना तो चाहिये, किन्तु वर्णानुक्रमीकरण में उसकी ओर ध्यान न दिया जाय। यदि वह **निस्बाह्** में दिया हुआ हो तो उन्हें अधोरेखांकित कर दिया जाय।

जिन सूचीकारों को मुसलमानी संस्कृति का विशेष ज्ञान न हो उनके लिए इस प्रकार की जटिलताओं से भरे हुए नामों की समस्याओं को सुलझाना सरल नहीं है। लिण्डर फेल्ट के 'एक्लेक्टिक कार्ड कैटेलोग रूल्स में इस विषय पर कतिपय निश्चित एवं स्पष्ट आदेश दिए हुए हैं, ऐसा कहा जाता है। किन्तु हमने उस पुस्तक की कोई प्रति अब तक नहीं देखी। सामान्यतः मुसलमानी भाषाओं से सम्बद्ध ग्रन्थों की ब्रिटिश म्यूजियम ग्रन्थालय में जो सूची बनाई गई है उनके संपुटों से, तथा **एन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम** के संलेखों से पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है। उनके द्वारा यह ज्ञात हो सकता है कि मुसलमानी नामों के अंगभूत पदों का क्या स्वरूप है, क्या महत्व है तथा क्या क्रम है ? यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मुसलमानी नामों की समस्याओं को सुलझाने की तथा उन्हें सुव्यवस्थित करने की पर्याप्त आवश्यकता है तथा उसमें पर्याप्त अवसर भी है। हमने धारा १२१२की व्याख्या में हिन्दू नामों के सम्बन्ध में की जाने योग्य गवेषणा के पक्ष में बहुत कुछ कह चुके हैं। हमारी तो यह दृढ़ धारणा है कि मुसलमानी नामों में और भी अधिक गवेषणा का अवसर है। इन नामों में मिस्री आन्तरिक जटिलता तो है ही, साथ ही साथ स्पेनिश, मूरिश, तुर्की, अरबी, फारसी अफगान तथा भारतीय आदि विभिन्न राष्ट्रीय मुसलमानी नामों में विचित्र विशेषताएँ भी हैं, जिनके कारण

वे नाम सर्वथा अपूर्व हो जाते हैं। सारा विषय ही कठिनाइयों से तथा अनिश्चितताओं से भरा पड़ा है। वर्तमान ग्रन्थालयों में जो भी रीतियां चलाई जा रही हैं उन्हें अधिक से अधिक सुन्दर शब्दों में यही कहा जा सकता है कि वे केवल 'चले-चलो' हैं। यदि उस्मानिया विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालय कतिपय नवयुवकों को इस समस्या के सुलझाने तथा व्यवस्थित करने के लिए गवेषणा-कार्य में लगाएं तथा मुसलमानी नामों का प्रामाणिक कोश प्रस्तुत करायँ तो वे ज्ञान-जगत् की महती सेवा कर सकेंगे।

ऊपर की हुई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, जिन नामों में यूरोपीय प्रभाव न दिखलाई पड़े ऐसे मुसलमानी नामों के वरण तथा उपकल्पन के लिए हम निम्न-लिखित अस्थायी धाराओं का निरूपण कर सकते हैं। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस प्रकार का नाम आख्यापत्र पर दिया हुआ हो ठीक वही नाम उपयोग में लाया जाय।

१२१३ मोहंमदीय-नाम

१२१३१ आरम्भक-रूढ-उपाधि-लोपः।

१२१३१० परंपरा-अवियोज्यत्वे न।

१२१३११ कोष्ठके।

१२१३२ 'इज़्म'-अपरनामक-व्यष्टि-नाम आदौ।

१२१३३ 'इब्न्'-तत्पर्याय-अन्यतर-अनुगत-व्यष्टि-नाम १२१३२ धारा-निर्दिष्ट व्यष्टि नाम्नः परम् आदौ।

१२१३३१ 'इब्न्'-अनुगत-कुन्याह्-व्यष्टि नाम्नोः प्रथम-लोपः।

१२१३४ प्रथमेतर-'इब्न्'-तत्पर्याय-पूर्वनामत्वे सर्व-लोपः।

१२१३५ व्यष्टिनामाभावे कुन्याह्-सत्त्वे तदादौ।

१२१३६ 'लकब्' अपरपर्यायक-उपाधौ १२१५

	धारा प्रमाणम् ।
१२१३६१	'उर्फ्'-अपर-पर्यायक-विनोद-नाम-लोपः ।
१२१३६१०	१२१८-१२१९ धारा-प्रसक्तौ न।
१२१३७	'निस्बाह्' कोष्ठकात् परम् ।
१२१३७०	अधोरेखाङ्कनम् ।
१२१३८	'तखल्लुस'-प्रसिद्धि-नामनी १२५ धारोपधारानुसारम् ।
१२१३९	आरम्भिक-उपाधि-अप्रथम-लेख्य-'कुन्याहौ' आदि-लेख्य-नामपदात् परम् ।
१२१३९०१	वृत्तकोष्ठके।
१२१३९०२	अनुस्वभावक्रमम् ।
१२१३९१	नामाङ्ग-पद-स्वाभाविक-क्रमे आदि-लेख्य-पद-स्थान-मध्यगत्वे वृत्तकोष्ठके रेखिका।
१२१३९२	'अल्'-लेख्यम् ।
१२१३९२१	वर्ण-व्यवस्थापने उपेक्षा ।

१२१३१	नाम्नः आरम्भे परम्पराप्राप्तः रूढः उपाधिः चेत् तस्य लोपः कार्यः ।
१२१३१०	सः उपाधिः परंपरा-प्रसिद्धिवशात् नाम्नः अवियोज्यः चेत् तस्य लोपः न कार्यः ।
१२१३११	सः उपाधिः अवियोज्यत्वेन नाम्ना सहैव लेख्यः चेत् कोष्ठके लेख्यानां नामपदानाम् अंशरूपेण लेख्यः ।
१२१३२	'इज्म'-अपरनामकं व्यष्टि-नाम आख्या-पत्रे विद्यते चेत् तत् आदौ लेख्यम् ।

१२१३३ व्यष्टि-नाम 'इब्म्' इत्येतेन तत्पर्यायेण वा अनुगतं चेत् तत् आदौ लेख्यम् , परम् १२१३२ धारायां निर्दिष्टात् व्यष्टिनाम्नः परम् लेख्यम् ।

१२१३३१ कुन्याह् व्यष्टि-नाम च 'इब्न' इत्येतेन अनुगतं चेत् कुन्याह् इत्यस्य लोपः कार्यः ।

१२१३४ द्वितीयं तदुत्तरं वा 'इब्न्' तत्पर्यायः वा विद्यते चेत् तत् तत्पूर्वं विद्यमानं नाम च इति सर्वेषां लोपः कार्यः ।

१२१३५ व्यष्टि-नाम न विद्यते चेत्, आख्यापत्रे च कुन्याह् विद्यते चेत्, तत् कुन्याह् आदौ लेख्यम् ।

१२१३६ 'लकब्' अपर-पर्यायकः उपाधिः विद्यते चेत् तस्य वरणादौ १२१५ धारा प्रमाणत्वेन स्वीकार्या ।

१२१३६१ 'उर्फ्'- अपर-पर्यायकं विनोद-नाम चेत् तस्य लोपः कार्यः ।

१२१३६१० १२१८ धारायाः १२१९ धारायाः च प्रसक्तिः चेत् उर्फ्- अपर-पर्यायक-विनोद-नाम्नः लोपः न कार्यः ।

१२१३७ आख्यापत्रे 'निस्बाह्' विद्यते चेत् तत् अग्र-लेख्यात् नाम्नः पदात् इतरेण पदेन युक्तस्य वृत्तकोष्ठकस्य अव्यवहितोत्तरं लेख्यम् ।

१२१३७० तस्य 'निस्बाह्' इत्यस्य अधः रेखाङ्कनं कार्यम् ।

१२१३९ आरम्भिकः, सूच्यां लेख्यः , न तु लोप्यः उपाधिः, प्रथमं न लेख्यः 'कुन्याह्' च आख्या-पत्रे विद्येते चेत् तौ आदौ लेख्यात् नाम्नः पदात् परम् लेख्यौ ।

१२१३९०१ तत् वृत्तकोष्ठके लेख्यम् ।

१२१३९०२ तत् तदीयं स्वाभाविकं क्रमम् अनुसृत्य लेख्यम् ।

१२१३९१ नामाङ्ग-भूत-पदानां स्वाभाविक क्रमे, आदि-लेख्य-स्य नाम-पदस्य स्थानं कोष्ठके लेख्यानां सर्वपदानां नादौ नापि च अन्ते विद्यते चेत्, अपि तु तन्मध्ये विद्यते चेत्, तस्य स्थानं १२१३९०१ धारायां उल्लिखिते वृत्तकोष्ठके रेखिकया सूच्यम् ।

१२१३९२ 'अल्' इत्युपपदं संलेखे लेख्यम् ।

१२१३९२१ वर्ण-व्यवस्थापने 'अल्' इत्यस्य उपेक्षा कार्या ।

१२१३१ यदि नाम के आरम्भ में परम्परा से प्राप्त रूढ़ उपाधि हो, तो उसका लोप किया जाय ।

१२१३१० वह उपाधि यदि परम्परा की प्रसिद्धि के कारण नाम के साथ लगी हुई हो, तो उसका लोप न किया जाय ।

१२१३११ यदि वह उपाधि अवियोज्य ढंग से नाम के साथ ही लिखी हुई हो, तो कोष्ठक में लिखे हुए पदों के अंश रूप में लिखी जाय ।

१२१३२ यदि 'इज्म' अपर-नामक व्यष्टि-नाम आख्यापत्र पर विद्यमान हो, तो वह आदि में लिखा जाय ।

१२१३३ यदि व्यष्टि-नाम 'इब्न' या उसके पर्याय से अनुगत हो तो वह आदि में लिखा जाय, किन्तु १२१३२ धारा में निर्दिष्ट व्यष्टि-नाम के पश्चात् लिखा जाय ।

१२१३३१ यदि कुन्याह और व्यष्टि-नाम 'इब्न' इससे अनुगत हो, तो कुन्याह का लोप किया जाय ।

१२१३४१ यदि द्वितीय वा उसके तृतीय आदि 'इब्न' वा उसका पर्याय विद्यमान हो, तो वह और उसके पूर्व विद्यमान नाम सबका लोप किया जाय ।

१२१३५ यदि व्यष्टि-नाम विद्यमान न हो और आख्यापत्र पर कुन्याह विद्यमान हो, तो कुन्याह आदि में लिखा जाय ।

१२१३६ 'लकब' अपर-पर्यायक उपाधि विद्यमान हो, तो उसके वरण आदि में १२१५ धारा प्रमाण-स्वरूप मानी जाय ।

१२१३६१ 'उर्फ' अपर-पर्यायक विनोद-नाम विद्यमान हो तो उसका लोप किया जाय ।

१२१३६१० १२१८ धारा और १२१९ धारा लागू हो, तो 'उर्फ' अपर-पर्यायक विनोद-नाम का लोप न किया जाय ।

१२१३७ आख्यापत्र पर यदि 'निस्बाह्' विद्यमान हो, तो वह आगे लिखे जाने वाले नाम के पद से भिन्न पद से युक्त वृत्त-कोष्ठक के ठीक आगे लिखा जाय ।

१२१३७० उस 'निस्बाह्' के नीचे रेखा खींची जाय ।

१२१३८ 'तखल्लुस' और प्रसिद्धि-नाम दोनों १२५ धारा तथा उसकी उपधारा के अनुसार लिखे जायं ।

१२१३९ आरम्भिक सूची में लिखी जाने वाली और लोप न की जाने वाली उपाधि तथा प्रथम न लिखा जाने वाला 'कुन्याह्' यदि आख्या-पत्र पर विद्यमान हो, तो वे दोनों आदि में लिखे जाने वाले नाम के पद से आगे लिखे जायं ।

१२१३९०१ वह-वृत्त कोष्ठक में लिखा जाय ।

१२१३९०२ वह अपने स्वाभाविक क्रम का अनुसरण कर लिखा जाय ।

१२१३९१ नामांगभूत पदों के स्वाभाविक क्रम से आदि में लिखे हुए नामपद का स्थान वृत्त-कोष्ठक में लिखे हुए सब पदों के न तो आदि में विद्यमान हो और न अन्त में, बल्कि उनके मध्य में विद्यमान हो, तो उनका स्थान १२१३९ धारा में उल्लिखित वृत्त-कोष्ठक में रेखा द्वारा सूचित किया जाय ।

१२१३९२ 'अल्' यह उपपद संलेख में लिखा जाय ।

१२१३९२१ वर्ण-व्यवस्थापन में 'अल्' की उपेक्षा की जाय ।

१२१३९२१ उदाहरण:–

१. अल्–हरीरी के असेम्ब्लीज् की एक आवृत्ति में आख्यापत्र पर ग्रन्थकार का नाम इस प्रकार दिया हुआ है ।

"शेख अल्-अलीम् अबू मुहम्मद अल-कासिम इब्न अली इब्न मुहम्मद इब्न उस्मान अल् हरीरी अल् बसरी."

यहां पर ग्रन्थकार "अल् हरीरी" इस नाम से प्रसिद्ध है । अतः धारा १२५

तथा उसके उपभेदों का पूर्वानुसन्धान करते हुए पुस्तक के लिए शीर्षक निम्नलिखित प्रकार से लिखा जायगा:–

अल्-कासिम इब्न अली (अबू मुहम्मद) अल्-हरीरी, अल् बसरी (अ. अल् हरीरी. कल्पित).

यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि "विद्वान् ऋषि" इस अर्थवाली "शैख अल्-अलीम "यह आरम्भिक उपाधि लुप्त कर दी गई है। साथ ही द्वितीय तथा तृतीय "इब्न" तथा उनके अनुपद आने वाले व्यक्ति-नाम भी लुप्त कर दिए गए हैं।

२. "अत्तार" अथवा "फरीद अल्-दीन अत्तार" इस रूप में सामान्यतः प्रसिद्ध एवं उल्लिखित शेख फरीद अल्-दीन अबू हमीद मुहम्मद इब्न अबू बकर इब्राहिम नसबरी यह नाम शीर्षक में निम्नलिखित प्रकार से लिखा जायगा:– यह मान लिया गया है कि आरम्भ में सूचित ख्याति-नाम भी आख्यापत्र पर दिया हुआ हो:–

मुहम्मद इब्न इब्राहिम (फरीद अल्-दीन अबू हामिद) नसबरी (अ. फरीद अल्-दीन अत्तार. कल्पित), [अ. अत्तार. कल्पित].

आरम्भ में आने वाली उपाधियों में से "शेख" लुप्त कर दी गई है, किन्तु "फरीद अल्-दीन" रक्खी गई है, कारण परम्परा की प्रसिद्धि उसे लुप्त करने की अनुमति नहीं देती। इसके अतिरिक्त इब्न के अनन्तर दिया हुआ कुन्याह १२१३३१ धारा के अनुसार छोड़ दिया गया है।

३. उदाहरण के रूप में एक नाम और भी दिया जाता है जो आख्यापत्र पर निम्नलिखित रूप में पाया जाता है:–

"शेख अल्-इमाम अल्-अलीम अर्-रसिक अल्-कामिल हकीम अल्-औलिया अल्-वारिसिन अल्-वारेसिक मुहिअल-हक वदीन अबू अब्दुल्ला मुहम्मद इब्न अली अल्मेरक इब्न अरबी अल्-हातिमी, अल्-ताइ"। यह कहा जाता है कि इस ग्रंथकार को सामान्यतः "शैकुल अकबर" भी कहा जाता है।

इस नाम को शीर्षक में निम्नलिखित रूप में लिखा जायगा !

मुहम्मद इब्न अली (अबू अब्दुल्ला) अल् हातिमी, अल्-ताइ (अ. इब्न अरबी. कल्पित.). [अ. शैकुल अकबर. कल्पित.].

यहां पर नाम में अबू अब्दुल्ला तक के सभी शब्द मानार्थक हैं और वे पुस्तक के प्रकाशक द्वारा जोड़े गए हैं। अतः उन्हें लुप्त कर दिया गया है। "इब्न अरबी" यह ख्याति नाम आख्या पत्र पर ही दिया हुआ है और उसके पूर्व अल् मेरुक यह शब्द दिया हुआ है जिसका अर्थ होता है "के नाम से प्रसिद्ध" अतः उसे वृत-कोष्ठकों में रखा हुआ है। इसके विपरीत द्वितीय ख्याति-नाम आख्या-पत्र पर नहीं दिया हुआ है। अतः उसे ऋजु-कोष्ठकों में रखा गया है। इस उदाहरण में भी धारा १२५ तथा उसके उपभेदों का पूर्वानुसन्धान कर लिया गया है।

अन्य धर्म तथा राष्ट्र

धारा १२१४ तथा उसके उपभेद अन्य धर्म तथा राष्ट्रों के नामों के वरण तथा उपकल्पन के लिए उद्दिष्ट हैं। उन नामों की व्यवस्था के लिए हमारा अनुभव अभी पर्याप्त नहीं है। अतः उनके विषय में निश्चित एवं स्थिर धाराओं का निरूपण नहीं किया गया है। इस प्रकार के नामों के लिए विशेषज्ञों की सम्मति लेनी चाहिए।

अभी अभी हमें कतिपय जापानी पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। उनमें कुछ जापानी भाषा में लिखी हुई हैं और कुछ अंग्रेज़ी में। जब हम उनका सूचीकरण कर रहे थे तब हमें जापानी नामों के विषय में निम्नलिखित अस्थायी सूचना प्राप्त करने का अवसर मिला। आरम्भ में जापान के कतिपय उच्च पदधारी व्यक्तियों का ही कुल नाम हुआ करता था। साधारण जनता में किसी का भी पितृकुलीय नाम नहीं होता था, तथा वे केवल व्यष्टि-नाम ही रख पाते थे। किन्तु मैजी युग के आरम्भ में सरकार ने आदेश दिया कि सभी कुल-नाम रख लें। उस युग से लेकर जापानी नामों का गठन ठीक उसी प्रकार का होने लगा है जिस प्रकार का आधुनिक यूरोपीय नामों का होता है। इस प्रकार जापानी नाम में कुल-नाम होता है तथा साथ ही एक दो पद और भी होते हैं जो नामाद्य पद का काम करते हैं। अंग्रेज़ी के आख्या-पत्रों से युक्त पुस्तकों में जापानी नामों के शब्दों का क्रम ठीक वही होता है जो यूरोपीय नामों का होता है, अर्थात् कुल-नाम सब के अन्त में होता है। ऐसी अवस्था में उन नामों का उपकल्पन धारा १२११ तथा उसके उपभेदों का अनुकरण करते हुए किया जाय। जहां कहीं सन्देह हो, वहां जापान यिअर बुक, १९३१ के अन्त में विद्यमान, "हू इज़ हू इन जापान" (जापान का नाम वृत्त) नामक अनुबन्ध अ का अवलोकन करना चाहिए।

१२१५ विरुदादि

१२१५ आनुवंशिक-विरुदं नामाद्यपदात् परम् ।

१२१५०१ तद् वर्णकम् ।

१२१५०२ नामाद्य-पदाभावे तत्स्थाने ।

१२१५०३ प्राक्कालिक-अन्त्य-नाम्नि सतते न विरुद-समेत-स्थान-नाम ।

१२१५ आनुवंशिके विरुदे विद्यमाने तत् नामाद्य-पदात् परं लेख्यम् ।

१२१५०१ तद् वंश-विरुदं वर्णकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२१५०२ नामाद्य-पदे असति वंश-विरुदं तस्य स्थाने लेख्यम् ।

१२१५०३ विरुद-लाभेऽपि प्राक्कालिके अन्त्ये नाम्नि प्रवर्तमाने विरुद-समेतं स्थानस्य नाम त्याज्यम् ।

१२१५ यदि वंश का कोई विरुद (उपाधि) हो, तो वह नामाद्यपद के पश्चात् लिखी जाय ।

१२१५०१ उस वंश-विरुद को वर्णक माना जाय ।

१२१५०२ नामाद्य-पद के न रहने पर वंश-विरुद उसके स्थान में लिखा जाय ।

१२१५०३ विरुद प्राप्त कर लेने पर भी यदि पूर्व समय का अन्तिम नाम चालू रहे, तो विरुद से युक्त स्थान का नाम छोड़ दिया जाय ।

१२१५०३ द्रष्टव्य धारा ०३६६

उदा. **जहांगीर** (कावसजी सर).

लिटन (एडवर्ड बुलवर लॉर्ड).

टैनिसन (अल्फ्रेड लॉर्ड).

मेकॉले (लॉर्ड). यदि आख्यापत्र पर नामाद्य पद न दिए हों.

रोनाल्डशे (के अर्ल).

वेलिंगटन (के ड्यूक).

बनारस (के महाराजा).

मॉर्ले (जॉन वाइकाउन्ट). पर यह उचित नहीं है :-

मॉर्ले ऑफ ब्लेकबर्न (जान वाइकाउन्ट).

१२१५१ श्रीमत्यादि-वर्णक-पदं नामाद्य-पदात्परम् ।

१२१५१ आनुवंशिक-विरुद-रहितायां स्त्रियां ग्रन्थकर्त्र्यां श्रीमती-प्रभृतिकं तत्तद्भाषिकं वा योग्यं वर्णकं पदं नामाद्य-पदात् परं लेख्यम् ।

१२१५१ आनुवंशिक विरुद से रहित स्त्री यदि ग्रन्थकर्त्री हो, तो श्रीमती आदि अथवा तद् भाषा का योग्य वर्णक पद नामाद्य-पद के पश्चात् लिखा जाय ।

१२१५१ उदा. सरोजिनी नायडू (श्रीमती).

पटेल (मनीबेन कुमारी).

१२१५२१ न विरुदान्तरम् ।

१२१५२२ नाम-आद्य-अन्त्य-मानपदं च ।

१२१५२३ व्यवसाय-अधिकार-पदादि-वर्णकं च ।

१२१५२१ अन्यत् विरुदं त्याज्यम् ।

१२१५२२ नाम्नः आदौ अन्ते वा स्थितं मानसूचकं पदं यदि चेत् तत् अपि त्याज्यम् ।

१२१५२३ ग्रन्थकारस्य व्यवसायम्, अधिकारं, पदं, तत्-प्रभृतिकं वा वर्णयन्ति अन्यानि अपि पदानि त्याज्यानि ।

१२१५२१ अन्य दूसरे विरुद छोड़ दिए जायं ।

१२१५२२ **यदि नाम के आदि अथवा अन्त में मानसूचक पद हो, तो उसे भी छोड़ दिया जाय।**

१२१५२३ **ग्रन्थकार के व्यवसाय, अधिकार, पद आदि को वर्णित करने वाले अन्य पद भी छोड़ दिए जायं।**

१२१६ राजानो मताचार्यश्च

१२१६ **राज-तद्वंशज - सिद्ध - मताचार्य - नामाद्यपदं पूर्वम्।**

१२१६१ **व्यक्ति-साधक-संख्या परम्।**

१२१६२ **पदसूचक-वर्णक-पदं परम्।**

१२१६३ **तत् वाक्यम्।**

१२१६ राज्ञः, तद्वंशजस्य, सिद्धस्य, मताचार्यस्य च नाम्नः आद्य-पदं पूर्वं लेख्यम्।

१२१६१ ततः परं व्यक्तिसाधिका संख्या चेत् लेख्या।

१२१६२ पद-सूचकं, वर्णकं च पदं ततः परं लेख्यम्।

१२१६३ तत् वर्णकं पदं पृथक् वाक्यमिति ज्ञेयम्।

१२१६ **राजा, उसके वंशज, सिद्ध तथा मताचार्य के नामों के आद्य-पद पूर्व लिखे जायं।**

१२१६१ **उसके पश्चात् व्यक्तिसाधक संख्या, यदि कोई हो तो, वह लिखी जाय।**

१२१६२ **पद (स्थान) को सूचित करने वाला वर्णक पद उसके पश्चात् लिखा जाय।**

१२१६३ **उस वर्णक पद को पृथक् वाक्य माना जाय।**

१२१६३ उदा. जॉर्ज ३य. ग्रेट ब्रिटेन के राजा.

पायस २य. पोप.

थामस. सेन्ट.

१२१७ स्थित्यन्तरम्

१२१७ अग्राक्षर-मात्र-नाम्नि तत् ।

१२१७० इदमग्राक्षर-नाम ।

१२१७१ पूर्णनाम ऋजुकोष्ठके ।

१२१७२ 'अ' इति पूर्वम् ।

१२१७ आख्या-पत्रे नाम्नः केवलम् अग्राक्षर-मात्रे सति-नाम्नः स्थाने तत् लेख्यम् ।

१२१७० इदं नाम अग्राक्षर-नाम इति उच्यते ।

१२१७१ यदि अग्राक्षर-नाम्नः पूर्णं नाम उपलभ्यते चेत् तत् ऋजुकोष्ठके लेख्यम् ।

१२१७२ पूर्ण-नाम्नः पूर्वम् 'अ' इति कोष्ठके लेख्यम् ।

१२१७ यदि आख्या-पत्र पर नाम का केवल अग्राक्षर-मात्र हो तो नाम के स्थान में उसे लिखा जाय ।

१२१७० इस नाम को अग्राक्षर-नाम कहते हैं ।

१२१७१ यदि अग्राक्षर-नाम का पूर्ण नाम उपलब्ध हो सके तो उसे ऋजु-कोष्ठक में लिखा जाय ।

१२१७२ पूर्ण नाम के पहले 'अ.' यह कोष्ठक में लिखा जाय ।

१२१७२ उदा. क्यू. (अ. आर्थर क्विलर-काउच)

१२१८ व्यष्टि - ग्रन्थकार - अवान्तर - नाम - गौण-नामान्यतरत् प्रधान-नाम्नः परम् ।

१२१८१ तद्वृत्तकोष्ठके ।

१२१८२ 'अ' इति पूर्वम् ।

१२१८३ कल्पित-नाम्नि 'कल्पितम्' इति ।

१२१८४ तद् वर्णकम् ।

१२१८ आख्या-पत्रे व्यक्ति-ग्रन्थकारस्य अवान्तरे नाम्नि गौणे नाम्नि वा विद्यमाने तत् प्रधान-नाम्नः परं लेख्यम् ।

१२१८१ तत् नाम वृत्त-कोष्ठके लेख्यम् ।

१२१८२ 'अ' इति ततः पूर्वं लेख्यम् ।

१२१८३ तस्मिन् अवान्तर-नाम्नि कल्पितस्वरूपे 'कल्पितम्' इति ततः परं लेख्यम् ।

१२१८४ तत् 'कल्पितम्' इति पदं वर्णकम् इति ज्ञेयम् ।

१२१८ आख्या-पत्र पर यदि व्यष्टि-ग्रन्थकार का अवान्तरनाम अथवा गौण नाम विद्यमान हो, तो वह प्रधान नाम के पश्चात् लिखाजाय ।

१२१८१ उस नाम को वृत्त-कोष्ठकों में लिखा जाय ।

१२१८२ 'अ.' यह उस नाम के पहले लिखा जाय ।

१२१८३ वह अवान्तर या गौण नाम यदि कल्पित-नाम हो तो उसके आगे 'कल्पित' यह लिखा जाय ।

१२१८४ यह 'कल्पित' पद वर्णक माना जाय ।

१२१८४ उदा. बेनैट (एलन). (अ. आनन्द मेत्रेय).

विशप (आइसाबेला, श्रीमती). (अ. कुमारी आइसाबेला बर्ड).

हावर्ड (हेनरी) (अ. अर्ल आफ सेलिसबरी).

१२१९१ अनेक-ग्रन्थकार-अभिन्न-नाम्नां प्रातिस्विक जन्म - मरण - उभयान्यतमवत्सरेण व्यक्ति-सिद्धिः ।

१२१९११ असाध्ये व्यवसायादि ।

१२१९१२ नाम्न : परम् ।

१२१९१३ पृथग् वाक्यम् ।

१२१९१४ **आख्यापत्र-मुखस्थं वृत्तकोष्ठके ।**

१२१९१५ **अन्यथा ऋजुकोष्ठके ।**

१२१९१ एकाधिकानां ग्रन्थकाराणां नाम्नि अभिन्ने, तेषां स्वीयस्य स्वीयस्य जन्मनः मरणस्य उभयोः वा अन्यतमस्य वत्सरेण व्यक्ति-सिद्धिः कार्या ।

१२१९११ १२१९१ धारया भेदे असाध्ये व्यवसायादि-व्यक्ति-साधक-भावेन व्यक्ति-साधनं कार्यम् ।

१२१९१२ इदं व्यक्ति-साधकं नाम्नः परं लेख्यम् ।

१२१९१३ इदं व्यक्ति-साधकं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२१९१४ इदं व्यक्ति-साधकम् आख्या-पत्र-मुखात् गृह्यते चेत् तत् वृत्तकोष्ठके लेख्यम् ।

१२१९१५ इदं व्यक्ति-साधकम् आख्या-पत्र-मुखस्य बहिर्भागात् गृह्यते चेत् तत् ऋजु-कोष्ठके लेख्यम् ।

१२१९१ **यदि एक से अधिक ग्रन्थकारों के नाम अभिन्न हों, तो उनकी अपनी अपनी जन्म-मृत्यु, अथवा दोनों में से किसी एक के संवत्सर से उनका भेद किया जाय ।**

१२१९११ **यदि १२१९१ धारा से व्यक्ति-साधन न होता हो तो व्यवसाय आदि व्यक्ति-साधक भाव को लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।**

१२१९१२ **वह व्यक्ति-साधक पद नाम से आगे लिखा जाय ।**

१२१९१३ **वह व्यक्ति-साधक पद पृथक् वाक्य माना जाय ।**

१२१९१४ **यदि वह व्यक्ति-साधक पद आख्या-पत्र-मुख से लिया जाय, तो वह वृत्त-कोष्ठक में लिखा जाय ।**

१२१९१५ **यदि वह व्यक्ति-साधक पद आख्या-पत्र-मुख के बाहर से लिया जाए, तो वह ऋजुकोष्ठक में लिखा जाय ।**

१२१६१५ वाग्भट. १म.
वाग्भट. २य.
फ्रान्सिस. सेन्ट (असीसी के).
फ्रान्सिस. सेन्ट (सेल्स के).

१२२ सहग्रन्थकार :
वरणमुपकल्पनं च

१२२ सह-ग्रन्थकार-नाम्नोः उभयं शीर्षकम् ।

१२२१ योजक-पदं यथास्थानम् ।

१२२ आख्या-पत्रे द्वयोः सह-ग्रन्थकारयोः नामनी विद्येते चेत् उभे अपि शीर्षकम् इति स्वीकार्ये ।

१२२१ योग्ये स्थाने उभयोः नाम्नोः योजक-पदं लेख्यम् ।

१२२ यदि आख्या-पत्र पर दो सह-ग्रन्थकारों के नाम दिए हुए हों, तो उन दोनों को शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२२१ योग्य स्थान में दोनों नामों का योजक-पद लिखा जाय ।

१२२१ लेखन-शैली के लिए द्रष्टव्य धारा ०३६७.

१२२२ नाम-पद-क्रमे १२१ धारोपधाराः प्रमाणम् ।

१२२२ प्रत्येकस्मिन् नाम्नि विद्यमानानां पदानां क्रमनिर्धारणे १२१ धारा तदीया उपधाराश्च प्रमाणत्वेन ग्राह्याः ।

१२२२ प्रत्येक नाम में विद्यमान पदों के क्रम-निर्धारण म १२१ धारा तथा उसकी उपधाराएं प्रमाण-रूप से मानी जायं ।

१२२२ उदाहरण

श्री निवासन (जी. ए.) तथा कृष्णमाचारी (सी.).

कुप्पु स्वामी शास्त्री (एस.) तथा चिन्तामणि (टी. आर.).
रंगनाथन (श्री. रा.) तथा नागर (मुरारि लाल).

१२२३ बहुषु प्रथमम् ।
१२२३१ 'आदि' परम् ।

१२२३ कस्यचित् पुस्तकस्य द्वयाधिकेषु सह-ग्रन्थकारेषु सत्सु तेषां प्रथमस्य नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।
१२२३१ 'आदि' इति ततः परम् योज्यम् ।

१२२३ यदि किसी ग्रन्थ के दो से अधिक सह-ग्रन्थकार हों, तो उनमें से प्रथम का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।
१२२३१ 'इदि.' यह उसके आगे लगाया जाय ।

१२२३१ यहां यह शंका हो सकती है कि यदि उपर्युक्त धारा में प्रथम के अतिरिक्त सभी सह-ग्रन्थकारों की उपेक्षा करने की व्यवस्था की गई है, तो क्यों न यही अभ्यास एक रूप से सर्वत्र मान लिया जाय। दूसरे शब्दों में यह पूछा जा सकता है कि जब कभी सह-ग्रन्थकारिता का विषय हो तो एक ही प्रकार का अभ्यास काम में लाया जाय अर्थात् जहां केवल दो ही ग्रन्थकार हों वहां भी केवल एक ही का नाम दिया जाय।

यहां पर 'दो' संख्या को विशेष उपचार दिया गया है और वही उपचार 'तीन' संख्या के लिये नहीं है । इसका कारण एकमात्र पाठकों का स्वभाव या अभ्यास है। उन्हीं की सुविधा के लिये यह व्यवस्था की गई है। अनुभव से यह सिद्ध है कि दो ग्रन्थकारों द्वारा प्रणीत कृतियों को पाठक दोनों ही ग्रन्थिकारों के नाम से उल्लेख किया करते हैं, जैसे 'रंगनाथन तथा नागर', 'वर्मा तथा वर्मा', और 'कपूर तथा टण्डन' इत्यादि। किन्तु जब ग्रन्थकारों के नाम दो से अधिक हो जाते हैं तब यह अभ्यास अथवा स्वभाव दृष्टिगोचर नहीं हो पाता। फिर भी यह प्रश्न तो उठ ही सकता है कि चाहे कितने भी ग्रन्थकार हों, जहां कहीं अवसर आए सबके नाम दिये जायं। इससे समरूपता तो सिद्ध हो सकेगी। इसका उत्तर यही है कि उस अवस्था में शीर्एक बहुत बड़ा हो जाता है और व्यर्थ ही पत्रक बुरी तरह भर जाता है। इसके अतिरिक्त यह विदित ही है कि पाठक बहुधा सब नामों का स्मरण भी नहीं रख पाते।

१२३ समष्टि-ग्रन्थकारः वरणमुपकल्पनं च

१२३ **समष्टि-कर्तृत्वे तन्नाम शीर्षकम् ।**

१२३० **तदुपकल्पने समष्टि-प्रकारः प्रमाणम् ।**

१२३०० **अधितन्त्रं, संस्था, सम्मेलनं चेति ।**

१२३०१ **देश-प्रदेश-स्थान-तद्भाग-शासकम् अधितन्त्रम् ।**

१२३०२ **पूर्वेतर-सततवर्ति-सम्मेलन-मेलनाधिक-धर्मा समष्टिः संस्था ।**

१२३०३ **पूर्वोक्त-समष्ट्यन्यतर-मात्र-सदस्य-मात्रेतर-सभ्यानां सम्मेलन-मेलन-मात्र धर्मः समवायः सम्मेलनम् ।**

१२३ पुस्तकस्य समष्टि-कर्तृत्वे सूचिते तस्याः समष्टेः नाम शीर्षकमिति स्वीकार्यम् ।

१२३० तस्य शीर्षकस्य उपकल्पने समष्टेः प्रकार-भेदः प्रमाणम् इति स्वीकार्यः ।

१२३०० तस्याः समष्टेः अधितन्त्रं, संस्था, सम्मेलनं चेति त्रयः प्रकाराः भवन्ति ।

१२३०१ देशस्य, प्रदेशस्य, स्थानस्य, तेषामन्यतमस्य भागस्य वा शासकम् अधितन्त्रम् इत्युच्यते ।

१२३०२० पूर्वस्याः इतरा, सततं वर्तिनी, सम्मेलनस्य मेलनात् अधिकं धर्मं धारयन्ती समष्टिः संस्था इति उच्यते ।

१२३०३ पूर्वोक्तयोः समष्ट्योः केवलमन्यतरस्याः समष्टेः

सदस्या एव केवलं यत्र न भवन्ति, यस्याः च सम्मेलन-मेलनमेव केवलमेको धर्मः भवति, स वा मुख्यो भवति, सा सभ्यानां समवाय-रूपा समष्टिः सम्मेलनम् इति उच्यते।

१२३ यदि पुस्तक समष्टि-कर्तृक है तो उस समष्टि का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२३० उस शीर्षक के उपकल्पन के लिए समष्टि का प्रकार प्रमाण-रूप से लिया जाय ।

१२३०० उस समष्टि के, अधितन्त्र, संस्था तथा सम्मेलन ये तीन प्रकार होते हैं ।

१२३०१ देश, प्रदेश, स्थान अथवा उनमें से किसी एक के भाग के शासक को अधितन्त्र कहते हैं ।

१२३०२ पूर्वोक्त से इतर, निरन्तर रहने वाली, सम्मेलन के मेलन से अधिक धर्म रखने वाली समष्टि संस्था कही जाती है ।

१२३०३ पूर्वोक्त दो प्रकार की समष्टियों में से एक-मात्र किसी एक के ही केवल सदस्य जिसमें नहीं होते, जिसका सम्मेलन बुलाना ही एक-मात्र धर्म होता है, अथवा वही प्रधान होता है ऐसे सभ्यों की मेलन-रूपी समष्टि सम्मेलन कही जाती है ।

१२३०३ "समष्टि-ग्रन्थकार":—इस परिभाषा के लक्षण के लिये अध्याय ०७ तथा लेखन शैली के लिये धारा ०३२, ०३२१, ०३६२, ०३६४, ०३७ तथा ०३७३ देखिये ।

१२२१ अधितन्त्रम्

उपकल्पनम्

१२३१ अखण्ड-अधितन्त्रे क्षेत्र-नाम शीर्षकम् ।

१२३१००१ तद् ग्रन्थालय-इष्ट-भाषायाम् ।

१२३१००२	खण्डमात्रे उपशीर्षकेण व्यक्ति-सिद्धिः ।
१२३१०१	सनाम-एकाधिक-क्षेत्र-अन्योन्य-समावेशन-श्रेणि-सत्त्वे, विस्तृततम-क्षेत्र-नाम
१२३१	धारानुसारम् ।
१२३१०१०	इतरेषां विस्तार-वर्णक-पदेन व्यक्तिसिद्धिः
१२३१०११	तद् वाक्यम् ।
१२३१०१२	तद् तथा-- प्रदेश-मण्डल-उपमण्डल-नगर-ग्राम-प्रभृति ।
१२३१०२	व्यक्ति-साधकं शीर्षकात् परम् ।
१२३१०२१	तद् वाक्यम् ।
१२३१०२२	तद् ऋजुकोष्ठके ।
१२३१०२३	अधितन्त्र-शास्य-स्वसमावेशक-स्वव्यक्ति-साधक-विस्तृततम-प्रदेश नाम तत् ।
१२३१०२४	शीर्षक नाम-ग्रन्थालय-मातृभूम्यङ्गत्वे तन्न ।
१२३१०२४०१	ग्रन्थालय-इष्टदेशाङ्गत्वे मातृभूमि-सनाम-प्रदेश-अभावेऽपि न ।
१२३१०२५	ऋजुकोष्ठकं स्थाननाम-१२३१०१ धारानुसारि-व्यक्ति-साधक-पदयोः अन्तराले ।
१२३१०२६	अतिरिक्त-व्यक्ति-साधकं ऋजुकोष्ठकात् परम् ।
१२३१	अखण्डे अधितन्त्रे ग्रन्थकारे सति शास्यस्य क्षेत्रस्य नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२३१००१ तत् नाम ग्रन्थालयस्य इष्ट-भाषायां लेख्यम् ।

१२३१००२ अधितन्त्रस्य खण्डमात्रे शासके ग्रन्थकारे सति उपशीर्षकस्य योगेन व्यक्ति-सिद्धिः कार्या ।

१२३१०१ एकाधिकानां क्षेत्राणां नाम्नः एकत्वे, अन्योन्यं च एकस्य अन्यस्मिन् समावेशनेन शृङ्खलात्मिकायां श्रेण्यां जायमानायां सत्यां, सर्वापेक्षया विस्तृततमे क्षेत्रे ग्रन्थकारे सति तन्नाम १२३१ धारया लेख्यम् ।

१२३१०१० अन्येषु क्षेत्रेषु ग्रन्थकारेषु सत्सु १२३१ धारोपलब्ध-शीर्षकाणां परं विस्तार-सूचकेन वर्णकेन पदेन व्यक्ति-सिद्धिः कार्या ।

१२३१०११ तत् पदं पृथक् वाक्यम् इति ज्ञेयम् ।

१२३१०२ एकाधिकानां प्रदेशानां नाम्नः एकत्वे, १२३१०१ धारायां च अप्राप्तायां प्राप्तायां वा व्यक्ति-सिद्धौ असमर्थायाम्, व्यक्तिसाधकं पदं तत्समूहो वा शीर्षकात् परं लेख्यम् ।

१२३१०२१ तत् पृथक् वाक्यम् ज्ञेयम् ।

१२३१०२२ तत् पृथक् वाक्यं ऋजुकोष्ठके लेख्यम् ।

१२३१०२३ तत् व्यक्ति-साधकं पदं कस्यचित् अधितन्त्रस्य अधिकार-क्षेत्र-स्वरूपं, स्वस्य प्रदेशस्य समावेशकं, स्वस्य प्रदेशस्य व्यक्ति-साधने समर्थं विस्तृततमस्य प्रदेशस्य नाम भवति ।

१२३१०२४ यस्य प्रदेशस्य नाम शीर्षकत्वेन अङ्गीक्रियते सः प्रदेशः ग्रन्थालयस्य मातृभूमेः अङ्गं चेत् व्यक्तिसाधकं पदं न लेख्यम् ।

१२३१०२४०१ यस्य प्रदेशस्य नाम शीर्षकत्वेन अङ्गीक्रियते सः

प्रदेशः ग्रन्थालयस्य इष्ट-देशाङ्गं चेत्, मातृभूमौ च तत् सदृशं नाम अविद्यमानं चेत् तदापि तत् व्यक्ति-साधकं पदं न लेख्यम् ।

१२३१०२५ ऋजुकोष्ठकं, स्थानस्य नाम्नः १२३१०१ धारानुसारेण लेखनीयस्य व्यक्ति-साधकस्य पदस्य च अन्तराले लेख्यम् ।

१२३१०२६ प्रदेशस्य नाम्नः अतिरिक्तं व्यक्ति-साधकम् आवश्यकं चेत् तत् ऋजुकोष्ठकात् परं लेख्यम् ।

१२३१ यदि अखण्ड अधितन्त्र ग्रन्थकार हो, तो (शासित किये जाने वाले) क्षेत्र का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२३१००१ वह नाम ग्रन्थालय की इष्ट भाषा में लिखा जाय ।

१२३१००२ यदि अधितन्त्र का खण्ड-मात्र शासक ग्रन्थकार हो तो उप-शीर्षक लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।

१२३१०१ यदि एक से अधिक क्षेत्रों का नाम अभिन्न हो, और परस्पर एक के अन्दर दूसरे का समावेश करने से शृंखलात्मक परम्परा बन जाती हो तो सबकी अपेक्षा विस्तृततम क्षेत्र का शीर्षक १२३१ धारा का अनुसरण कर लिखा जाय ।

१२३१०१० अन्य क्षेत्रों के लिए १२३१ धारा से प्राप्त शीर्षक के आगे विस्तार-सूचक वर्णक पद लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।

१२३१०११ उसे पृथक् वाक्य माना जाय ।

१२३१०१२ वह विस्तार-सूचक वर्णक पद निम्नलिखित प्रकार का होता है :—प्रदेश, मण्डल, उपमण्डल, नगर, ग्राम इत्यादि ।

१२३१०२ यदि एक से अधिक प्रदेशों के नाम अभिन्न हों और १२३१०१ धारा लागू न हो, अथवा लागू हो तब भी व्यक्ति-साधन में समर्थ न हो, तो व्यक्ति-साधक पद शीर्षक के पश्चात् लिखा जाय ।

१२३१०२१ उसे पृथक् वाक्य माना जाय ।

१२३१०२२ वह पृथक् वाक्य ऋजुकोष्ठक म लिखा जाय ।

१२३१०२३ वह व्यक्ति-साधक पद ऐसा हो जो किसी अधितन्त्र के द्वारा शासित किया जाता हो, उस प्रदेश को अपने में समाविष्ट किए हुए हो, उस प्रदेश के व्यक्ति-साधन में समर्थ हो तथा सबसे अधिक विस्तृत प्रदेश का नाम हो ।

१२३१०२४ जिस प्रदेश का नाम शीर्षक के रूप में स्वीकृत किया जाय वह प्रदेश यदि ग्रन्थालय की मातृभूमि का अंग हो, तो वह व्यक्ति-साधक पद न लिखा जाय ।

१२३१०२४०१ जिस प्रदेश का नाम शीर्षक के रूप में अंगीकृत किया जाय वह प्रदेश ग्रन्थालय के इष्ट-देश का अंग हो और मातृ-भूमि में उसके सदृश नाम विद्यमान न हो तो उस दशा में उस व्यक्ति-साधक पद को न लिखा जाय ।

१२३१०२५ ऋजु-कोष्ठक, स्थान के नाम और १२३१०१ धारा के अनुसार लिखे जाने वाले व्यक्ति-साधक-पद के मध्य भाग में लिखा जाय ।

१२३१०२६ यदि प्रदश के नाम के लिए और अधिक व्यक्ति-साधक पद की आवश्यकता हो तो वह ऋजु-कोष्ठक के पश्चात् लिखा जाय ।

१२३१०२६ उदाहरण

मद्रास.

यदि मद्रास अधितंत्र समष्टि ग्रन्थकार हो ।

मद्रास. नगर.

यदि मद्रास नगर का निगम (कारपोरेशन) समष्टि ग्रन्थकार हो ।

तांजोर.

यदि ताँजोर मंडल का मंडल-गण समष्टि ग्रन्थकार हो ।

तांजोर. तालुक.

यदि तांजोर तालुक का तालुक-गण समष्टि ग्रन्थकार हो ।

तांजोर. नगर.

यदि तांजोर नगर की नगरपालिका समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो ।

सत्तनूर. [कुम्भकोणम्].

यदि कुम्भकोणम् तालुक के अन्तर्गत सत्तनूर ग्राम की पंचायत समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो।

सत्तनूर. [तांजोर].

यदि तांजोर तालुक के अन्तर्गत सत्तनूर ग्राम की पंचायत समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो।

एक ही नाम के उपर्युक्त दोनों ग्राम तंजोर मंडल में ही हैं। यहां पर सर्वा-पेक्षया विस्तृत प्रदेश, जोकि उन्हें अपने में समाविष्ट किए हुए हैं तथा उनके व्यवितसाधन में समर्थ हैं, वे उनके अपने अपने तालुक हैं उन्हें कोष्ठक में दिखाया गया है।

तिरुवलन्गडु. [चिंगलपट].

यदि चिंगलपट मंडल के अन्तर्गत निरुवलन्गडु ग्राम की ग्राम पंचायत समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो ।

तिरुवालन्गडु. [तांजोर].

यदि तांजोर मंडल के अन्तर्गत तिरुवालन्गडु ग्राम की पंचायत समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो।

एक ही नाम के उपर्युक्त दोनों ग्राम एक ही प्रांत मद्रास में हैं। यहां पर सर्वापेक्षया विस्तृत प्रदेश, जो कि उन्हें अपने में समाविष्ट किए हुए हैं तथा उनके व्यक्ति-साधन में समर्थ हैं, वे उनके अपने अपने तालुक हैं, उन्हें कोष्ठक में दिखाया गया है।

सेलम. [मसाचूसेट्स].

सेलम. [न्यू जर्ज़ी].

सेलम. [ओहीयो],

सेलम. [आरेगन].

सेलम. [वरजीनिया].

यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रातिस्विक राज्यों के सेलम उपनगर के स्थानीय अधिकारी समष्टि ग्रन्थकार हों ।

सेलम.

यदि भारत को मातृभूमि मान लेने की अवस्था में भारत स्थित सेलम मण्डल का मण्डल-गण समष्टि ग्रन्थकार हो ।

सेलम. तालुक.

यदि भारत के सेलम तालुक का तालुक-गण समष्टि ग्रन्थकार हो ।

सेलम. नगर.

यदि भारत के सेलम नगर की नगरपालिका समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो ।

केम्ब्रिज.

यदि ग्रेट ब्रिटेन को इष्ट देश मान लेने की अवस्था में ग्रेट ब्रिटेन-स्थित केम्ब्रिजशायर की काउन्टी कौन्सिल समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो ।

केम्ब्रिज. बरो.

यदि ग्रेट ब्रिटेन के केम्ब्रिज बरो की बरो-नगरपालिका समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो ।

केम्ब्रिज. [मसाचुसेट्स].

यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के मसाचुसेट्स राज्य के अन्तर्गत केम्ब्रिज नगर के स्थानीय अधिकारी समष्टि ग्रन्थकार हों ।

केम्ब्रिज. [ओहीयो].

यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के ओहीयो राज्य के अन्तर्गत केम्ब्रिज उपनगर के स्थानीय अधिकारी समष्टि ग्रन्थकार हों ।

केम्ब्रिज. [मेरीलेण्ड].

यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के मेरीलेण्ड राज्य के अन्तर्गत केम्ब्रिज उपनगर के स्थानीय अधिकारी समष्टि ग्रन्थकार हों ।

१२३१०८ उपसमष्ट्यां यथोचितधारानुसारम्

१२३१०८ अखण्डे अधितन्त्रे ग्रन्थकारे असति, तस्य केवलम् उपसमष्ट्यां च ग्रन्थकर्त्र्यां सत्यां, अधोनिर्दिष्टाः तदनुरूपाः च अन्याः धाराः अनुसृत्य उपशीर्षकाणि योज्यानि ।

१२३१०८ **यदि अखण्ड अधितन्त्र ग्रन्थकार न हो और अधितन्त्र की कोई उपसमष्टि ही ग्रंथकर्त्री हो, तो निम्नलिखित तथा उनके अनुरूप अन्य धाराओं का अनुसरण कर उपशीर्षक लगाये जायं ।**

उपशीर्षकाणि

१२३११ पतिः

१२३११	**पत्यौ 'पतिः' इति प्रथमोपशीर्षकम्।**
१२३११०१	**तत्समं वा।**
१२३११०२	**तत्पद-धारक-नाम द्वितीयोपशीर्षकम्।**
१२३११०२१	**तत् १२१ धारोपधारानुसारम्।**
१२३११०२२	**वर्णक-पदं वर्ज्यम्।**
१२३११०३	**आवश्यकत्वे व्यक्ति-साधकम्।**
१२३११०३१	**तत् कार्य-कालः।**
१२३११०३२	**अङ्क-लिखित-आद्यन्त-वर्षे।**

१२३११	कस्यचित् राष्ट्रस्य, राज्यस्य, जनपदस्य, नगरस्य वा पत्यौ ग्रन्थकारे 'पतिः' इति पदं प्रथमम् उपशीर्षकम् इति लेख्यम्।
१२३११०१	सम्बद्ध-अधितन्त्रस्य भेदानुसारं 'पति' समम् अन्यत् पदं वा लेख्यम्।
१२३११०२	यः तस्य पदस्य धारकः स्यात् तस्य नाम द्वितीयमुपशीर्षकम् इति लेख्यम्।
१२३११०२१	तत् नाम १२१ धारां तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम्।
१२३११०२२	वर्णक-पदं यदि चेत् तत् न लेख्यम्।
१२३११०३	आवश्यकं चेत् व्यक्ति-साधक-पदं लेख्यम्।
१२३११०३१	तत् पदधारकस्य कार्य-कालः भवति।
१२३११०३२	तस्य कार्यकालस्य केवलम् आदेः अन्तस्य च वर्षे समावेशाङ्कनेन लेख्ये।

१२३११ यदि किसी राष्ट्र अथवा राज्य, जनपद अथवा नगर का पति ग्रन्थकार हो, तो 'पति' यह पद प्रथम उपशीर्षक के रूप में लिखा जाय ।

१२३११०१ सम्बद्ध अधितन्त्र के भेद के अनुसार 'पति' का अन्य पर्याय शब्द लिखा जाय ।

१२३११०२ जो उस पद का धारण करने वाला हो उसका नाम द्वितीय उपशीर्षक के रूप में लिखा जाय ।

१२३११०२१ वह नाम १२१ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण करके लिखा जाय ।

१२३११०२२ यदि कोई वर्णक पद हो तो उसका लोप कर दिया जाय ।

१२३११०३ यदि आवश्यकता हो तो व्यक्ति-साधक भी लिखा जाय ।

१२३११०३१ वह (व्यक्ति-साधक) पदधारण करने वाले का कार्य-काल होता है ।

१२३११०३२ उस कार्यकाल के केवल आदि और अन्त वर्ष समावेशांकन में लिखे जायं ।

१२३११०३२ उदाहरण

ग्रेट ब्रिटेन. सम्राट. जार्ज ५म.

भारत. वायसराय तथा गवर्नर जनरल हार्डिंज. (बेरन). १९१०-१५.

मैसूर. महाराजा. कृष्णराज वोडेमर.

मद्रास. गवर्नर. पेन्टलेण्ड (बेरन).

मद्रास. नगर. मेयर. मुथिय चेट्टि (एम. ए.).

मद्रास. नगर. मेयर. सत्यमूर्ति (एस्). १९३९-४०.

संयुक्त राज्य. प्रेसिडेण्ट. विलसन (वुडरो).

भारत. राष्ट्रपति. राजेन्द्रप्रसाद.

उत्तर प्रदेश. राज्यपाल. मोदी (होमी).

जापान. सम्राट्. हिरोहितो.

यहां यह स्मरण रखने योग्य है कि इस प्रकार के समष्टि शीर्षक का उपयोग अधितन्त्र-पति से उद्भूत होने वाले राज-सन्देश, घोषणा, आज्ञापत्र, विधि आदि सरकारी प्रकाशनों के लिए ही किया जाना चाहिए। राजा, राष्ट्रपति आदि के द्वारा वैयक्तिक रूप में प्रणीत कृतियों के लिए उपर्युक्त प्रकार के शीर्षक का उपयोग नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, प्रेसिडेन्ट विलसन ने २ एप्रिल, १९१७ को सीनेट तथा हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स के संयुक्त अधिवेशन में जो वार मेसेज (युद्ध-संदेश) पढ़ा था, उसका शीर्षक होगा—

संयुक्त राज्य. प्रेसिडेण्ट. विलसन (वुडरो).

किन्तु वुडरो विलसन द्वारा लिखित जार्ज वाशिंगटन नामक पुस्तक के लिए शीर्षक होगा,

विलसन (वुडरो).

अध्याय ०७ में दिया हुआ "समष्टि ग्रन्थकार" इसकी परिभाषा तथा ग्रन्थालय सूची सिद्धांत (*Theory of library catalogue*) का अध्याय ५४ द्रष्टव्य है।

१२३१२ मन्त्रि-मण्डलम्

१२३१२ मन्त्रि-मण्डले तन्नाम उपशीर्षकम्।

१२३१२ मन्त्रि-मण्डले ग्रन्थकारे सति तस्य नाम उपशीर्षकत्वेन ग्राह्यम्।

१२३१२ यदि मन्त्रि-मण्डल ग्रन्थकार हो, तो उसका नाम उपशीर्षक के रूप में लिखा जाय।

१२३१२ उदाहरण

भारत. मन्त्रिमण्डल.

ग्रेट ब्रिटेन. मन्त्रिमण्डल.

मद्रास. मन्त्रिपरिषद्.

हैदराबाद. कार्यकारिणी परिषद्.

संयुक्त राज्य. मन्त्रिमण्डल.

मैसूर. परिषद्.
फ्रांस. मिनिस्ट्री.
नार्वे. कौंसिल ऑफ स्टेट.
रूस. यूनियन कौन्सिल ऑफ पीपुल्स कमिसरीज.
चीन. ऐग्जेक्युटिव युआन.

१२३१३ धारा-सभा

१२३१३ **धारा-सभायां तन्नाम उपशीर्षकम् ।**

१२३१३ धारा-सभायां ग्रन्थकर्त्र्यां तस्याः धारा-सभायाः नाम उपशीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२३१३ **यदि धारा-सभा ग्रन्थकर्त्री हो, तो उस धारा-सभा का नाम उपशीर्षक के रूप में लिखा जाय ।**

१२३१३ उदाहरण

भारत. संसद.
भारत. विधान सभा.
भारत. धारा सभा.
ग्रेट ब्रिटेन. पार्लियामेंन्ट.
ग्रेट ब्रिटेन. हाउस ऑफ कामन्स.
ग्रेट ब्रिटेन. हाउस ऑफ लॉर्ड्स.
मद्रास. धारा सभा.
मैसूर. प्रतिनिधि सभा.
मैसूर. धारा परिषद्.
मद्रास. नगर. परिषद्.
तांजोर. मण्डल गण
तांजोर. तालुक. तालुक गण.
तांजोर. नगर. नगर पालिका.
संयुक्त राज्य. कांग्रेस.

संयुक्त राज्य. प्रतिनिधि सभा.
संयुक्त राज्य. सीनेट.
मिसूरी. लोक सभा.
फ्रान्स. चेम्बर ऑफ डिप्यूटीज.
फ्रान्स. सीनेट.
जापान. इम्पीरियल डायट.
जापान. प्रतिनिधि सभा.
जापान. हाउस ऑफ पीयर्स.
नार्वे. स्टोर्टिंग.

१२३१४ विभागः

१२३१४	**शासन-विभागे तन्नाम-उपशीर्षकम् ।**
१२३१४०१	**तदुपभागे वा ।**
१२३१४०२	**सनामके तस्मिन् १२३१४३-१२३१५ धारे प्रमाणम् ।**
१२३१४१	**विशिष्ट-नाम-अभावे तदधिकारि-पदनाम**
१२३१४२	**कार्य-क्षेत्र-सूचक-पदं पूर्वम् ।**
१२३१४२१	**शेषं परम् ।**

१२३१४	शासनस्य विभागे ग्रन्थकारे सति तस्य विशिष्टस्य विभागस्य नाम उपशीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।
१२३१४०१	शासन-विभागस्य उपभागे ग्रन्थकारे सति तस्य विशिष्टस्य उपभागस्य नाम शीर्षकत्वेन ग्राह्यम् ।
१२३१४०२	तस्मिन् उपभागस्य नाम्नि उपभागान्तरस्य नाम्नः अभिन्ने सति १२३१४३-१२३१५ धारे प्रमाणम् इति स्वीकार्ये ।
१२३१४१	यदि तस्य विशिष्ट-उपभागस्य विशिष्टं नाम न

उपलभ्यते चेत् तस्यः अधिकारिणः पदं तस्य नाम-रूपेण लेख्यम् ।

१२३१४२ तस्य उपभोगस्य कार्य-क्षेत्रस्य नाम उपशीर्षके पूर्वम् लेख्यम् ।

१२३१४२१ अन्यानि पदानि ततः परं लेख्यानि ।

१२३१४ यदि शासन का कोई विभाग ग्रन्थकार हो, तो उस विभाग का नाम उपशीर्षक के रूप में लिखा जाय ।

१२३१४०१ यदि शासन के विभाग का कोई उपभाग ग्रन्थकार हो, तो उस उपभाग का नाम उपशीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२३१४०२ यदि उस उपभाग का नाम दूसरे उपभाग के नाम से अभिन्न हो, तो १२३१४३ से १२३१५ तक की धाराओं का अनुसरण किया जाय ।

१२३१४१ यदि उस विशिष्ट उपभाग का कोई विशिष्ट नाम न हो तो उस उपभाग के अधिकारी के पद का नाम उस उपधारा के नाम के रूप में लिखा जाय ।

१२३१४२ उस उपभाग के कार्यक्षेत्र का नाम उपशीर्षक में पहले लिखा जाय ।

१२३१४२१ और सब पद उसके पश्चात् लिखे जायं ।

१२३१४२१ पूर्वोक्त प्रकार के शीर्षक की लेखन-शैली के लिए ०३५११, ०३५२ तथा ०३५४ धाराएं द्रष्टव्य हैं ।

१२३१४३ एक-विभाग-एकाधिक उपभाग-सनामत्वे अधोनिर्दिष्ट-अन्यतमयोगेन व्यक्ति-साधनम् ।

१२३१४३० यथा—

१ क्षेत्रम्;
२ धर्मः;
३ केन्द्रम्;

४ अन्यद्वा ।

१२३१४३०१ पृथक् वाक्यम् ।

१२३१४३ कस्यचन एकस्य एव विभागस्य एकाधिकानाम् उपभागानाम् नाम्नाम् अभिन्नत्वे सति अधोनिर्दिष्टानाम् अन्यतमस्य योगेन व्यक्ति-साधनम् कार्यम् ।

१२३१४३० नाम्नः व्यक्ति-साधकानि इमानि भवन्ति ।

१ उपभाजने प्रादेशिकम् आधारम् अवलम्ब्य निर्मिते, उपभागस्य अधिकारक्षेत्रे विद्यमानः प्रदेशः प्रथमं व्यक्ति-साधकम् ।

२ उपभाजने धर्मस्य आधारम् अवलम्ब्य निर्मिते, उपभागस्य प्रधानः धर्मः द्वितीयं व्यक्ति-साधकम् ।

३ उपभागाः सामान्यतः सुविधया वा केन्द्र-नाम्ना व्यक्ति-सिद्धाः भवन्ति चेत् उपभागस्य केन्द्र-नाम तृतीयं व्यक्ति-साधकम् ।

४ उपर्युक्तानामभावे युक्तमावश्यकं समर्थं चान्यद्वा पदं पदसमूहो वा ।

१२३१४३०१ तत् व्यक्ति-साधकं पदं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२३१४३ यदि किसी एक ही विभाग के एक से अधिक उपभागों के नाम एक से हों, तो नीचे दिए हुए भावों में से किसी एक भाव को लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।

१२३१४३० नाम के व्यक्ति-साधक निम्नलिखित हैं:–

१ यदि उपभाजन प्रादेशिक आधार को मानकर किया गया हो, तो उपभाग के अधिकार-क्षेत्र में आने वाला प्रदेश प्रथम व्यक्ति-साधक होता है ।

२ यदि उपभाजन धर्म (अधिकार) के आधार पर किया गया हो, तो उपभाग का धर्म द्वितीय व्यक्ति-साधक होता है ।

(३) यदि उपभाग सामान्यतः अथवा अधिक सुविधापूर्ण रीति से केन्द्र के नाम के द्वारा व्यक्ति-सिद्ध होते हों, तो उपभाग का केन्द्र-नाम तृतीय व्यक्ति-साधक होता है।

(४) यदि उपर्युक्त कोई प्रकार उपलब्ध न हो, तो योग्य, आवश्यक तथा समर्थ कोई पद अथवा पदसमूह चतुर्थ व्यक्ति-साधक होता है।

१२३१४३०१ उस व्यक्ति-साधक पद को पृथक् वाक्य माना जाय।

१२३१५ विभागान्तर-उपभाग-सनामक-विभाग-उपभागे ग्रन्थकारे विभाग-परिभाग-उपभाग-परम्परा-स्वनिकटतम-१२३१४ धारानुमत-समष्टि नाम प्रथमोपशीर्षकम्।

१२३१५० तत्परम्परा-अन्तर्वर्ति-अतिरिक्त-आवश्यक-भाग-नाम उपशीर्षकान्तरम्।

१२३१५०१ यावत् ग्रन्थकार-नाम-प्राप्तिः।

१२३१५१ उपशीर्षक-पदानि १२३१४-१२३१४१ धारानुरूपम्।

१२३१५ अन्यस्य विभागस्य उपभागेन सह समाननामके कस्मिंश्चित् विभागस्य उपभागे ग्रन्थकारे सति, विभागः, तस्य परिभागः, तस्य उपभागः, इति परम्परायां विद्यमानायां स्वस्मात् ग्रन्थकार-नाम्नः निकटतमायाः १२३१४ धारया अनुमतायाः च समष्टेः नाम प्रथमम् उपशीर्षकम् इति स्वीकार्यम्।

१२३१५० तस्यां परम्परायां, प्रथमोपशीर्षकात् अनुपदं विद्यमानायाः समष्टेः नाम द्वितीयोपशीर्षकम्, तदनु

विद्यमानायाः समष्टेः नाम तृतीयोपशीर्षकम् इति क्रमशः अन्यानि उपशीर्षकाणि लेख्यानि ।

१२३१५०१ यावत् ग्रन्थकारस्य नाम्नः प्राप्तिः न भवति तावत् निरन्तरम् एवम् एव उपशीर्षकाणि लेख्यानि ।

१२३१५१ उपशीर्षकत्वेन लेख्यानां पदानां निर्धारणं लेखनं च १२३१४-१२३१४१ धारे अनुसृत्य कार्यम् ।

१२३१५ यदि किसी दूसरे विभाग के साथ समान नाम रखनेवाले किसी विभाग का उपभाग ग्रन्थकार हो तो विभाग, उसका परिभाग, तथा उसका उपभाग इस प्रकार की परम्परा में आने वाली, अपने से अर्थात् ग्रन्थकार से निकटतम रहने वाली, तथा १२३१४ धारा से अनुमत समष्टि का नाम प्रथम उपशीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२३१५० उस परम्परा में प्रथम उपशीर्षक के पश्चात् आने वाली समष्टि का नाम द्वितीय उपशीर्षक के रूप में लिया जाय। उसके अनन्तर आने वाली समष्टि का नाम तृतीय उपशीर्षक के रूप में लिया जाय। इस प्रकार क्रमशः अन्य उपशीर्षक लिखे जायं ।

१२३१५०१ जब तक ग्रन्थकार के नाम की प्राप्ति न हो, तब तक निरन्तर इसी प्रकार उपशीर्षक लिखते जाना चाहिए।

१२३१५१ उपशीर्षक के रूप में लिखे जाने वाले पदों का निर्धारण तथा लेखन १२३१४-१२३१४१ धाराओं को अनुरूप मानकर किया जाय ।

१२३१५१ <u>उदाहरण</u>

मद्रास. शिक्षा (सर्वजन––विभाग).

संयुक्त राज्य. एजुकेशन (ब्यूरो ऑफ––).

मद्रास. शैक्षणिक (मण्डल––अधिकारी).

मद्रास. शिक्षण (सर्वजन-उपनिर्देशक). प्रारम्भिक शिक्षा.

मद्रास. बालिका विद्यालय (––निर्देशिका). प्रथम खण्ड.

ग्रेट ब्रिटेन. स्कॉटिश-शिक्षण (—विभाग).
मंचूरिया. अर्थ (—विभाग). समान्य कार्य-भार (—ब्यूरो).
मंचूरिया. उद्योग (—विभाग). सामान्य कार्य-भार (—ब्यूरो).

१२३१६ न्यायालयः

१२३१६ न्यायालये तन्नाम उपशीर्षकम् ।

१२३१६ न्यायालयः ग्रन्थकारः चेत् तस्य न्यायालयस्य नाम उपशीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२३१६ यदि न्यायालय ग्रन्थकार हो, तो उस न्यायालय का नाम उप-शीर्षक के रूप में लिया जाय।

१२३१६ उदाहरण

भारत. सर्वोच्च न्यायालय.
मद्रास. उच्च न्यायालय.
संयुक्त राज्य. सर्वोच्च न्यायालय.
संयुक्त राज्य. कोर्ट ऑफ कस्टम्स अपील्स.
संयुक्त राज्य. कोर्ट ऑफ क्लेम्स.
मसाचुसेट्स. सुप्रीम जुडिशल कोर्ट.
ग्रेट ब्रिटेन. सेन्ट्रल क्रिमिनल कोर्ट.
ग्रेट ब्रिटेन. कोर्ट ऑफ अपील.
जापान. कोर्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव लिटिगेशन.

१२३१६०२ एकाधिक-न्यायालय-सनामत्वे अधो-निर्दिष्ट-अन्यतम-वाचकपद-योगेन-व्यक्ति-साधनम् ।

१२३१६०२० यथा—

१ न्याय-अधिकार-क्षेत्रम् ;†

२ न्यायालय-केन्द्रम् ;†

३ युक्तं समर्थं चान्यद् वा ।

१२३१६०२०१ पृथक् वाक्यम् ।

१२३१६०२ एकाधिकयोः न्यायालययोः समान-नामत्वे अधोनिर्दिष्टेषु अन्यतमस्य वाचकं पदं योजयित्वा-व्यक्ति-साधनं कार्यम् ।

१२३१६०२० अधोनिर्दिष्टानां वाचकानि पदानि व्यक्ति-साधकानि भवन्ति ।

१ न्यायालयस्य प्रातिस्विकम् अधिकारस्य क्षेत्रं प्रथमः प्रकारः भवति ।

२ प्रथम-प्रकारस्य अभावे, न्यायालयस्य प्रातिस्विकम् केन्द्रं द्वितीयः प्रकारः भवति ।

३ पूर्वोक्तोभय-प्रकार-अभावे युक्तं समर्थं चान्यद् वा किमपि व्यक्ति-साधकं तृतीयः प्रकारः भवति ।

१२३१६०२०१ तत् व्यक्ति-साधकं पदं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२३१६०२ यदि एक से अधिक न्यायालयों का एक ही नाम हो, तो निम्नलिखितों में से व्यक्त करने वाले किसी एक पद को लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।

१२३१६०२० निम्नलिखित पद व्यक्ति-साधक होते हैं :–

१ न्यायालयों का अधिकार स्व-क्षेत्र प्रथम प्रकार होता है ।

२ प्रथम प्रकार का अभाव हो तो न्यायालय का स्व-केन्द्र द्वितीय प्रकार होता है ।

३ उपर्युक्त दोनों प्रकारों का अभाव हो तो योग्य तथा समर्थ अन्य व्यक्ति-साधक तृतीय प्रकार होता है ।

१२३१६०२०१ वह व्यक्ति-साधक पद पृथक् वाक्य माना जाय ।

१२३१६०२०१ **उदाहरण**

मद्रास. मण्डल न्यायालय. कोयम्बतूर.

मद्रास. मण्डल न्यायालय. सेलम.
मद्रास. मण्डलाधीश न्यायालय. सेलम.
मद्रास. मण्डल मुन्सिफ न्यायालय. सेलम. तालुक.
मद्रास. ऑनरेरी मजिस्ट्रेट्स न्यायालय. सेलम. उपनगर.
मद्रास. ऑनरेरी मजिस्ट्रेट्स न्यायालय. कुम्भकोणम्.
संयुक्त राज्य. सर्किट कोर्ट ऑफ अपील्स. तृतीय सर्किट.
संयुक्त राज्य. मण्डल न्यायालय. अलास्का.
ग्रेट ब्रिटेन. काउन्टी कोर्ट. यार्कशायर.

१२३१६१ न्यायालय-परिभाग-विभागे तन्नाम द्वितीयोपशीर्षकम् ।

१२३१६१० तत् १२३१४-१२३१५ धारानुरूपम् ।

१२३१६२ न्यायालय-परिभाग-विभाग-उपभागे तृतीयोपशीर्षकम् ।

१२३१६२० तत् १२३१६१ धारानुरूपम् ।

१२३१६३ एवमन्यत् ।

१२३१६१ न्यायालयस्य परिभागे विभागे वा ग्रन्थकारे सति तस्य परिभागस्य विभागस्य वा नाम द्वितीयोपशीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२३१६१० तत् उपशीर्षकम् १२३१४-१२३१५ धारे अनुसृत्य लेख्यम् ।

१२३१६२ न्यायालयस्य परिभागस्य विभागस्य वा उपविभागे ग्रन्थकारे सति तृतीयम् उपशीर्षकम् लेख्यम् ।

१२३१६२० तत् उपशीर्षकम् १२३१६१ धाराम् अनुसृत्य लेख्यम् ।

१२३१६३ अधिकोपभागेषु सत्सु, एवमेव उपशीर्षक-योगेन व्यक्ति-साधन कार्यम्

१२३१६१ यदि किसी न्यायालय का परिभाग अथवा विभाग ग्रन्थकार हो, तो उस परिभाग अथवा विभाग का नाम द्वितीय उपशीर्षक के रूप में लिया जाय।

१२३१६१० वह उपशीर्षक १२३१४ तथा १२३१५ धाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय।

१२३१६२ यदि न्यायालय के परिभाग अथवा विभाग का उपभाग ग्रन्थकार हो, तो तृतीय उपशीर्षक लिखा जाय।

१२३१६२० वह उपशीर्षक १२३१६१ धारा का अनुसरण कर लिखा जाय।

१२३१६३ यदि अधिक उपभाग हों, तो इसी प्रकार उपशीर्षकों को लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय।

१२३१६३ उदाहरण

ग्रेट ब्रिटेन. हाई कोर्ट आफ जस्टिस. किंग्स बेंच डिविज़न.

ग्रेट ब्रिटेन. हाउस ऑफ लार्ड्स. जुडिशल कमेटी.

ग्रेट ब्रिटेन. प्रिवी कौउन्सिल. जुडिशल कमेटी.

अन्य उपसमष्टियां--

उदाहरण

ग्रेट ब्रिटेन. इम्पीरियल वार कान्फरेन्स. (२). लंदन. १९१८.

भारत. इण्डियन सेण्ट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी. १९२९.

मद्रास. कलेक्टर्स कान्फरेन्स. उटकमन्ड. १९१८.

मद्रास. लेजिस्लेटिव कौन्सिल. सेलेक्ट कमेटी आन पब्लिक लायब्रेरीज़् बिल.

मद्रास. इन्स्ट्रक्शन (डिपार्टमेन्ट ऑफ पब्लिक--). कान्फ्रेन्स ऑफ एजुकेशनल ऑफिसर्स. मद्रास १९२९.

१२३२ संस्था

१२३२ अखण्ड-संस्थायां तन्नाम शीर्षकम्।

१२३२००१ संक्षिप्ततमम्।

१२३२००२ मान-फल्गु-पद-लोपः।

१२३२००३ ग्रन्थालय-इष्ट भाषिकम् ।

१२३२००४ उप-इष्टभाषिकं वा ।

१२३२ अखण्डायां संस्थायां ग्रन्थकर्त्र्यां सत्यां तस्याः संस्थायाः नाम शीर्षकमिति स्वीकार्यम् ।

१२३२००१ तत् आख्यापत्र-मुखस्य, उपाख्यापत्रमुखस्य, ग्रन्थ भागान्तरस्या वा अन्यतमे स्थाने वर्तमानं संक्षिप्त-तमं रूपं स्वीकार्यम् ।

१२३२००२ आदौ अन्ते वा स्थितानि , मानसूचकानि, फल्गूनि च पदानि न लेख्यानि ।

१२३२००३ तस्मिन् ग्रन्थकार-नाम्नि नाना भाषासु विद्यमाने ग्रन्थालयस्य इष्टभाषायां विद्यमानं नाम स्वी-कार्यम् ।

१२३२००४ ग्रन्थालयस्य इष्टभाषायां नाम न विद्यते चेत् ग्रन्थालयस्य गौणायाम् इष्टभाषायां विद्यमानं नाम स्वीकार्यम् ।

१२३२ यदि अखण्ड संस्था ग्रन्थकर्त्री हो, तो उस संस्था का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२३२००१ वह आख्या-पत्रमुख के, उपाख्या-पत्र-मुख के अथवा ग्रन्थ के अन्य भागों में किसी एक स्थान से सबसे संक्षिप्त रूप में लिया जाय ।

१२३२००२ आदि अथवा अन्त में विद्यमान मानसूचक तथा असार पद लुप्त कर दिए जायं ।

१२३२००३ यदि वह ग्रन्थकार का नाम विविध भाषाओं में हो, तो ग्रन्थालय की इष्ट भाषा वाला नाम लिया जाय ।

१२३२००४ यदि नाम ग्रन्थालय की इष्ट भाषा में विद्यमान न हो तो ग्रन्थालय की द्वितीय (गौण) इष्ट भाषा में विद्यमान नाम लिया जाय ।

१२३२००४ उदाहरण

अन्तःराष्ट्रीय श्रम संघ.
संयुक्त राष्ट्र संघ.
भारतीय ग्रन्थालय संघ.
भारतीय गणिणीय परिषद्.
मद्रास महाजन सभा.
एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल.
दक्षिण भारतीय अध्यापक संघ.
केम्ब्रिज फिलॉसाफ़िकल सोसायटी.
रॉयल सोसायटी ऑफ लण्डन.
माउन्ट विलसन ऑब्जरवेटरी.
तांजोर कोऑपरेटिव बैंक.
मित्र खोज फंड.
कार्निजी इन्स्टीटयूशन ऑफ वाशिंगटन.
मद्रास विश्वविद्यालय.
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय.
देहली कॉलिज.
रामानुजन स्मारक समिति.

१२३२०१ अविशेषे अधःस्थ-अन्यतम-योगेन व्यक्ति-साधनम् ।

१२३२०१०१ यथा—

१ स्थान-विशेष-अधिष्ठित-संस्थाया : स्थानस्य नाम; †
२ राष्ट्रिय-समष्टे : सम्बद्ध-देशस्य नाम ; †
३ प्रादेशिक-प्रभृतिकाया : प्रदेशादेः वा;
४ अभावे केन्द्रस्य ।

१२३२०१०२ पृथक् वाक्यम्

१२३२०१ संस्थायाः नाम अविशेषम्, अर्थात् व्यक्ति-साधने असमर्थं चेत्, अधोनिर्दिष्टानाम् अन्यतमस्य योगेन व्यक्ति-साधनं कार्यम् ।

१२३२०१०१ अधोनिर्दिष्टानि व्यक्ति-साधकानि भवन्ति ।

१ संस्थायां स्थान-विशेष-सम्बन्धिन्यां तस्याः स्थानस्य नाम प्रथमः प्रकारः ।

२ संस्थायां राष्ट्रियायां सम्बद्ध-देशस्य नाम द्वितीयः प्रकारः ।

३ संस्थायां प्रादेशिक-प्रभृतिकायां प्रदेशस्य, मण्डलस्य, उपमण्डलस्य, तत्सदृशस्य च अन्यस्य वा नाम तृतीयः प्रकारः ।

४ उपर्युक्त-प्रकार-त्रयेण व्यक्ति-साधने असति तस्याः केन्द्रस्य नाम चतुर्थः प्रकारः ।

१२३२०१०४ प्रत्येकं पृथक् वाक्यम् ज्ञेयम् ।

१२३२०१ यदि संस्था का नाम अविशेष हो अर्थात् व्यक्ति-साधन में असमर्थ हो, तो नीचे दिए हुए भावों में से किसी एक भाव को लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।

१२३२०१०१ व्यक्ति-साधक निम्नलिखित हैं :–

१ यदि संस्था स्थान-विशेष से सम्बन्ध रखती हो, तो उस स्थान का नाम प्रथम प्रकार होता है ।

२ यदि संस्था राष्ट्रीय हो, तो सम्बद्ध देश का नाम द्वितीय प्रकार होता है ।

३ यदि संस्था प्रादेशिक आदि हो, तो प्रदेश, मण्डल, अथवा उपमण्डल अथवा उसके सदृश अन्य का नाम तृतीय प्रकार होता है ।

४ उपर्युक्त तीनों प्रकारों में से किसी एक से भी व्यक्ति-साधन न हो रहा हो, तो केन्द्र का नाम चतुर्थ प्रकार होता है ।

१२३२०१०४ **वह पृथक् वाक्य माना जाय।**

१२३२०१०४ **उदाहरण**

इन्टर पार्लियामेन्टरी यूनियन. जेनेवा.
प्रेसिडेन्सी कॉलेज. कलकत्ता.
प्रेसिडेन्सी कॉलेज. मद्रास.
हिन्दू हाई स्कूल. शियाली.
हिन्दू हाई स्कूल. ट्रिप्लिकेन.
यूनिवर्सिटी कॉलेज. लंदन .
यंगमेन्स क्रिश्चियन असोसिएशन. तांजोर.
नागरी प्रचारिणी सभा. काशी.
हिन्दी साहित्य सम्मेलन. प्रयाग.
मारवाड़ी अस्पताल. बनारस.
इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया. देहली.
थियोसोफिकल सोसायटी. तांजोर.

किन्तु यदि मूल समिति से अभिप्राय हो तो केवल **थियॉसोफिकल सोसायटी।**

नेशनल रिसर्च कौन्सिल. जापान.
नेशनल रिसर्च कौन्सिल,. युनाइटेड स्टेट्स.
समाजवादी दल. भारत.
राज्य कांग्रेस समिति. उत्तरप्रदेश.
राज्य कांग्रेस समिति. मद्रास.
इन्टरनेशनल असोसिएशन ऑफ पब्लिक एम्पलायमेन्ट सर्विसेज.
युनाइटेड स्टेट्स एण्ड कनाडा.
टीचर्स गिल्ड. तंजोर.
टीचर्स गिल्ड. मद्रास. नगर.
जमींदार संघ. मद्रास.
जमींदार संघ. तंजोर .
जमींदार संघ. तंजोर. तालुक.
करदाता संघ. ट्रिप्लिकेन.

अन्तर्विश्वविद्यालय गण. भारत.

राष्ट्रीय ग्रन्थालय. भारत.

राष्ट्रीय ग्रन्थालय. जापान.

ग्रेट वेस्टर्न रेलवे. ग्रेट ब्रिटेन.

ग्रेट वेस्टर्न रेलवे. युनाइटेड स्टेट्स.

स्टॉक एक्सचेन्ज. वाशिंगटन. डी. सी.

स्टॉक एक्सचेन्ज. मान्ट्रील.

लिनियन सोसायटी. लण्डन.

लिनियन सोसायटी. न्यू साउथ वेल्स.

लिनियन सोसायटी. न्यूयार्क.

साउथ इण्डिया असोसिएशन. कलकत्ता.

१२३२०२ असति स्थापन-संवत्सरः ।

१२३२०२० पृथक् वाक्यम् ।

१२३२०२ १२३२०१ धारा व्यक्ति साधने असमर्था चेत् संस्थायाः स्थापनस्य संवत्सरं योजयित्वा व्यक्ति-साधनं कार्यम् ।

१२३२०२० तत् पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२३२०२ यदि १२३२०१ धारा व्यक्ति-साधन करने में असमर्थ हो, तो संस्था की स्थापना के वर्ष को आगे लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।

१२३२०२० वह पृथक् वाक्य माना जाय ।

१२३२०२० उदाहरण

स्टेट एग्रिकल्चरल सोसायटी. साउथ केरोलाइना. १८३९.

स्टेट एग्रिकल्चरल सोसायटी. साउथ केरोलाइना. १८५५.

१२३२०८ संस्था-उपसमष्ट्यां १२३११-१२३१६ धारोपधारानुरूपम्‡ उपशीर्षकाणि ।

१२३२०८ अखण्डायां संस्थायां ग्रन्थकर्त्र्याम् असत्यां, तस्याः केवलम् उपसमष्ट्यां च ग्रन्थकर्त्र्यां सत्यां, १२३११—१२३१६ पर्यन्तानां धाराणाम् उपधाराणाम् च अनुरूपम् उपशीर्षकाणि योज्यानि ।

१२३२०८ यदि अखंड संस्था ग्रन्थकर्त्री न हो, और संस्था की कोई उपसमष्टि ही ग्रन्थकर्त्री हो, तो १२३११ से १२३१६ तक की धाराओं का तथा उपधाराओं का अनुसरण करते हुए उपशीर्षक लगाए जायं ।

१२३२०८ उदाहरण

युनिवर्सिटी ऑफ मद्रास. एकेडेमिक कौन्सिल.

कार्निजी एन्डाउमेन्ट फॉर इन्टरनेशनल पीस. डिविजन ऑफ इन्टरनेशनल लॉ.

युनिवर्सिटी कॉलेज. लन्दन. **बायोमेट्रिक लेबोरेटरी.**

इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया. मद्रास. **पब्लिक डैट आफिस.**

इन्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ लायब्रेरी एसोसिएशन्स. कमेटी.

युनिवर्सिटी ऑफ मद्रास एकेडेमिक कौन्सिल. नं. १०. कमेटी.

प्रेसिडेन्सी कॉलेज. मद्रास. **मेथमेटिक्स असोसिएशन.**

हिन्दू हाई स्कूल. ट्रिप्लिकेन. **मास्टर्सस असोसिएशन.**

हिन्दू हाई स्कूल. शियाली. **ओल्ड बॉय्ज असोसिएशन.**

युनिवर्सिटी आफ मद्रास. युनिवर्सिटी लायब्रेरी. स्टाफ कौन्सिल कमेटी आन एक्सेशनिंग प्रोसीजर.

नेशनल रिसर्च कौन्सिल. यूनाइटेड स्टेट्स. डिविजन आफ एन्थ्रपालाजी एण्ड साइकालाजी. कमेटी आन स्टेट आर्कयालाजिकल सर्वेज्. कान्फरेन्स आन मिडवेस्टर्न आर्कयालाजी. सेंट लुई [मिसूरी]. १९२३.

मद्रास लायब्रेरी असोसिएशन काउन्सिल. तामिल बुक सेलेक्शन कमेटी. १९३३.

१२३३ सम्मेलनम्

१२३३ **अखण्ड-सम्मेलने तन्नाम शीर्षकम् ।**

१२३३१ **स्थान-नाम-संवत्सर-समङ्क-योगेन व्यक्ति साधनम् ।**

१२३३१० **पृथक् वाक्यम् ।**

१२३३ अखण्डे सम्मेलने ग्रन्थकारे सति तस्य सम्मेलनस्य नाम शीर्षकत्वेन ग्राह्यम् ।

१२३३१ स्थानस्य नाम्नः संवत्सरस्य समङ्कस्य च योगेन व्यक्तिसाधनं कार्यम् ।

१२३३१० प्रत्येकं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२३३ **यदि अखण्ड सम्मेलन ग्रन्थकार हो, तो उस सम्मेलन का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।**

१२३३१ **स्थान के नाम तथा संवत्सर के समंक को लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।**

१२३३१० **वह पृथक् वाक्य माना जाय ।**

१२३३१० **उदाहरण**

कॉन्फरेन्स ऑफ ओरिन्टलिस्ट्स, शिमला. १९११.
इन्टरनेशनल पीस कान्फरेन्स. हेग. १८९९.
तामिल ग्रन्थप्रेमी सम्मेलन. मद्रास. १९३३.
राजनैतिक पीड़ित सम्मेलन. गौहाटी. १९३३.
स्त्री अधिकार बैठक. बोस्टन. १८५९.
बेसेन्ट स्मारक बैठक. मद्रास. १९३३.

१२३३१०१ **सामयिक-पौनःपुन्ये न ।**

१२३३०१०१ सम्मेलनं सामयिकम् अतएव च पुनः पुनः मिलति चेत् व्यक्तिसाधनं न कार्यम् ।

१२३३१०१ **यदि सम्मेलन सामयिक हो और अतएव बार बार मिलता हो, तो व्यक्ति-साधन न किया जाय ।**

१२३३१०१ <u>उदाहरण</u>

अखिल भारतीय ग्रन्थालय सम्मेलन.
इण्डियन नेशनल कांग्रेस.
नेशनल लिबरल फेडरेशन.
अखिक भारतीय ख्रिस्ती सम्मेलन.
अखिल भारतीय हिन्दू महासभा.
साम्राज्य विश्वविद्यालय कांग्रेस.
अमेरिकन साइंस कांग्रेस.

१२३३२ ग्रन्थालय-इष्टभाषा-प्रकाशित प्रकाशने सार्वभौम-सम्मेलने तच्छीर्षकं तस्याम् ।

१२३३२१ ग्रन्थालय-इष्ट-भाषायां, सम्मेलन-अभिमत-अन्यतम-भाषायां वा ।

१२३३२२ अभावे १२३३२-१२३३२१ धारा-उल्लिखित-अभिसन्धि-अन्यतर-समाधायिका ग्रन्थालय-संमत-भाषा वरिष्ठा ।

१२३३२ सार्वभौम-सम्मेलनानां प्रकाशने ग्रन्थालयस्य इष्ट-भाषायां सकृदपि प्रकाशिते सति तस्य सम्मेलनस्य शीर्षकं तस्यां भाषायां लेख्यम् ।

१२३३२१ ग्रन्थालयस्य इष्टभाषा-सम्मेलनेन अभिमत-भाषाणाम् अन्यतमत्वेन स्वीकृता चेत् तदापि शीर्षकं तस्यां भाषायां लेख्यम् ।

१२३३२२ पूर्वोक्त-भाषयोः अभावे, पूर्वोक्त-धारा-द्वये उल्लिखितयोः अभिसन्ध्योः अन्यतरस्य समाधायिका ग्रन्थालयस्य सम्मतासु भाषासु वरिष्ठा भाषा ग्राह्या ।

१२३३२ यदि सार्वभौम सम्मेलनों का प्रकाशन ग्रन्थालय की इष्ट-भाषा में एक बार भी हो चुका हो, तो उस सम्मेलन का शीर्षक उस भाषा में लिखा जाय ।

१२३३२१ यदि ग्रन्थालय की इष्ट भाषा सम्मेलन के द्वारा अभिमत भाषाओं में से एक मान ली गई हो, तो उस अवस्था में भी शीर्षक उस भाषा में लिखा जाय ।

१२३३२२ यदि पूर्वोक्त भाषाएं उपलब्ध न हों, तो पूर्वोक्त दोनों धाराओं में उल्लिखित अभिसन्धियों में से(शर्तों में से)एक को पूर्ण करने वाली तथा ग्रन्थालय की संमत भाषाओं में से वरिष्ठ भाषा उपयोग म लाई जाय ।

१२३३२२ उदाहरण

इन्टरनेशनल कांग्रेस ऑफ मेथमेटीशियन्स.

इसमें आख्या-पत्र केवल इटालियन भाषा में है, तथा वह निम्नलिखित है :—

आत्ति देल कोन्ग्रेस्सो ईन्तेर्नात्स्योनाले देई मातेमातिचि.

१२३३०८ सम्मेलन-उपसमष्ट्यां १२३११-१२३१६ धारोपधारानुसारम् उपशीर्षकाणि ।

१२३३०८ अखण्डे सम्मेलने ग्रन्थकारे असति, तस्य केवलम् उपसमष्ट्यां च ग्रन्थकर्त्र्यां सत्यां १२३११ तः १२३१६ पर्यन्तानां धाराणाम् उपधाराणाम् च अनुरूपम् उपशीर्षकाणि योज्यानि ।

१२३३०८ यदि अखण्ड सम्मेलन ग्रन्थकार न हो और सम्मेलन की कोई उपसमष्टि ही ग्रन्थकार हो, तो १२३११ से १२३१६ तक की धाराओं का अनुसरण करते हुए उपशीर्षक लगाए जायं ।

१२३३०८ उदा. इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरियन्टलिस्ट्. कमेटी ऑन ट्रान्सलिटरेशन.

१२४ एकाधिक समष्टि ग्रन्थकार :

वरणमुपकल्पनं च

१२४ **एकाधिक-समष्ट्यां शीर्षकं १२२ धारोपधारानुरूपम् ।**

१२४१ **सहसमष्टि-ग्रन्थकार-नाम्नि एकाधिक-वाक्ये एकं वाक्यम् ।**

१२४ एकाधिकायां समष्ट्यां ग्रन्थकर्त्र्यां सत्यां शीर्षकं १२२ धारां तदीयाम् उपधारा च अनुसृत्य लेख्यम् ।

१२४१ सह-समष्टि-ग्रन्थकारयोः एकस्य कस्यचित् नाम्नि एकाधिक-वाक्यमये पूर्ण-विराम-स्थाने अल्पविरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम् ।

१२४ **यदि एक से अधिक समष्टियां ग्रन्थकार हों, तो शीर्षक १२२ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय ।**

१२४१ **यदि सह-समष्टि-ग्रन्थकारों में से किसी एक के नाम में एक से अधिक वाक्य हों, तो पूर्ण विराम के स्थान में अल्पविराम कर उनका एक वाक्य बनाया जाय ।**

१२४१ द्रष्टव्य धारा ०३६७.

उपकल्पनम्

१२५ कल्पित नाम वरणम्

१२५ **आख्या-पत्रे कल्पित-नाम-मात्रे तत् शीर्षकम् ।**

१२५० **'कल्पित' इति परम् ।**

१२५०१ तत् वर्णकम् ।

१२५०२ पृथक् वाक्यम् ।

१२५ आख्या-पत्र ग्रन्थकार-नाम-स्थाने केवलं कल्पित-नाम एव विद्यते चेत् तत् शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२५० 'कल्पित' इति पदं ततः परं लेख्यम् ।

१२५०१ तत् 'कल्पित' इति पदं वर्णकम् इति ज्ञेयम् ।

१२५०२ तत् 'कल्पित' इति वर्णकं पदं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२५ यदि आख्या-पत्र पर ग्रन्थकार के नाम के स्थान पर केवल कल्पित नाम ही हो, तो उसे शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२५० 'कल्पित' यह पद उसके आगे लिखा जाय ।

१२५०१ उस कल्पित-पद को वर्णक माना जाय ।

१२५०२ 'कल्पित' यह वर्णक पद पृथक् माना जाय ।

१२५०२ और द्रष्टव्य धारा ०३६६.

उदाहरण

अञ्चल. कल्पित.

देव. कल्पित.

१२५१ आख्यापत्रे गौण-तथ्य-नाम्नि तदपि ।

१२५१०१ पृथक् वाक्यम् ।

१२५१०२ 'अ.' इति पूर्वम् ।

१२५१०३ 'कल्पित' इति पदात् परम् ।

१२५१ ग्रन्थकारस्य तथ्यात्मकं गौणरूपं च नाम अपि आख्यापत्रे विद्यते चेत् तत् अपि लेख्यम् ।

१२५१०१ तत् तथ्यं गौणं च नाम पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२५१०२ 'अ.' इति संक्षिप्तं रूपं तस्मात् तथ्यात् गौणात् नाम्नः पूर्वं लेख्यम् ।

१२५१०३ तत् तथ्यं गौणं च नाम 'कल्पित' इति वर्णकात् पदात् परं लेख्यम् ।

१२५१ यदि ग्रन्थकार का सच्चा और गौण रूप से दिया हुआ नाम भी आख्या-पत्र पर विद्यमान हो, तो उसे भी लिखा जाय ।

१२५१०१ वह सच्चा और गौण नाम पृथक् वाक्य माना जाय ।

१२५१०२ 'अ.' यह संक्षिप्त रूप उस सच्चे और गौण नाम से पहले लिखा जाय ।

१२५१०३ वह सच्चा और गौण नाम 'कल्पित' इस वर्णक पद के पश्चात् लिखा जाय ।

१२५१०३ उदाहरण—

नलिन. कल्पित.

चाणक्य. कल्पित. (अ. जवाहर लाल नेहरू).

एक भारतीय आत्मा. कल्पित. (अ. माखन लाल चतुर्वेदी).

प्रेमधन. कल्पित. (अ. बदरी नारायण उपाध्याय चौधरी).

एक किताबी कीड़ा. कल्पित. (अ. गंगाशंकर मिश्र).

१२५११ कल्पित-नाम्नि गौणे तथ्य-नाम शीर्षकम् ।

१२५१११ कल्पित-नाम अपि ।

१२५११२ पृथक् वाक्यम् ।

१२५११३ 'कल्पित' इति परम् ।

१२५११४ पृथक् वाक्यम् ।

१२५११५ ते वृत्त-कोष्ठके ।

१२५२ ग्रन्थ-बहिःस्थं तथ्य-नाम अपि ।

१२५२०१ पृथक् वाक्यम् ।

१२५२०२ 'अ.' इति पूर्वम् ।

१२५२०३ ते ऋजुकोष्ठके ।

१२५२०४ 'कल्पित' इति पदात् परम् ।

१२५२२ अभिज्ञात-तथ्य-नामक - सहग्रन्थकार-द्वय - वाचक-कल्पित-नाम्नः परं तन्नामनी ।

१२५२२० योजक-पद यथास्थानम् ।

१२५२३ बहूनाम् एकम् ।

१२५२३१ तन्न्याय्यम् ।

१२५२३२ अन्यथा यथेच्छम् ।

१२५२३३ 'इदि.' इति परम् ।

१२५३ एकाधिक-कल्पित-नाम्नि शीर्षकम् १२२, १२५ धारानुरूपम् ।

१२५११ पूर्ववर्तिनि ग्रन्थकारस्य तथ्ये नाम्नि, तस्य अनुगामिनि गौणे कल्पित-नाम्नि च, उभयोरपि आख्यापत्रे विद्यमानयोः तथ्य-नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२५१११ तत् गौणं कल्पित-नाम अपि तथ्य-नाम्नः परं लेख्यम् ।

१२५११२ तत् गौणं कल्पित-नाम पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२५११३ 'कल्पित' इति पदं ततः परं लेख्यम् ।

१२५११४ तत् 'कल्पित' इति वर्णकं पदं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२५११५ तत् गौणं कल्पित-नाम, 'कल्पित' इति वर्णकं पदं च उभे अपि वृत्तकोष्ठके लेख्ये ।

१२५२ ग्रन्थकारस्य तथ्यं नाम ग्रन्थात् बहिर्मार्गे क्वचन उपलभ्यते चेत तद् अपि लेख्यम् ।

१२५२०१ तत् ग्रन्थकारस्य तथ्यं नाम पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१२५२०२ 'अ' इति संक्षिप्तं रूपं तस्मात् तथ्यात् नाम्नः पूर्वं लेख्यम् ।

१२५२०३ 'अ' इति संक्षिप्तं रूपं, तथ्यं नाम च उभे अपि ऋजुकोष्ठके लेख्ये ।

१२५२०४ तत् ऋजु कोष्ठकं 'कल्पित' इति पदात् परं लेख्यम् ।

१२५२२ कल्पित-नाम द्वयोः सहग्रन्थकारयोः वाचकं चेत्, तयोः च तथ्ये नामनी अभिज्ञायेते चेत्, 'अ' इत्युपगते ते 'कल्पित' इति वर्णकपदानुगतात् कल्पित-नाम्नः परं लेख्ये ।

१२५२२० योग्ये स्थाने उभयोः नाम्नोः योजकं पदं लेख्यम् ।

१२५२३ कल्पित-नाम द्वयाधिकानां सहग्रन्थाकाराणां वाचकं चेत्, तेषां च तथ्यानि नामानि अभिज्ञायन्ते चेत्, 'अ' इत्युपगतं तेषाम् अन्यतमं नाम 'कल्पित' इति वर्णक-पदानुगतात् कल्पित-नाम्नः परं लेख्यम् ।

१२५२३१ बहूनाम् तथ्यनाम्नाम् एकस्य निर्धारणे केनचन न्यायेन सङ्गता औचिती प्रमाणत्वेन स्वीकार्या ।

१२५२३२ न्यायेन सङ्गता औचिती न उपलभ्यते चेत् स्वेच्छा एव प्रमाणत्वेन स्वीकार्या ।

१२५२३३ तस्मात् तथ्यनाम्नः परम् 'इदिः' इति लेख्यम् ।

१२५३ एकाधिकं कल्पित-नाम ग्रन्थकार-नाम-स्थाने विद्यते चेत्, १२२ संख्यकाम् १२५ संख्यकाम् च धारां, तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य शीर्षकं लेख्यम् ।

१२५११ **यदि पूर्व में आने वाला ग्रन्थकार का सच्चा नाम तथा उसके पश्चात् आने वाला गौण कल्पित-नाम दोनों आख्या-पत्र पर विद्यमान हों, तो सच्चे नाम को शीर्षक के रूप में लिया जाय।**

१२५१११	वह गौण कल्पित-नाम भी सच्चे नाम के पश्चात् लिखा जाय।
१२५११२	वह गौण कल्पित-नाम पृथक् वाक्य माना जाय।
१२५११३	'कल्पित' यह पद उसके पश्चात् लिखा जाय।
१२५११४	'कल्पित' यह वर्णक पद पृथक् वाक्य माना जाय।
१२५११५	वह गौण कल्पित-नाम और 'कल्पित' यह दोनों वर्णक पद वृत्तकोष्ठक में लिखे जायं।
१२५२	यदि ग्रन्थकार का सच्चा नाम ग्रन्थ के बाहर कहीं से उपलब्ध हो सके, तो वह भी लिखा जाय।
१२५२०१	वह ग्रन्थकार का सच्चा नाम पृथक् वाक्य माना जाय।
१२५२०२	'अ.' यह संक्षिप्त रूप उस सच्चे नाम से पूर्व लिखा जाय।
१२५२०३	'अ.' यह संक्षिप्त रूप तथा तथ्यनाम दोनों ऋजु-कोष्ठक लिखे जायं।
१२५२०४	वह ऋजुकोष्ठक वाक्य 'कल्पित' इस पद के पश्चात् लिखा जाय।
१२५२२	यदि कोई कल्पित-नाम दो सह-ग्रन्थकारों का वाचक हो और उनके सच्चे नाम ज्ञात हो सकते हों, तो 'अ.' से युक्त उन दोनों नामों को 'कल्पित' इस वर्णक पद से अनुगत कल्पित-नाम के पश्चात् लिखा जाय।
१२५२२०	योग्य स्थान में दोनों नामों के योजक पद को लिखा जाय।
१२५२३	यदि कोई कल्पित नाम दो से अधिक सह-ग्रन्थकारों का वाचक हो और उनके सच्चे नाम ज्ञात हो सकते हों, तो 'अ.' से युक्त उनमें से एक नाम को, 'कल्पित' इस वर्णक पद से अनुगत कल्पित-नाम के पश्चात् लिखा जाय।
१२५२३१	अनेक सच्चे नामों में से एक के निर्धारण के लिए किसी न्यायसंगत औचित्य को प्रमाण-स्वरूप माना जाय।
१२५२३२	यदि न्याय संगत औचित्य उपलब्ध न हों, तो अपनी स्वतन्त्र इच्छा ही प्रमाण-स्वरूप मानी जाय।
१२५२३३	उस सच्चे नाम के पश्चात् 'इदि.' यह लिखा जाय।

१२५३ **यदि एक से अधिक कल्पित-नाम ग्रन्थकार के नाम के स्थान में दिए हुए हों, तो १२२ संख्यक और १२५ संख्यक धाराओं तथा उनकी उपधाराओं का अनुसरण कर शीर्षक लिखा जाय ।**

१२५३ उदाहरण

जे. के. एफ. आर. एस. तथा **एस. ए. एस. सी.** कल्पित. [अ. जेम्स केअर].

कल्पित नाम एक काल्पनिक नाम होता है जिसे कोई ग्रन्थकार अपना लेता है। सुविधा के लिए इस पद का प्रयोग वास्तविक नाम से अन्य, उन सभी नामों के लिए किया जाता है जिनके द्वारा ग्रन्थकार अपने जीवन-काल में अथवा उत्तर काल में प्रसिद्ध हो जाता है। किन्तु कल्पित नाम का नाम के परिवर्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है। काल्पनिक नाम को स्वीकार करने का, अथवा वास्तविक नाम को छिपाने का उद्देश्य भिन्न-भिन्न हो सकता है । उदाहरणार्थ, आत्मविश्वास का अभाव, लज्जा, बुरे परिणामों का भय, झक्कीपन (चंचलचित्तता), परिहास करने की प्रवृत्ति, गूढ़ता जताने की प्रवृत्ति, हंसी में छल करने की प्रवृत्ति इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रेरक हेतुओं के अन्तर्वर्ती मनस्तत्व का अध्ययन बड़ा ही रोचक प्रतीत होगा किन्तु उसका सूचीकरण से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है । परन्तु ग्रन्थों के आख्या-पत्रों पर दिए हुए कैतवनामों में काल्पनिकता तथा गूढ़ता का अंश कितनी मात्रा में विद्यमान रहता है इसका अध्ययन अवश्यमेव रुचिकर सिद्ध होगा।

एक ओर तो वह सीमा है जिसमें एक अन्य विधिवत् नाम ही स्वीकार कर लिया जाता है, जोकि वास्तविक नाम से सर्वथा भिन्न होता है। वास्तविक नाम के रूप में प्रतीत होने वाले इस प्रकार के नामों को वास्तविक नामों की धाराओं के अनुसार ही लिखना चाहिए। जहां तक नाम के पदों की परिवृत्ति (बदल) का संबन्ध है, वहां तक यह भी संभव है कि किसी घटना अथवा प्रथा के कारण ग्रंथकार का वास्तविक नाम भुला दिया गया हो और वह अपने सच्चे नाम के अतिरिक्त अन्य किसी नाम से स्मरण किया जाता हो।

इसके अतिरिक्त, वास्तविक नाम के पदों को पूर्णतः अथवा कुछ पदों को छोड़ कर शेष को तोड़-मरोड़ दिया जाता है। यदि नामान्त्य पद उसी प्रकार रक्खा जाय और नामाद्य पद में से एक दो पदों को लुप्त कर दिया जाय तो उसे कल्पित नाम नहीं कहा जायगा।

कल्पित नाम बनाने का एक ढंग और यह भी है कि नाम के घटक अक्षरों को आग पीछे कर दिया जाय। इस प्रकार के हेरफेर से संसार में सदा नामों का निर्माण होता ही रहा है। किन्तु प्रत्येक जाति के जीवन में कुछ काल ऐसे भी होते हैं जब इस प्रकार के वर्ण-हेरफेर से होने वाले नाम-निर्माण एक महामारी का रूप ले लेते हैं। सूचीकरण के अध्येताओं की यह प्रबल इच्छा हो सकती है कि सांस्कृतिक इतिहास के अध्येता इस प्रकार के कालों का अन्वेषण एवं परीक्षण करें।

वर्णों की हेरफेर से बने कल्पित नामों के एक भेद में हम यह भी पाते हैं कि नाम में आने वाले सभी अक्षर नहीं अपितु कुछ चुने हुए अक्षरों को हेरफेर के लिए ले लिया जाता है।

नाम के रूप बदलने का एक प्रकार यह भी है कि वास्तविक नाम के अन्त में अन्य पदों अथवा अक्षरों को प्रविष्ट कर दिया जाय।

वास्तविक नाम को सर्वथा हटाकर उसके स्थान में वर्णक वचन का प्रयोग एक और प्रकार है जिससे कल्पित नाम बनाया जाता है। इस प्रकार के कल्पित नाम के निर्माण के लिए जन्मस्थान, निवास-स्थान, राष्ट्रीयता, व्यवसाय, विशिष्ट सम्बन्ध, जन्मपत्री विषयक विशेषताएं, वैयक्तिक विशेषताएं, राजनैतिक झुकाव, पूर्व प्रकाशित प्रकाशन आदि प्रत्येक प्रकार की वस्तु का आश्रय लिया जाता है।

इनके अतिरिक्त एक और भी प्रकार है जिससे कल्पित नाम बनाए जाते हैं। नामाग्राक्षरों का तथा नामान्त्याक्षरों का उपयोग अथवा उन दोनों का संयोग। यहां भी प्रत्येक प्रकार की हेरफेर संभव है। उन अक्षरों को इस प्रकार एक साथ लिखा जा सकता है कि उनके बीच कोई संयोजक अव्यय न लगाया जाय और उनका एक अग्राक्षर नाम बन जाय। इस प्रकार के कल्पित नाम समष्टियों के भी होते हैं।

इनके अतिरिक्त कल्पित नामों के और भी प्रकार हैं। एक ही कल्पित नाम दो या अधिक सह-ग्रन्थकारों का वाचक बनाया जा सकता है। इसके विपरीत, द्विगुणित अथवा त्रिगुणित कल्पित नामों को आख्या-पत्र पर देखकर सूचीकार यह अनुमान लगा सकता है कि वह ग्रन्थ सह-ग्रन्थकारों द्वारा लिखा हुआ है, जबकि वस्तुतः उसका ग्रन्थकार एक ही है। इसके अतिरिक्त एक ही व्यक्ति अपने विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न कल्पित नामों का प्रयोग करते हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं जहां एक ही ग्रन्थकार ने एक दो नहीं, परन्तु पच्चीस विभिन्न कल्पित नामों का उपयोग किया है। दूसरी ओर विभिन्न ग्रन्थकार का एक ही कल्पित नाम होता है। ऊपर दिए हुए उदाहरणों में उपर्युक्त विशेषताओं में से कतिपय का निर्देशन किया गया है।

कल्पित नामों को रख लेना तथा प्राप्त हो जाना एक ऐसी समस्या है जिसके द्वारा सूचीकार किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। उसके और भी कई प्रकार हैं, किन्तु उनमें से एक यह भी है। विद्वत्ता के संवर्धन के लिए यह आवश्यक है कि ग्रन्थालयियों के ग्रन्थ सूची-विषयक उत्साह को संघटित किया जाय और ग्रन्थकारों की वास्तविकता (तत्ता) को उद्घाटित किया जाय। आधुनिक काल में जर्मन ग्रन्थालयी अग्रणी मालूम पड़ते हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ-विषयक समस्या की ओर ध्यान दिया। विन्केन्तियुस प्लाकियुस का ग्रन्थ **थेआत्रुमअ नानिमोसम एट स्पेउदोविमोसम** १७०८ ई. में प्रकाशित हुआ। योहान क्रिस्तॉफ मिलियुस के ग्रन्थ **बिब्लियोथेक अनानिमोकम एट स्पेउदोनिमोसम डटेक्टोसम** के दो संपुट १७४० ई. में हेम्बर्ग से प्रकाशित हुए। इनके प्रकाशन से अन्य देशों के ग्रन्थालयियों को भी प्रेरणा मिली, ऐसा प्रतीत होता है। सर्वप्रथम फ्रांस ने उनका अनुसरण किया। आंत्वान् अलेक्सांद्र बार्ब्ये ने १८०६-१८०९ के बीच अपने ग्रन्थ **दीक्स्योनेक देज़ ऊव्राज अनोनीम्ज ए प्सेउदोनिम** के ४ संपुट प्रकाशित किए। गाएतानो मेल्त्सि ने **दीन्स्योनार्यो दि ओपेरे अनोनिमे एँ पस्य उदोनिमे दि स्क्रितोरि ईनल्यानि** के तीन संपुटों को १८४८-५९ के बीच प्रकाशित कर इटली की आवश्यकताएं पूर्ण कीं। रवोलिन के ग्रन्थ **एनोनिमेर आग स्यूदोनिमेर** ने १८६९ में डेनिश, नारवेजियन तथा आइसलेंडिक ग्रन्थालयों की आवश्यकताएं पूर्ण कीं। दोर्निङ्क ने १८८३-१८८५ के बीच हालैण्ड को अपने ग्रन्थ **वेर्मोन्दे एन् नाम्लोजे स्खेवेर्स ओप्गेस्योर्द ओप हेत् गेबीन्** के दो संपुट भेंट किए।

ग्रेट ब्रिटेन के ग्रन्थालयियों ने प्रायः एक शताब्दी तक इस प्रश्न का अनुसंधान किया। कुछ ही वर्ष पूर्व, **डिक्शनरी ऑफ एनोनिमस एण्ड स्यूडोनिमस इंगलिश लिटरेचर** की नवीन महामहिम-सम्पन्न आवृत्ति प्रकाशित हुई, जिसे सर्वप्रथम एडिनबरा के एडवोकेट ग्रन्थालय के ग्रन्थालयी सेमुएल हेलकेट ने आयोजित किया था, और आगे चलकर दूसरों ने जारी रखते हुए परिवर्द्धित तथा पूर्ण किया। इसका अन्तिम संपुट १९३२ में प्रकाशित हुआ है। उसके प्रारम्भिक पत्रों में एक टिप्पणी दी गई है जिसमें यह कहा गया है कि समय समय पर उसके पूरक संपुट प्रकाशित किये जायेंगे। इनकी अपेक्षा अधिक संक्षिप्त रूप का एक और भी कोश है। उसका नाम है, **एनानिमा एण्ड स्यूडोनिमा** और इसे चार्ल्स ए. स्टेनहिल तथा अन्य लोगों ने बनाया था। यह चार लघु संपुटों में १९२६-२७ में प्रकाशित हुआ।

किन्तु हमारे भारत की क्या दशा है? कल्पित नामों की रचना करने में भारतीय ग्रन्थकार किसी भी अन्य देश के ग्रन्थकारों से पिछड़े नहीं हैं। वे अन्य विषयों की तरह इसमें भी बड़े ही कुशल हैं। भारतीय ग्रन्थालयी अब तक उन नामों का रहस्योद्घाटन करना प्रारम्भ नहीं कर सके हैं। यह उन ग्रन्थकारों का दोष नहीं है। हम यह नहीं कह सकते कि भारत के ग्रन्थालय संघ कब इस समस्या को सुलझाने के लिए पर्याप्त शक्ति तथा प्रेरणा संगृहीत कर सकेंगे। व्यवसायी ग्रन्थालयी तो अभी-अभी क्षेत्र में आने प्रारम्भ हुए हैं। चाहे एक व्यक्ति का जीवन हो, समाज का हो अथवा व्यवसाय का हो, उसके आरम्भिक वर्षों में कठिन समस्याओं को सुलझाने में अध्यवसाय तथा लगन का प्रायः अभाव ही होता है। उसके आरम्भ होने में कुछ समय लग ही जाता है। इस प्रकार के ग्रन्थ-सूची सम्बन्धी कार्य के संपादन के लिए पारस्परिक सद्भावना, सहयोग से समन्वित शास्त्रीय दृष्टिकोण तथा 'संभूय-समुत्थान' की भावना आवश्यक होती है। इसके अतिरिक्त यह भी वांछनीय है कि क्षणिक, प्रबन्धात्मक और अन्य प्रकार के स्वार्थ दूर हो जायं तथा उनके स्थान में पूर्वोक्त भावना का उदय हो। किन्तु ऐसा होने में वर्षों लगेंगे। परन्तु यह होगा अवश्य चाहे आज हो या कल। यह उतनी जल्दी नहीं होगा जितनी जल्दी हम चाहते हैं।

भारतीय ग्रन्थालयी के सिर पर तो और भी अधिक दुर्धर्ष पैतृक सम्पत्ति लादी गई है। यह एक प्रकार का पारितोषिक है तथा दण्ड भी है। कारण यह है कि उसकी राष्ट्रिय संस्कृति अप्रतिम प्राचीनता से परिप्लुत है। आज से हजारों वर्ष पूर्व उसके पूर्वज अद्भुत एवं अनुपम प्रतिभा से सम्पन्न थे, और उन्होंने उस प्रतिभा के सैकड़ों-हजारों अनुपम चमत्कार दिखलाए हैं, जिनसे आज भी संसार की आंखें चुंधिया रही हैं। संसार का कोई भी देश उतने प्राचीन साहित्यिक अवशेषों का उदाहरण नहीं प्रस्तुत कर सका है। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की यही अति-प्राचीनता भारतीय ग्रन्थालयी के लिए वरदान एवं अभिशाप दोनों ही है।

ग्रन्थकारों द्वारा काल्पनिक एवं अर्ध-काल्पनिक नामों के ग्रहण का जहां तक सम्बन्ध है, आज से हजारों वर्ष पूर्व, उस पुरातन युग में भी मानव स्वभाव ठीक उसी प्रकार का था जैसा आज है। परिस्थिति यहीं तक जटिल होती तब भी कुशल था। किन्तु जटिल को और जटिलतर बनाने के लिए परम्पराओं के अनेक स्तर बीच में आ मिले हैं। उनसे परिस्थिति और भी विषम हो गई है। उन परम्पराओं में से कम से कम कुछ तो भ्रामक हैं। वे प्रायः उसी युग से सम्बद्ध हैं जो अभी अभी बीता है

और जब भारत अवनति के गहरे गर्त में गिरा हुआ था। इसके अतिरिक्त जटिलता का और भी एक कारण है। समय के प्रभाव से ग्रन्थकार का वास्तविक नाम तो भुला दिया गया और उसके स्थान पर एक अवान्तर-नाम ने स्थान प्राप्त कर लिया। वही लोगों के मन में रम गया। ग्रन्थकार के समसामयिक, उससे अध्ययन करने वाले शिष्य तथा अपने ग्रन्थों में उसका उल्लेख करने वाले अन्य ग्रन्थकार तक उसी अवान्तर नाम से उस ग्रन्थकार का स्मरण एवं उल्लेख करने लगे। वास्तविक नाम का कहीं चिन्ह तक भी न रहा।

इन परिस्थितियों में केवल ग्रन्थालय व्यवसाय के लिए यह संभव नहीं है कि वह स्वतन्त्र रूप से उन प्राचीन कल्पित नामों का रहस्योद्घाटन कर सके। वस्तुतः यदि विचारा जाय तो यह उन अदम्य प्रतिभा-सम्पन्न भारतीय-ज्ञान-उपासकों के सहयोग-पूर्ण उद्योग का क्षेत्र है जो उपासक भारतीय ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नैपुण्य प्राप्त कर रहे हैं। कतिपय विदेशी विद्वानों ने इस विषय में आरम्भिक कार्य किया भी है। विदेशी संस्कृति में पले हुए व्यक्ति, चाहे कितने ही उत्साह से पूर्ण हों, किन्तु इस प्रकार के विशाल एवं जटिल क्षेत्र में वे कर ही क्या सकते हैं? वह समय आ गया है जबकि भारतीय विश्वविद्यालयों के कतिपय प्रतिभाशाली भारतीय नवयुवक उपर्युक्त ग्रन्थ सूचीय उद्यन्मुखीकरण को दृष्टिपथ में रखकर इस ओर अपने प्रयत्न जुटा दें। ग्रन्थालय-व्यवसाय के व्यक्ति भी उन्हें सहयोग दें। यह निश्चित है कि वे उन्हें उनके कार्य में बहुत कुछ सहायता कर सकेंगे। कल्पित नामों का प्रामाणिक कोश निर्माण करने के लिए इस प्रकार के लोगों की एक समुदाय को कतिपय दशाब्दियों तक काम करना पड़ेगा, तब कहीं जाकर ऐसे कोश का निर्माण हो सकेगा। किन्तु जब तक ऐसे कोश का प्रकाशन नहीं हो जाता तबतक ग्रन्थालय मनोवांछित फल नहीं दे सकते, तथा भारतीय-ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में होने वाले गवेषणा-प्रयत्न अन्धकार के गर्भ में समाते रहेंगे।

'संस्कृत-साहित्य में ग्रन्थकारीय बहुनामता तथा एकनामता' इस विषय पर निम्नलिखित लघु-लेख के लिए हम अपने परम मित्र स्वर्गीय महामहोपाध्याय, विद्यावाचस्पति एस० कुप्पु स्वामी शास्त्री, संस्कृत एवं तुलनात्मक भाषाशास्त्र प्राध्यापक, प्रेसिडेन्सी कालेज, मद्रास, तथा क्यूरेटर, गवर्नमेंट ओरिएन्टल मेनुस्क्रिपट्स लायब्रेरी (संरक्षक, राजकीय-प्राच्य-लिखित-ग्रन्थ-ग्रन्थालय), मद्रास, के आभारी हैं।

संस्कृत-साहित्य में ग्रन्थकारीय बहुनामता तथा एकनामता

संस्कृत साहित्य में दो मनोरंजक ग्रन्थ-विषयक वैचित्र्य के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। वे वैचित्र्य ये हैं :—

ग्रन्थकारीय बहुनामता (एक ही ग्रन्थकार के अनेक नामों की विद्यमानता); तथा

ग्रन्थकारीय एकनामता (विभिन्न ग्रन्थकारों का किसी एक ही नाम द्वारा विख्यात होना)।

ग्रन्थालय शास्त्र के निर्माता तथा अध्येताओं के लिए, ग्रन्थालय वर्गीकरण तथा सूचीकरण की धाराओं के निर्माण-प्रयत्न में, उपर्युक्त दो वैचित्र्य अनेक प्रकार की विषम एवं मनोरंजक समस्याएं प्रस्तुत करते हैं। संस्कृत साहित्य के वर्तमान इतिहासकारों के लिए जो विभिन्न कठिनाइयां उनके द्वारा उपस्थित होती हैं उनकी तो बात ही और है। बहुनामता में केवल वे कल्पित नाम ही नहीं आते जो ग्रन्थकारों द्वारा स्वयं अपना लिए जाते हैं और न केवल उन ग्रन्थकारों पर अन्य व्यक्तियों द्वारा विनोद के लिए लादे हुए विनोद नाम ही आते हैं, अपितु पितृकुलीय तथा मातृकुलीय नाम, गोत्रनाम, विद्या-उपाधि, प्रेमसम्बोधन-नाम, संक्षिप्तनाम, सन्यास-परिगृहीतनाम, अनूदित समानार्थक तथा वाक्य-विषयक-उपकल्पन सभी कुछ आ जाते हैं। एकनामता में वे सब विषय आते हैं जहां मुख्यतः अपने पूर्वज, देव, देवियां, साधु, सन्त, महात्मा, विख्यात ग्रन्थकार, आश्रय-दाता और कभी कभी राजाओं तक के नामों के अनुरूप ही नामों के रखने की पुरातन प्रथा के कारण विभिन्न व्यक्ति एक ही नाम से पुकारे जाने लगते हैं। बहुनामता तथा एकनामता के अनेक स्थलों पर वास्तविक निदानभूत कारणों को ठीक ठीक ढूंढ़ निकालना असंभवप्राय ही रहता है। किन्तु जहां तक अपर नामों का सम्बन्ध है, वहां तक तो विनोद प्रवृत्ति, गूढ़ताजनक प्रवृत्ति, आदर-श्रद्धा-भाव, प्रथा या परम्परा, वात्सल्य या प्रेम करने की प्रवृत्ति अथवा विनोदार्थ अनुकरण करने की प्रवृत्तियों को कारण-स्वरूप माना जा सकता है। बहु-नामता-विषयक अपर-नाम तथा एकनामता विषयक समानार्थक नाम अपराधों के अन्वेषण में तथा व्यवहार-विषयक आरोपों के सम्बन्ध में जितनी कुछ कठिनता तथा जटिलता उपस्थित कर सकते हैं उससे भी कहीं अधिक व्याकुलता ग्रन्थालय वर्गीकरण तथा सूचीकरण के सम्बन्ध में उपस्थित कर सकते हैं। प्रथम तथा द्वितीय दोनों विषयों में विश्वास पात्र साक्ष्य पर आधारित चिरायात व्यवहार (प्रथा)

की सहायता से हम अपनी कठिनाइयों को बहुत कुछ अंशों तक दूर कर सकते हैं। किन्तु द्वितीय विषय में जहाँ कि न्यूनतम समय तथा कष्ट के द्वारा यथासंभव बहुतम लाभजनक शास्त्रीय सूचीकरण मुख्यत: उद्दिष्ट है, वहां कुछ विशिष्ट रीतियों का आविर्भाव करना ही पड़ेगा। संस्कृति अभ्युत्थान में प्रयत्न-शील कोई भी संस्था यदि भारतीय साहित्य के ग्रन्थकारों की बहुनामता तथा एकनामता के कोश निर्माण का महाकार्य अपने हाथ में ले ले तो यह बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। इसमें कोई संदेह नहीं। साथ ही यह कार्य ऐसा प्रमाणित होगा जिसमें बहुसंख्यक विद्वान अनेक वर्षों तक विवेक तथा बुद्धिमत्ता से पूर्ण, मनोरंजक तथा लाभदायक गवेषणा के लिए विशाल क्षेत्र पाते रहेंगे।

निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा यह ज्ञात हो जायेगा कि ग्रन्थकारीय बहुनामता तथा एकनामता से सम्बद्ध समस्याएं किस प्रकार की हैं तथा कितनी जटिल हैं। नीचे दिए हुए सभी नाम ऐसे हैं जो भारतीय साहित्य के वर्गीकरण में अवश्यमेव स्थान पायेंगे।

संस्कृत साहित्य में व्यास एक प्रसिद्धतम नाम है। वे महाभारत के प्रसिद्ध निर्माता हैं। उन्होंने अनेक पुराण लिखे हैं यह कहा जाता है। उन्हें कृष्ण-द्वैपायन भी कहा जाता है। इस नाम द्वारा उनके वर्ण (रंग) तथा जन्मस्थान का बोध कराया जाता है। कुछ ग्रन्थों में वे अपने पितृकुलीय नाम पाराशर्य तथा कुछ ग्रन्थों में मातृकुलीय नाम सत्यवती-सुत के नाम से विख्यात हैं। ब्रह्मसूत्र के प्रणेता बादरायण उनसे अभिन्न बताए जाते हैं। योगसूत्र पर विरचित व्यास भाष्य नामक प्रसिद्ध भाष्य व्यास द्वारा प्रणीत हैं यह विश्वास किया जाता है। व्यासराय तथा व्यासतीर्थ नाम से प्रसिद्ध कुछ तदनुभावी ग्रन्थकार व्यास नाम को धारण करते थे। अन्तिम तीन विषयों में हमें एकनामता के भी उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। यदि इन सब नामों का एक साथ विचार किया गया तो हमें यह ज्ञात हो जायेगा कि ग्रन्थकारीय बहुनामता, एकनामता, पितृकुलनामता तथा मातृकुलनामता कितने विविध प्रकारों में एक दूसरे से संकीर्ण हो सकती हैं।

वाल्मीकि रामायण के प्रणेता हैं। उन्हें प्राचेतस भी कहा जाता है और यह उनका पितृकुलीय नाम है। अनुगामी साहित्य में एक तामिल कवि तथा एक प्राकृत वैयाकरण दोनों वाल्मीकि कहे जाने लगे। वर्तमान काल में प्रेसिडेन्सी कॉलेज के गृहीतावकाश तेलुगु प्राध्यापक श्री सुब्बाराव अपने तेलुगु रामायण के कारण आन्ध्र वाल्मीकि कहे जाने लगे।

कौटलीय तथा कौटिलीय नाम से प्रसिद्ध, प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र के विख्यात ग्रन्थ के प्रणेता कौटल्य तथा कौटिल्य नाम से पुकारे जाते हैं। प्रथम नाम उनका गोत्र-नाम है और द्वितीय संभवतः उसका विनोद-नाम है। इस ग्रन्थकार को चन्द्रगुप्त के प्रसिद्ध मंत्री चाणक्य से अभिन्न माना जाता है।

वैशेषिक सूत्र के प्रणेता कणाद का तो कुछ स्थानों में काश्यप तथा कुछ अन्य स्थानों में उलूक (उल्लू) इस नाम से भी उल्लेख किया जाता है। काश्यप ग्रन्थकार का गोत्र-नाम है तथा कणाद और उलूक ये दोनों विनोद-नाम हैं।

न्यायसूत्र के प्रणेता गौतम अपने विनोद-नाम अक्षपाद से भी विख्यात हैं। गौतम उनका गोत्र नाम है। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखने योग्य है कि सिद्धार्थ धार्मिक नाम के धारी तथा बौद्ध धर्म के संस्थापक, गौतम इस अपने गोत्र नाम से भी प्रसिद्ध हैं। सूचीकारों को इस सम्बन्ध में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि **गौतम-धर्म-सूत्राणि** इस आख्या वाले धर्म शास्त्र-साहित्य के एक प्राचीन सूत्र ग्रन्थ के प्रणेता का भी नाम गौतम था।

प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण पाणिनि कुछ स्थानों में अपने मातृकुल-नाम दाक्षी पुत्र से भी उल्लिखित किए जाते हैं।

भारतीय परम्परा की प्रसिद्धि के अनुसार,पतंजलि को उनके नामान्तर गोनर्दीय से भी उल्लिखित किया जाता है। इस नाम का तात्पर्य निवास-स्थान से हो यह माना जाता है। पतंजलि का उल्लेख फणि तथा शेष नाम से भी किया जाता है। उसका आधार यह विश्वास (परम्परागत-प्रसिद्धि) माना जाता है कि वे सहस्र फण-धारी भगवान् सर्पराज के अवतार-स्वरूप थे।

उपवर्ष ने जैमिनि तथा बादरायण के सूत्रों पर एक प्राचीन वृत्ति (व्याख्या) लिखी है। वेदान्त देशिक के वचनानुसार उनका गोत्रनाम बोधायन था। वेदान्त साहित्य में उन्हें इन दोनों नामों से उल्लिखित किया गया है।

विशिष्टाद्वैतियों के प्रसिद्ध वाक्यकार के तीन नाम थे—ब्रह्मनन्दिन, टंक तथा आत्रेय। संभवतः प्रथम उनका वास्तविक नाम था, द्वितीय उनका विनोद-नाम था तथा तृतीय उनका गोत्र-नाम था।

मीमांसा-वार्तिक के प्रसिद्ध ग्रन्थकार कुमारिल का एक आश्चर्यजनक विनोद नाम था—तुतातिल। इस विनोद-नाम की उत्पत्ति का कारण रूप-परिवर्तनात्मक प्रवृत्ति है, जिसके कारण व्यंजनों को दन्त्य स्थानीय बनाकर सब व्यंजनों के स्थान में दन्त्य 'त' रखकर रूप-परिवर्तन किया गया है। प्राचीन भारत में यह एक साधारण

सी प्रवृत्ति पाई जाती है । कारण, राजशेखर ने अपने नाटक बालरामायण का नाम उसकी प्रस्तावना में 'ताततातातातम्' दिया है।

कुमारिल के शिष्यों में, प्रभाकर-सम्प्रदाय के परमाचार्य प्रभाकर गुरु अपर-नाम से भी विख्यात थे। विश्वरूप ने जब सन्यास धारण किया और शंकराचार्य का शिष्यत्व स्वीकार किया तब उनका सन्यासी नाम सुरेश्वर पड़ा । भट्टोम्बक से नाटककार के रूप में भवभूति नाम प्रसिद्ध हुआ ।

धर्मशास्त्र के प्रसिद्ध पद्यात्मक ग्रन्थ याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रणेता याज्ञवल्क्य का योगीश्वर अपर-नाम भी था ।

शैव धर्म-ग्रन्थों में सन्त अप्पर के अपर-नाम थे वागीश तथा तिरुनावुक्करशु । ये दोनों एक दूसरे के अनूदित पर्याय हैं। श्री वैष्णव धर्म-ग्रन्थों में नम्माकवार के कारिमारन, परांकुशन तथा शठकोपन अपर-नाम सुने जाते हैं। नम्माकवार के इन तीन नामों में प्रथम उनके पितामह के नाम मारन तथा पिता के नाम कारि पर आधारित है । द्वितीय प्रतिष्ठासूचक है जिसे पिता के आश्रय-दाता राजा परांकुश ने पुत्र (नम्माकवार) को प्रदान किया था। तृतीय नाम संस्कृत नाम है जो श्री वैष्णव धर्म पर लिखे गए संस्कृत साहित्य में नम्माकवार को दिया गया था। सिद्धित्रय तथा अन्य अनेक ग्रन्थों के प्रणेता यामुनाचार्य आकवन्तार अपने तामिल अपर-नाम से भी विख्यात थे । विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य, भाष्यकार, रामानुज लक्ष्मणमुनि अपर नाम से भी विख्यात हैं और ये दोनों नाम अनूदित पर्याय स्वरूप हैं। वेदान्त देशिक का दूसरा नाम वेदान्ताचार्य है। उनका तीसरा नाम भी है—वेकंट-नाथ। प्रथम दोनों नाम धर्माचार्य के रूप में दिए गए हैं । तृतीय नाम उनका वास्तविक नाम है। इसी नाम से उनके काव्य ग्रन्थों में उनका उल्लेख है।

प्रसन्नराघव नाटक के प्रणेता जयदेव और न्यायशास्त्र सम्बन्धी के ग्रन्थ मण्यालोक के रचयिता पक्षधर मिश्र अभिन्न हैं ।

शाकंर भाष्यों के प्रसिद्ध मर्मज्ञ आनन्दगिरि के आनन्दज्ञान तथा जनार्दन ये दो अवान्तर नाम थे। प्रथम दो नाम उन्होंने संन्यासी के रूप में ग्रहण किए थे। अन्तिम नाम संभवतः ऐहलौकिक था, जो उनका संन्यास धारण करने के पूर्व रहा होगा । खण्डन-खण्ड-खाद्य के टीकाकार संन्यासी आनन्दपूर्ण विद्यासागर भी कहे जाते हैं।

प्रसिद्ध कवि एवं अलंकार-शास्त्री जगन्नाथ को सामान्यतः पण्डितराज नाम से पुकारा जाता है। प्रतापरुद्र यशोभूषणके प्रणेता का वास्तविक नाम अगस्त्य

है, जबकि उन्हें इसके विरुद्ध विद्यानाथ से ही जाना जाता है। प्रसिद्ध मीमांसक विश्वेश्वर सामान्यत: अपने विनोद-नाम गागाभट्ट से विख्यात हैं।

धर्म शास्त्र-निबन्ध के एक प्रसिद्ध प्रणेता वैदिक सार्वभौम अपने तामिल नाम तोकप्पर से ही अधिक विख्यात हैं।

वर्तमान काल में, अनेक संस्कृत ग्रंथों के प्रणेता, दक्षिण भारत के सर्वप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान ब्रह्म श्री राजुशास्त्रीयर ने अपने पूर्ण नाम त्यागराजमखिन् को अपने ग्रंथकारीय नाम के रूप में ग्रहण किया है।

ग्रन्थालय वर्गीकरण तथा सूचीकरण में ग्रंथकारीय बहुनामता तथा एकनामता से सम्बन्ध विविध समस्याओं को ध्यानपूर्वक तथा सफलतापूर्वक सुलझाना चाहिए; अन्यथा हानिकर त्रुटियां उच्चतर गवेषणा कार्य को विफल बना देंगी। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उदाहरण असंगत न होंगे।

प्रकटार्थ विवरण नामक अद्वैत ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य पर अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण टीका है। प्रकटार्थ विवरण के वास्तविक ग्रन्थकार का नाम अब तक निर्धारित नहीं किया जा सका है। बहुधा उनका उल्लेख प्रकटार्थकार (प्रकटार्थ के प्रणेता) नाम से किया जाता है। ओरियन्टल ट्रान्सलेशन फण्ड सीरीज (प्राच्य अनुवाद निधिग्रन्थमाला) में प्रकाशित दशपदार्थ शास्त्र की भूमिका में प्रकटार्थ के प्रणेता का नाम श्रीचरण दिया है। इस उदाहरण में, विवेक-चातुर्य-पूर्ण विद्वान् यह भलीभांति समझ लेंगे कि इस विषय में एक मानसूचक पूर्व-पद को भ्रांति से वास्तविक नाम मान लिया गया है। अद्वैत ग्रन्थकार जब प्रकटार्थ के प्रणेता का उल्लेख करते हैं तब प्रकटार्थकार वाक्यांश के पूर्व श्रीचरण आदरसूचक पूर्व पद को जोड़ देते हैं। प्रकटार्थ-कार श्रीचरण नाम प्रकाशात्म श्रीचरणनाम से समरूप है। प्रकाशात्म श्रीचरण नाम प्रकाशात्मन् नाम का विस्तारित विकल्प नाम है, जो पद्मपाद के पंचपादिका ग्रन्थ पर प्रसिद्ध अद्वैत व्याख्या-विवरण के प्रणेता संन्यासी का एक अपरनाम था।

ध्वन्यालोक की व्याख्यालोचन के प्रसिद्ध प्रणेता, लोचन के लिखित ग्रन्थों की पुष्पिकाओं में महामाहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त नाम से उल्लिखित हैं। इस विस्तृत महानाम में तीन अंश हैं—"महामाहेश्वर", "आचार्य" तथा "अभिनवगुप्त" इन तीनों में से प्रथम का अर्थ है शैव सम्प्रदाय के महान् समर्थक। दूसरे का अर्थ है महान् शिक्षक तथा तीसरा ग्रन्थकार का वास्तविक नाम है। इस अंश का उत्तरार्द्ध गुप्त पितृकुलीय उपपद है। अलंकार-शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ एकावली के प्रणेता को कतिपय लिखित ग्रन्थों में "महामाहेश्वर" इस एकनामतात्मक उपाधि के द्वारा

वर्णित किया गया है। एकावली के प्रणेता का वास्तविक नाम विद्याधर है तथा इसका लोगों को ही ज्ञान नहीं है। इसके परिणाम-स्वरूप, बर्नेल द्वारा प्रकाशित तांजोर प्रासाद ग्रन्थालय (तांजोर पेलेस लायब्रेरी) सूची में निम्नलिखित अव्यवस्था दिखाई पड़ती है। उसमें पृष्ठ ५४ पर एकावली के ग्रन्थकार को "महामाहेश्वर" कवि बनाया गय है। साथ ही वहां यह भी लिखा गया है कि एकावली तथा लोचन के प्रणेता एक ही अभिन्न व्यक्ति हैं। इसके पोषण स्वरूप यह उक्ति उपस्थित की गई है कि एकावली के ग्रन्थकार के नाम के आगे "आचार्य" तथा "अभिनवगुप्त" ये दो विशेषण जोड़ दिए गए हैं।

आफ्रेक्ट ने अपनी प्रसिद्ध सूची में (पृष्ठ ४६) आनन्दतीर्थ (=मध्वाचार्य =पूर्णप्रज्ञ) को भ्रमवश आनन्दगिरि (=आनन्द ज्ञान) मान लिया है। इनमें प्रथम तो द्वैत संप्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य हैं तथा द्वितीय अद्वैत सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मर्मज्ञ हैं।

यह एक उदाहरण है जहां दो विभिन्न ग्रन्थकारों के दो विभिन्न नामों के एक-नामतात्मक अंश ने अव्यवस्था उत्पन्न कर दी है।

तांजोर प्रासाद ग्रन्थालय (तांजोर पेलेस लायब्रेरी) की नई विवरणात्मक सूची के संपुट ३ के ११७५-६ पृष्ठों पर वर्ण सं० १६७४ के नीचे रंगरामानुज को "लक्ष्मणयोगीन्द्र का शिष्य" बताया गया है। यहां एक आश्चर्यजनक भूल का उदाहरण है। इसका मूल कारण यह है कि "लक्ष्मणयोगीन्द्र" परमाचार्य भाष्यकार रामानुज के नाम का अनूदित पर्याय है, जिसे भुला दिया गया है।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थालय वर्गीकरण तथा सूचीकरण कार्य में लगे हुए ग्रन्थालयियों के मार्ग में किस प्रकार के अन्धकूप विद्यमान रहते हैं। संस्कृत साहित्य में ग्रन्थकारीय बहुनामता तथा एकनामता से उत्पन्न पूर्वोक्त कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए, अविलम्ब अनुभव सेवा के हेतु, इस प्रकरण के प्रथम अनुच्छेद के अन्त में उल्लिखित, प्रमाणिक नाम कोश की नितान्त आवश्यकता है। किन्तु जब तक वह नहीं बन जाता तब तक, ऐसी समस्याओं को सुलझाने के लिए, हमें संस्कृत के विशेषज्ञों का सहयोग लेना पड़ेगा। संस्कृत ग्रन्थों के किसी भी महत्वपूर्ण संग्रह के वर्गीकरण तथा सूचीकरण कार्य में लगे हुए ग्रन्थालयी के लिए सबसे बड़ा जो उपदेश दिया जा सकता है वह यही है कि "केवल नामों से ही वह कभी प्रभावित न हो। इसी महामन्त्र का अनुसरण कर वह सब प्रकार की विपत्तियों से अपनी रक्षा कर सकता है।

१२६ सहकार-शीर्षकम्

वरणम्

१२६ **१२१-१२५, १२९ धारा-अप्रसक्तौ आख्या-पत्रे सहकार-नाम-मात्रे च तत् शीर्षकम्।**

१२६ प्रथमाध्यायस्थाः १२१ तः १२५ पर्यन्ताः धाराः, तासाम् उपधाराश्च, १२९ धारोपधाराश्च न प्रसक्ताः स्युः चेत्, आख्या पत्रे च केवलं सहकारस्य एव नाम विद्यते चेत् तदेव शीर्षकमिति स्वीकार्यम्।

१२६ **यदि प्रथम अध्याय की १२१ से १२५ तक की धाराए तथा उनकी उपधाराएं प्राप्त न होती हों; १२९ की उपधाराएं प्राप्त न होती हों तथा आख्या-पत्र पर केवल सहकार का ही नाम दिया हुआ हो तो उसे ही शीर्षक के रूप में लिखा जाय।**

उपकल्पनम्

१२६०१ **सहकार-धर्म-सूचकम् परम्।**

१२६०२ **तत् वर्णकम्।**

१२६०३ **पृथक् वाक्यम्।**

१२६०१ सहकारस्य धर्मस्य सूचकं पदं तस्मात् सहकार-नाम्नः परं लेख्यम्।

१२६०२ तत् धर्म-सूचकं पदं वर्णकं भवति।

१२६०३ तत् वर्णकं पदं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम्।

उपकल्पन

१२६०१ **सहकार के धर्म को सूचित करने वाला पद उस सहकार के नाम के पश्चात् लिखा जाय।**

१२६०२ **वह धर्म-सूचक पद वर्णक माना जाय।**

१२६०३ **वह वर्णक-पद पृथक् वाक्य माना जाय ।**

१२६०३ सहकार के लक्षण के लिए अध्याय ०७ द्रष्टव्य है ।

१२६१ शीर्षकं १२१ धारोपधारानुरूपम् ।

१२६१ शीर्षकम् इति स्वीकृतं नाम १२१ धारां तदीयाम उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम् ।

१२६१ **शीर्षक के रूप में लिया हुआ नाम १२१ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय ।**

१२६१ **अन्य द्रष्टव्य** धारा ०३६६

उदाहरण

१. जिस पुस्तक का आख्यापत्र "हिन्दी काव्य धारा । संपादक । राहुल सांकृत्यायन हैं, उसका शीर्षक

सांकृत्यायन (राहुल). संपा.

होगा ।

२. जिस पुस्तक का आख्या पत्र "जातक । अनुवादक । आनन्द कौसल्यायन" है , उसका शीर्षक

कौसल्यायन (आनन्द). भाषा.

होगा ।

३. जिस पुस्तक का आख्यापत्र "कवियों की झांकी । Hindi Golden Treasury । संग्राहक । केदारनाथ गुप्त" है, उसका शीर्षक

गुप्त (केदारनाथ). संग्रा.

होगा ।

१२६२ सहकार-एकाधिक-प्रकारे आख्या-पत्रस्थे एकम् ।

१२६२१ पूर्व-पूर्वम् ।

१२६२ ०७ अध्याये सहकार-लक्षण परिगणितानां सहकाराणां प्रकारेषु एकाधिकः प्रकारः आख्यापत्रे विद्यते चेत् एकस्यैव प्रकारस्य सम्बद्धं नाम 'शीर्षकम्' इति स्वीकार्यम् ।

१२६२१ एकाधिकानां सहकाराणां समानबलत्वे सति सहकार-लक्षण-निर्धारितं प्राथम्यं प्रमाणत्वेन स्वीकार्यम् ।

१२६२ यदि ०७ अध्याय में सहकारों के लक्षण में परिगणित सहकारों के प्रकारों में से एक से अधिक प्रकार आख्या-पत्र में विद्यमान हों, तो केवल एक ही प्रकार से सम्बद्ध नाम को शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२६२१ यदि एक से अधिक सहकार के प्रकारों का समान बल होने के कारण विरोध हो, तो सहकार के लक्षण में निर्धारित प्राथम्य को प्रमाण माना जाय ।

१२६२१ उदाहरण

१. जिस पुस्तक का आख्यापत्र "माण्डूक्योपनिषद् । शांकरभाष्य-गौड़पादीय कारिका सहित । भाषान्तरकार । स्वामी निखिलानन्द" है, उसका शीर्षक

शंकर. भाष्य.

होगा ।

२. जिस पुस्तक का आख्या-पत्र "नार्वे की सर्वश्रेष्ठ कहानियां । आधुनिक नार्वेजियन गल्प । का प्रवेशक । एन्डर्स आँरवेक । द्वारा अनूदित । लघु कथाओं का संग्रह । ... । हन्ना एस्ट्रप लार्सेन द्वारा संपादित", उसका शीर्षक

लार्सेन (हन्ना एस्ट्रप). संपा.

होगा ।

१२६३ अखण्ड-मूल-उपगत-व्याख्या-मुख्यत्वे व्याख्याकार-नाम शीर्षकम् ।

१२६३० १२१ धारा न प्रमाणम् ।

१२६३ अखण्डेन मूलेन सहितायाम् अपि व्याख्यायां मुख्यायां सत्यां व्याख्याकारस्य एव नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२६३० व्याख्याकारस्य नाम शीर्षकम् इति स्वीक्रियते चेत् १२१ धारायाः विरोधस्य शङ्का न कार्या ।

१२६३ यदि व्याख्या अखण्ड मूल से युक्त होते हुए भी मुख्य हो, तो व्याख्याकार का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२६३० यदि व्याख्याकार का नाम शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जाय, तो उसमें १२१ धारा के विरोध की शंका न की जाय।

१२६३० उदाहरण

जिस पुस्तक का आख्या-पत्र "वेदान्त दर्शन । श्री रामानन्द सरस्वती प्रणीत—। ब्रह्मामृतवर्षिणी टीका सहित । संपादक । एस० व्यंकटराम बी० ए०, बी० एल०" हो, उसका शीर्षक

रामानन्द सरस्वती. भाष्य.

होगा।

यहां यह स्पष्ट कर देना उचित है कि आरम्भिक शब्द "श्री" तथा अन्तिम शब्द "स्वामी" ग्रन्थकार के नाम से लुप्त कर दिए गए हैं । कारण, वे केवल मानार्थक "फल्गु" शब्द हैं ।

१२७ एकाधिक-सहकार-नाम शीर्षक-उपकल्पने १२२ धारोपधारः उपमानम् ।

१२७ १२६ धारोपधारानुरूपं शीर्षकत्वेन स्वीकार्येषु सहकार-प्रकारेषु स्वीकृतस्य सहकार-प्रकारस्य एकाधिकं नाम आख्या-पत्रे विद्यते चेत् तत् शीर्षकम् १२२ धारां तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम् ।

१२७ यदि १२६ धारा तथा उसकी उपधाराओं के अनुसार शीर्षक के रूप में स्वीकार किए जाने वाले सहकार के

प्रकारों में से एक से अधिक सहकार के प्रकार का नाम आख्या-पत्र पर दिया हुआ हो, तो वह शीर्षक १२२ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय।

१२७ उदाहरण

१. जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"आधुनिक हिन्दी काव्य। नवीन प्रगति की मौलिक रचनाओं का संग्रह। संपादक। धीरेन्द्र वर्मा। तथा। रामकुमार वर्मा"

हो, उसका शीर्षक

धीरेन्द्र वर्मा तथा **रामकुमार वर्मा.** संपा.

होगा।

२. जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"गांधी जी। सम्पादक मण्डल। कमलापति त्रिपाठी (प्रधान सम्पादक)। कृष्णदेव प्रसाद गौड़। काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'। करुणापति त्रिपाठी। विश्वनाथ शर्मा (प्रबन्ध सम्पादक)"

हो, उसका शीर्षक

त्रिपाठी (कमलापति) इदि. संपा.

होगा।

३. जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"ईरान के सूफी कवि। अनुवादक। बांके बिहारी। तथा। कन्हैयालाल"

हो, उसका शीर्षक

बांके बिहारी तथा **कन्हैयालाल.** भाषा.

होगा।

१२८ आख्या-प्रथम-पदम्

१२८ प्रकृताध्याय-धारान्तर-अप्राप्तौ आख्या-प्रथम-पदं शीर्षकम्।

१२८०० उपपद-मानपदे न।

१२८००१ 'प्रथम पदम्' इति परम्।

१२८००२	तत् वर्णकम् ।
१२८००३	पृथक् वाक्यम् ।
१२८०१	सामान्यचरित-कोश, सामान्य-वर्ग, सामान्य-शास्त्र, उपयुक्त-कला, समूह-शास्त्र, अन्यतम-ज्ञान-कोशस्य अपि ।
१२८	प्रकृतस्य प्रथमस्य अध्यायस्य अन्याः धाराः शीर्षक निर्धारणे असमर्थाः स्युः चेत् आख्यायाः प्रथम-पदं शीर्षकमिति स्वीकार्यम् ।
१२८००	उपपदं मानपदं च आख्यायाः प्रथम-पदत्वेन न स्वीकार्यम्, अपि तु तस्य लोपः कार्यः ।
१२८००१	शीर्षकत्वेन स्वीकृतात् आख्यायाः प्रथमात् पदात् परं 'प्रथम-पदम्' इति लेख्यम् ।
१२८००२	तत् 'प्रथम-पदम्' इति पदं वर्णकम् इति ज्ञेयम् ।
१२८००३	तत् वर्णकं पदं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।
१२८०१	सामान्य-चरित-कोशस्य, सामान्य-वर्ग-ज्ञान-कोशस्य, सामान्य-शास्त्र-ज्ञान-कोशस्य उपयुक्त-कला-ज्ञान-कोशस्य, समूह-शास्त्र-ज्ञान-कोशस्य च आख्या-प्रथम-पदं शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।
१२८	यदि प्रकृत अध्याय की और धाराएं शीर्षक के निर्धारण करने में असमर्थ हों, तो आख्या का प्रथम पद शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जाय ।
१२८००	उपपद और मानपद को आख्या के प्रथम पद के रूप में स्वीकार न किया जाए, अपितु उसका लोप कर दिया जाय ।
१२८००१	शीर्षक के रूप में स्वीकृत किए हुए आख्या के प्रथम पद के पश्चात् 'प्रथमपद' यह लिखा जाय ।
१२८००२	वह 'प्रथमपद' वर्णक माना जाय ।
१२८००३	वह वर्णक पद पृथक वाक्य माना जाय ।

१२८०१ सामान्य-चरित-कोश, सामान्यवर्ग-ज्ञान-कोश, सामान्य-शास्त्र-ज्ञान कोश, उपयुक्त कला-ज्ञान-कोश तथा समूह-शास्त्र-ज्ञान-कोश के आख्या में आए प्रथम पद को शीर्षक के रूप में लिया जाय।

१२८०१ अन्य द्रष्टव्य ०३६६.

उदाहरण

ऋग्वेद. प्रथमपद.

१२८१ आख्या-पत्र-इतर-स्थान-उपलब्ध-ग्रन्थकार नाम्नि तत् अपि।

१२८११ वर्णकात् परम्।

१२८१२ 'विरचित' इति नाम्नः परम्।

१२८१३ ते कोष्ठके।

१२८१३१ ग्रन्थस्थं वृत्ते।

१२८१ १२८ धारा विषयक-ग्रन्थस्य ग्रन्थकारस्य नाम आख्या-पत्रात् इतरस्मिन् ग्रन्थस्यैव क्वचन भागे उपलभ्यते चेत् तत् अपि लेख्यम्।

१२८११ तत् ग्रन्थकार-नाम वर्णकात् पदात् परं लेख्यम्।

१२८१२ तस्मात् ग्रन्थकारस्य नाम्नः परं 'विरचित' इति पदं लेख्यम्।

१२८१३ ग्रन्थकार-नाम 'विरचित' इति पदं च उभे अपि कोष्ठके लेख्ये।

१२८१३१ ग्रन्थकार-नाम ग्रन्थे एव उपलभ्यते चेत् तत् वृत्त-कोष्ठके लेख्यम्।

१२८१ यदि १२८ धारा सम्बन्धी ग्रन्थ के ग्रन्थकार का नाम

आख्या-पत्र से इतर अन्य किसी स्थान में उपलब्ध हो, तो वह भी लिखा जाय ।

१२८११ वह ग्रन्थकार का नाम वर्णक पद के पश्चात् लिखा जाय ।

१२८१२ उस ग्रन्थकार के नाम के पश्चात् 'विरचित' यह पद लिखा जाय ।

१२८१३ ग्रन्थकार का नाम तथा 'विरचित' यह दोनों पद कोष्ठक में लिखे जायं ।

१२८१३१ यदि ग्रन्थकार का नाम ग्रन्थ में ही उपलब्ध हो, तो वह वृत्त-कोष्ठक में लिखा जाय ।

१२८१३१ उदाहरण

विलियम. प्रथमपद. (सी. डी. ब्रॉड विरचित).

प्रस्तुत पुस्तक में आख्या-पत्र पर केवल
"विलियम अर्नेस्ट । जॉनसन । १८५८-१९३१"
इतना ही दिया हुआ है ; किन्तु ग्रन्थकार का नाम पुस्तक के अन्त में दिया हुआ है ।

१२८१३२ बहिःस्थं ऋजौ ।

१२८१३२ ग्रन्थकार-नाम ग्रन्थात् बहिः उपलभ्यते चेत् तत् ऋजु कोष्ठके लेख्यम् ।

१२८१३२ यदि ग्रन्थकार का नाम ग्रन्थ से बाहर उपलब्ध हो तो वह ऋजु-कोष्ठक में लिखा जाय ।

१२८१३२ उदाहरण

लिसि. प्रथमपद. [श्रीमती ई. सी. गास्केल विरचित].

१२९१ जटिलता:

१२९१ वचनानां वक्तृ-नाम शीर्षकम् ।

१२९१ वचनानां सम्बन्धे, यस्य जनस्य वचनानि संगृहीतानि भवन्ति तस्य नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२९१ **प्रवचनों के सम्बन्ध में, जिस व्यक्ति के प्रवचनों का संग्रह किया गया हो उसका नाम शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जाय ।**

१२९१ उदाहरण

१. जिस पुस्तक का आख्या-पत्र—

"गांधी-वाणी । [विषय और काल क्रम से चुनी हुई गांधीजी की सूक्तियां] । संग्राहक एवं सम्पादक । श्री रामनाथ 'सुमन' "

है, उसका शीर्षक

गांधी (मोहनदास करमचन्द).

होगा ।

२. इसी प्रकार, जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"श्री रामकृष्ण वचनामृत । (श्री 'म') । अनुवादक । पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' "

है, उसका शीर्षक

रामकृष्ण.

होगा ।

१२९१७१ एक - एकाधिक - व्यक्ति - अन्योन्य - सन्देश-पत्राणाम् एकनाम शीर्षकम् ।

१२९१७१ एकस्य एकाधिकानां च व्यक्तीनाम् अन्योन्यं लिखितानां सन्देश पत्राणाम् एकस्या एव व्यक्तेः नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२९१७१ **किसी व्यक्ति द्वारा, दो अथवा अधिक व्यक्तियों के साथ किए गए पत्र व्यवहार के सम्बन्ध में उसी व्यक्ति का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।**

१२९१७१ उदाहरण

जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"बापू के पत्र"

हो, उसका शीर्षक

गान्धी (मोहनदास करमचन्द).

होगा।

१२९१७२ व्यक्ति-द्वयस्य उभयम् ।

१२९१७२ उभयोः व्यक्त्योः अन्योन्यं लिखितानां पत्राणाम् उभयोः एव व्यक्त्योः नामनी शीर्षकम् इति स्वीकार्ये ।

१२६१७२ **दो अथवा दो ही व्यक्तियों के बीच परस्पर किए गए पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में दोनों व्यक्तियों के नामों को शीर्षक के रूप में लिया जाय।**

१२९१७२ उदाहरण

जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"गांधी-जोशी-पत्र-व्यवहार। (६ मई १९४४ से २४ मई १९४५ तक)"

हो, उसका शीर्षक

गांधी (मोहनदास करमचन्द) तथा जोशी (पूरन चन्द्र).

होगा।

१२९८ आख्या-अन्तः-समावेशित-व्यष्टि-ग्रन्थकार-नामत्वे तत् शीर्षकम् ।

१२९८० आख्यायां न ।

१२९८१ मूल-कृति-आत्यन्तिक-विभिन्न-स्वतन्त्र-कृति-कल्प-आवृत्ति-संशोधने तत् न ।

१२९८२ सम्पादक-नाम-शीर्षकम् ।
१२९८३ संशोधक-नाम वा ।
१२९८४ १२६-१२७ धारोपधाराः प्रमाणम् ।
१२९८५ आख्याङ्क-व्यष्टि-ग्रन्थकार-नाम तत्र एव ।

१२९८ व्यष्टि-ग्रन्थकारस्य नाम आख्यायाः अन्तर्भागे समावेशितं चेत् तत् पृथक्कृत्य शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२९८० तत् व्यष्टि-ग्रन्थकारस्य नाम पुनः आख्यायां न लेख्यम् ।

१२९८१ ग्रन्थस्य नवीना आवृत्तिः संशोधनं वा मूलकृतेः अत्यन्तं विभिन्नम्, अतएव च स्वतंत्राकृतिः एव परिगणनीयं चेत् मूल-भूतस्य व्यष्टि - ग्रन्थकारस्य नाम शीर्षकम् इति न स्वीकार्यम् ।

१२९८२ १२९८१ धारायाः अवकाशे, आवृत्तौ च मूलात् अत्यन्तं विभिन्नायां, सम्पादकस्य नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२९८३ १२९८१ धारायाः अवकाशे, संशोधने च मूलात् अत्यन्तं विभिन्ने, संशोधकस्य नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

१२९८४ शीर्षकस्य निर्धारणे उपकल्पने च १२६-१२७ धारे, तयोः उपधाराः १२६-१२७ धारा च प्रमाणम् ।

१२९८५ आख्यायाः अन्तर्भागे समावेशितं व्यष्टि-ग्रन्थकार नाम पृथक् न कार्यम्, अपि तु आख्यायाम् एव स्थाप्यम् ।

१२९८ यदि व्यष्टि-ग्रन्थकार का नाम आख्या के बीच समाविष्ट कर दिया गया हो, तो उसे निकाल कर शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२६८० उस व्यष्टि-ग्रन्थकार के नाम को फिर आख्या में न लिखा जाय ।

१२६८१ यदि ग्रन्थ की नवीन आवृत्ति अथवा संशोधन मूल से इतना अधिक विभिन्न हो कि उसे स्वतन्त्र कृति ही मानें, तो मूलभूत व्यष्टि-ग्रन्थकार के नाम को शीर्षक के रूप में स्वीकार न किया जाय ।

१२६८२ यदि १२६८१ धारा की प्राप्ति हो, तथा आवृत्ति मूल से अत्यन्त विभिन्न हो, तो सम्पादक का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२६८३ यदि १२६८१ धारा की प्राप्ति हो, तथा संशोधन मूल से अत्यन्त विभिन्न हो, तो संशोधक का नाम शीर्षक के रूप में लिया जाय ।

१२६८४ शीर्षक के निर्धारण तथा उपकल्पन के लिए १२६-१२७ धारा एवं उसकी उपधाराएं प्रमाणस्वरूप मानी जायं।

१२६८५ आख्या के अन्तर्भाग में समावेशित व्यष्टि-ग्रन्थकार का नाम पृथक न किया जाय, अपितु आख्या में ही रखा जाय ।

१२६८५ उदाहरण

१. जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"भूषण-ग्रन्थावली । सम्पादक । श्यामबिहारीमिश्र । तथा शुकदेव बिहारी मिश्र"

हो, उसका शीर्षक

भूषण.

होगा ।

२. जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"कौटिलीय अर्थ शास्त्र । अनुवादक । उदयभानु सिंह"

हो, उसका शीर्षक

कौटिल्य.

होगा ।

१३ आख्या अनुच्छेदः

१३ आख्या-अनुच्छेदे एक-द्वि-त्रि-भागाः ।

१३००१ अनु-आख्या-पत्र-सूचनं, भाग-निर्धारणम् ।

१३००२ यथा—

१ आख्या;

२ सह-ग्रन्थकार-इतर - सहकार सम्बद्ध सूचनम् ; ‡

३ आवृत्ति-विवरणं च ।

१३०१ आद्य-भागौ एक-वाक्यम् ।

१३०२ अन्त्यः द्वितीयम् ।

१३ आख्या-अनुच्छेदे एकः, द्वौ, त्रयो वा भागाः भवन्ति ।

१३००१ भागानां निर्धारणम् आख्या-पत्रे विद्यमानं सूचनम् अनुसृत्य कार्यम् ।

१३०१ आद्यौ द्वौ भागौ प्रथमं वाक्यं भवति ।

१३०२ अन्त्यः भागः द्वितीयम् वाक्यम् भवति ।

१३ आख्या-अनुच्छेद में एक, दो या तीन भाग होते हैं ।

१३००१ भागों का निर्धारण आख्या-पत्र में विद्यमान सूचन का अनुसरण कर किया जाय ।

१३००२ वे भाग निम्नलिखित हैं :—

१ आख्या;

२ सह-ग्रन्थकार से अन्य सहकार से सम्बद्ध सूचन; तथा

३ आवृत्ति का विवरण ।

१३०१ पहले दो भागों का एक वाक्य होता है ।

१३०२ अन्तिम भाग दूसरा वाक्य होता है ।

१३०२ आख्या-पत्र पर साधारणतः निम्नलिखित में से एक या अधिक वस्तुएं पाई जाती हैं :—

१. उस ग्रन्थमाला का नाम जिसमें वह पुस्तक छपी हो, तथा उसके सम्पादक का (सम्पादकों के) नाम;

२. आख्या;

३. ग्रन्थकार का (ग्रन्थकारों के) नाम तथा उसकी (उनकी) योग्यताएं, प्रतिष्ठा-पद इत्यादि;

४. टीकाकार, सम्पादक इत्यादि के नाम तथा उनकी प्रातिस्विक योग्यताएं आदि, और उनके स्वरूप का वर्णन अथवा विशदीकरण;

५. भूमिका, उपोद्घात, परिशिष्ट इत्यादि सहायक अंशों के लेखक तथा उसकी प्रातिस्विक योग्यताएं आदि;

६. आवृत्ति का निर्धारण;

७. चित्रों के विषय में सूचना;

८. आदर्श-वाक्य तथा मुद्रक अथवा प्रकाशक का विशिष्ट मुद्रा-चिन्ह ; तथा

९. मुद्रण समंकन ।

एंग्लो अमेरिकन कोड "आख्यादि" नामक अनुच्छेद में "(१)" और "(८)" को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं को यथावत् देने का निरूपण करता है तथा उन छोड़े हुए "(१)" और "(८)" के लोप का भी त्रिबिन्दुओं "..." द्वारा सूचन कराने का निर्देश देता है। इसका निदान बहुत कुछ तो पूर्ण ग्रन्थ-सूचीय विवरण का स्थायी प्रभाव है। उसका उल्लेख इस अध्याय की धारा १ की व्याख्या में किया जा चुका है। ग्रन्थ सूचीय आदर्श से कुछ अंशों में और अधिक वैषम्य उस अवस्था में होता है जब हम "(३)" को भी लुप्त कर दें तथा उसके लोप का सूचन "..." द्वारा कर दें। इससे भी अधिक सारल्य उस अवस्था में हो सकता है जब हम "(५)" को भी लुप्त कर दें। हां, इस बात का ध्यान रखें कि उसके द्वारा परिगृहीत सहायक अंश अधिक महत्त्व का न हो। इसी अवस्था में इसका लोप किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

किन्तु पुरा-मुद्रित तथा असाधारण दुर्लभ अथवा वैचित्र्य से समन्वित ग्रन्थों की तो बात और है। परन्तु साधारण ग्रन्थों के सम्बन्ध में आख्या-पत्र के प्रति इतनी अधिक अन्धविश्वासपूर्ण आदर-भावना उचित नहीं है। ग्रन्थ-सूचीय परम्परा तथा अन्ध-श्रद्धा के कारण रुक-रुक कर, हिचकिचाहट-भरे, अंशतः दूरी भाव से भी काम नहीं चल सकता। इन दोनों बातों का अस्तित्व मिटाना पड़ेगा। उन्हें हटाकर

उनके स्थान में सूचीकार को ग्रन्थ सूचीकार के परतन्त्रता के पाश को तोड़ना पड़ेगा तथा अपनी स्वतन्त्रता साहस-भरे शब्दों में घोषित करनी पड़ेगी। यदि ग्रन्थालय-सूची के लक्ष्य का विचार किया जाय तो यह अवश्यमेव स्वीकार करना पड़ेगा कि और सब बातों के समान होने पर वही आख्यादि सर्वश्रेष्ठ माना जायेगा जो एक दृष्टि में गोचर हो सके। इस तत्व को ध्यान में रखते हुए तथा धारा १ की व्याख्या में "(६)" के विषय में जो कुछ कहा गया है उसे विचारते हुए यह कल्प आख्यादि में अंशदान करने के अधिकार को सामान्यतः केवल "(२)," "(४)" तथा "(६)" को ही देगा। केवल असाधारण परिस्थितियों में ही उस अधिकार को "(५)" तक फैला सकेगा। इसके अतिरिक्त, वह ग्रन्थ-सूचीय दासता के बन्धन को तोड़ देगा तथा अन्य अंशों के लोप को बिन्दुओं अथवा अन्य किसी प्रकार से सूचित करने के लिए भी निषेध करेगा।

इतना ही नहीं, यह दो कदम और आगे बढ़ेगा तथा यदि आवश्यक हुआ तो आख्या पर भी कतरनी चलायगा। कटर ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में कहा है :—

"बहुत सी आख्याएं ऐसी होती हैं जो देखने में तो गज भर लम्बी होती हैं, किन्तु अर्थ-व्यंजना में भली भांति चुने हुए दो शब्दों की भी बराबरी नहीं कर सकतीं।"

१३१ आख्या

१३१००१ आद्य-भागे ग्रन्थ-प्रतिपाद्य-प्रवृत्ति-इतर-विषय-सम्बन्ध-प्रदर्शक-उद्धरण-सुबोध-साधक-आख्या-संगत-अंशस्य प्रतिलिपिः।

१३१००२ लिप्यन्तर-करणं वा।

१३१००३ संगतांशस्य सुबोध्यत्वम्।

१३१००४ संगतांश-वरणे ग्रन्थ-प्रतिपाद्य-प्रवृत्ति-इतर विषय--सम्बन्ध-प्रदर्शक-पद-लोपो-न।

१३१००५ आख्या-पत्र-ऋजु-कोष्ठकस्य कोणम्।

१३१००१ आद्य-वाक्यस्य प्रथमे भागे, ग्रन्थस्य प्रतिपाद्यस्य विषयस्य, प्रवृत्तेः इतर-विषयैः सह सम्बन्धस्य

च प्रदर्शकस्य, उद्धरणस्य सुबोध्यतायाः साधकस्य च आख्यायाः संगतस्य अंशस्य प्रतिलिपिः कार्या ।

१३१००२ आख्या-पत्रे ग्रन्थालय-इष्ट-इतर-लिपिके इष्ट-लिप्यां लिप्यन्तर-करणं कार्यम् ।

१३१००३ यस्य संगतांशस्य प्रतिलिपिः क्रियते तस्य सुबोध्यत्वं भाव्यम् ।

१३१००४ संगतांशस्य वरणे ग्रन्थस्य प्रतिपाद्यस्य विषयस्य, प्रवृत्तेः, इतर विषयैः सह सम्बन्धस्य च प्रदर्शकानां पदानां लोपो न कार्यः ।

१३१००५ आख्या-पत्रे ऋजु-कोष्ठकं चेत्, तत् च आवश्यकं चेत्, तत् परिवर्त्य कोण-कोष्ठकं कार्यम् ।

१३१००१ प्रथम वाक्य के प्रथम भाग में, ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय, प्रवृत्ति तथा दूसरे विषयों के सम्बन्ध प्रदर्शन करने वाले तथा उद्धरण की सुबोध्यता के साधन करने वाले आख्या के संगत (उचित) अंश की प्रतिलिपि होती है ।

१३१००२ यदि आख्या-पत्र इष्ट से अन्य लिपि में हो तो इष्ट लिपि में लिप्यन्तरकरण कर लिया जाय ।

१३१००३ जिस संगत अंश की प्रतिलिपि की जाय वह सुबोध्य होना चाहिए ।

१३१००४ संगत अंश के वरण में ग्रन्थ के प्रपिपाद्य विषय, प्रवृत्ति तथा दूसरे विषयों से सम्बन्ध के प्रदर्शक पदों का लोप न किया जाय ।

१३१००५ यदि आख्या-पत्र पर ऋजुकोष्ठक हो और वह आवश्यक हो, तो उसे परिवर्तित कर उसको कोण-कोष्ठक बना दिया जाय ।

१३१००५ आख्या-लेखन की शैली के लिए द्रष्टव्य धाराएँ ०३२,०३२१ तथा ०३७-०३७३ ।

धारा १३०१ के नीचे दी हुई व्याख्या के अन्तिम अनुच्छेद का अर्थ यह नहीं है कि सूचीकार को उन्मुक्त स्वच्छन्दता मिल गई है और वह आख्या को तुच्छ दृष्टि से देखे और उसके साथ चाहे जैसा खिलवाड़ करे। इस बात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि आख्या ग्रन्थ का नाम है तथा जैसा कि कटर ने अपनी अनुपम प्रतिपादन शैली में कहा है, "उसे धारा सभा की विधि के अनुमोदन के बिना कदापि न बदलना चाहिए।" हमारी आवश्यकताएँ हमें बाध्य करती हैं कि हम उसे संक्षिप्त करें। किन्तु कोई भी आवश्यकता हमें इस बात के लिए बाध्य नहीं करती कि हम उसमें कुछ जोड़ दें अथवा उसमें से कुछ घटा दें और पाठक को यह भी नहीं बताएं कि हमने ऐसा किया है। द्रष्टव्य धाराएं १३१२ तथा १३१३।

संक्षेपण तथा वर्धन की कला चातुर्य तथा अनुभव पर आधारित है। इसम जड़ एवं स्थिर नियम काम नहीं दे सकते। किसी प्रारम्भिक अध्येता को अस्पष्ट शब्दों में अधिक से अधिक जो कहा जा सकता है वह कटर ने संक्षेप में अपनी २२६ तथा २२७ धाराओं में बड़ी सुन्दरता से कह दिया है :—

"ऐसे फल्गु[1] पदों को तथा अनेक वर्णनात्मक पदों को लुप्त कर देना चाहिए, जो या तो आख्या[2] के अवशिष्ट अंश द्वारा, तथा जो वर्ग प्रस्तुत[3] हो उसके ग्रन्थों के चलन द्वारा, गतार्थ हो जाते हैं। साथ ही उन वर्णनात्मक वाक्यांशों को भी लुप्त कर देना चाहिए जो आख्या के महत्त्व को बढ़ाते हुए भी इतना विशिष्ट सूचन नहीं कर पाते कि उनका रखना[4] लाभदायक सिद्ध हो सके। इसके अतिरिक्त अन्य सभी अनावश्यक पदों को लुप्त कर देना चाहिए।"

१३१०१ लुप्तांशः

१३१०१   १३ धारोपधारा-अलोप्तव्य-आख्या-अनुच्छेद-समर्पक-अंश-पद-लोपः सूच्यः ।

उदा. (१) ए (प्लेन) ट्रीटाइज़ ऑन; एन (एग्जेक्ट एण्ड फुल) एकाउन्ट.

(२) "कम्पेन्डियस पाकेट डिक्शनरी" में या तो 'कम्पेन्डियस' या "पॉकिट अनावश्यक है.

(३) नेक्रोलोग (एन्त्हाल्तेन्द नाख़्रिख़्तेन फोन् देम् लेबन् मैर्क्वुर्दिगर् इन् दीज़ेम् यारे फ़ेश्तोर्बेनेर् पेर्जोनन्).

(४) "जन्म नहीं, अपितु स्वातंत्र्य-प्रेम के कारण अमरीकी द्वारा।"

१३१०११ आदि-मध्य-अन्यतर-लोपो बिन्दु-त्रयेण ।

१३१०१२ अन्त-लोपो 'इदि' इत्येतेन ।

१३१०१ १३ धारया, तस्याः उपधाराभिः वा, साक्षात् परम्परया वा, लोप्तव्येन न निर्दिष्टानि, आख्या-अनुच्छेदस्य समर्पके अंशे विद्यमानानि पदानि लोप्यन्ते चेत् तेषाम् लोपः सूच्यः ।

१३१०११ आख्या-अनुच्छेद-समर्पक-अंशस्य आदौ मध्ये वा वर्तमानानि पदानि लोप्यन्ते चेत् तेषाम् लोपः बिन्दु-त्रयेण सूच्यः ।

१३१०१२ आख्या-अनुच्छेद-समर्पक अंशस्य अन्ते वर्तमानानि पदानि लोप्यन्ते चेत् तेषाम् लोपः इदिः इति संक्षेप-रूपेण सूच्यः ।

१३१०१ १३ धारा से अथवा उसकी उपधाराओं से साक्षात् अथवा परम्परया लुप्त किए जाने के लिए जो निर्दिष्ट न किए गए हों ऐसे, तथा आख्यानुच्छेद के समर्पक अंश के पद यदि लुप्त कर दिए जायं, तो उन पदों का लोप सूचित किया जाय ।

१३१०११ आख्या-अनुच्छेद के समर्पक अंश के आदि अथवा मध्य में विद्यमान पदों का लोप यदि कर दिया जाय, तो उनका लोप तीन बिन्दुओं (...) द्वारा सूचित किया जाय ।

१३१०१२ आख्या-अनुच्छेद के समर्पक अंश के अंत में विद्यमान पदों का यदि लोप किया जाय, तो उनका लोप 'इदि.' द्वारा सूचित किया जाय ।

१३१०१२ यहां यह स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर देना उचित है कि ग्रन्थकार (अथवा ग्रन्थकारों) के नाम का, मुद्रण-समंकन का, ग्रन्थमाला के नाम का, आदर्श वाक्यों का अथवा उद्धरणों का लोप सूचन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उपर्युक्त धारा में इसी का विधान है। इसका कारण यह है, कि ये आख्यादि

में अंशदान नहीं करते (द्रष्टव्य धारा १३ की व्याख्या)। यह वस्तु ग्रन्थकार के षष्ठ्यन्त नामों पर भी लागू होती है।

१३११ अनावश्यक-आदि-तुच्छ-मान-पद-लोपः।

१३११ आख्यायाः सुबोध्यतायै येषाम् अस्तित्वम् आवश्यकं न स्यात् तादृशानि, आदिभूतानि, तुच्छपदानि, मानपदानि च न लेख्यानि।

१३११ **आख्या की सुबोध्यता के लिए जिनका अस्तित्व आवश्यक न हो ऐसे आदि में आने वाले तुच्छ पद तथा मानपद न लिखे जायं।**

१३११ उदाहरण

निम्नलिखित आख्याओं में, वृत्तकोष्टकों में दिए हुए पदों को सरलता से हटाकर उनका लोप त्रिबिन्दु अथवा "इदि." द्वारा सूचित किया जा सकता है। साथ ही प्रवण-अक्षरों में दिए हुए भाग की सर्वथा उपेक्षा भी की जा सकती है। कारण, वह शीर्षक में अंशदान करता है :—

१. "सिन्योर पीत्रो देल्ला वाल्ले, ए नोबुल रोमन की ईस्ट-इण्डिया तथा अरेबिया डेज़र्ट में यात्रा। (जिसमें, कतिपय देशों का, साथ ही उन प्राच्य राजाओं के तथा देशों के रीति-रिवाजों का, व्यवहारों का, यातायातों का तथा धार्मिक एवं सामाजिक विधियों का यथार्थ वर्णन किया गया है) अपने मित्र सिन्योर मेरियो शिपेनो को लिखे गए प्रिय पत्रों में."

२. "सेमुअल जॉनसन (एल. एल. डी.) की जीवनी (जिसमें उसके अध्ययन तथा कृतियों का कालक्रमानुसार विवरण; उसके अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ किए गए पत्र-व्यवहार तथा वार्तालाप की परम्पराएं; उसकी रचनाओं की अनेक मौलिक कृतियाँ, जो आज तक कभी छपी नहीं; तथा जिस काल में वह समुन्नत जीवन बिता रहा था, उस पचास साल के भीतर ग्रेट ब्रिटेन के साहित्य तथा साहित्यिक महापुरुषों का विश्वचित्र प्रस्तुत है) जेम्स बॉसवेल, महाशय विरचित."

३. "अशांति में तथा उसके पार (रेज़िडन्ट मेजिस्ट्रट के द्वारा ट्रापिकल अफ्रिका में बिताए हुए अनेक वर्षों का वृत्तांत; अपने कर्तव्य-पालन के तथा बड़े-बड़े शिकार के सिलसिले में पार किए हुए भयानक मार्गों का विवरण; जन-समाज, उनके रहन-सहन के तरीके आदि का वर्णन; पशु एवं कीट-पतंगों के आश्चर्यमय जीवन का विश्लेषण), लेखक ए. डब्ल्यू, कार्डिनल, एफ० आर० जी० एस०, एफ० आर० ए० आई० डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर, गोल्ड कोस्ट, प्रणेता-"नेटिव्स ऑफ दि नार्दर्न टेरिटरीज़ ऑफ़ दि गोल्ड कोस्ट," "ए गोल्ड कोस्ट लायब्रेरी" इत्यादि. (चित्र तथा मानचित्रों से युक्त)."

कुछ भी हो, इस प्रकार की सारहीन लम्बी-चौड़ी आख्याओं का आजकल चलन कम होता चला जा रहा है।

ऊपर दी हुई पुस्तकों के प्रधान संलेख आगे दिए जाते हैं :—

---

१. र८:४:ट१ इ

बाल्ले (पीत्रो देल्ला).

ईस्ट इण्डिया तथा अरेबिया डेज़र्ट में यात्रा ··· अपने मित्र सिन्योर मेरियो शिपेनो को लिखे गए पत्रों में.

५७०५

---

२. द१११:६ड०६ वं ऊ ७

बॉसवेल (जेम्स).

सेमुअल जॉनसन की जीवनी इदि.

३३१४

---

३. र८:६५५:थ१ घ ७

कार्डिनल (एलन वोल्सी).

अशांति में तथा उसके पार इदि.

४५३१५

१३१२ सूचीकार-प्रदेय-पदं संक्षिप्तम् ।

१३१२१ आख्या-पत्र-भाषिकम् ।

१३१२२ ऋजुकोष्ठके ।

१३१२ आख्या सूचीकारेण प्रदेया चेत्, अथवा सुखावगमन-साधकस्य अतिरिक्तस्य पदस्य योगम् अपेक्षते चेत् सूचीकारेण योजितं बहिःस्थं पदं संक्षिप्तं स्यात् ।

१३१२१ सूचीकारेण योजितं तत् पदम् आख्या-पत्र-भाषायाम् स्यात् ।

१३१२२ सूचीकारेण योजितं तत् पदम् ऋजु - कोष्ठके लेख्यम् ।

१३१२ यदि आख्या सूचीकार के द्वारा दी जाने वाली हो, अथवा आख्या के सुखावगमन के लिए उसके साधक अतिरिक्त पदों के योग की अपेक्षा रखती हो, तो सूचीकार द्वारा बाहर से लगाए हुए पद संक्षिप्त हों ।

१३१२१ सूचीकार के द्वारा लगाया हुआ वह पद आख्या-पत्र की भाषा में हो ।

१३१२२ सूचीकार के द्वारा लगाया हुआ वह पद ऋजु-कोष्ठक में लिखा जाय ।

१३१२२ उदाहरणार्थ, 'आधुनिक कवि' ग्रन्थमाला के एक संपुट में आख्या-पत्र पर केवल निम्नलिखित विवरण है :—

"महादेवी वर्मा"

इस पुस्तक के लिए, यदि अधिसूचन-भाग का विचार न किया जाय तो प्रधान-संलेख यह होगा :—

द—: १ थ ०७ शं छ ६

महादेवी वर्मा.

[संग्रह].

४६६०४

१३१३ एकाधिक-अवान्तर-आख्याः सर्वाः ।

१३१३० 'वा'—प्रभृति - योजक - पद - चिह्नं यथा-स्थानम् ।

१३१३ आख्या-पत्रे एकाधिकाः अवान्तराः आख्याः स्युः चेत् ताः सर्वाः अपि लेख्याः ।

१३१३० 'वा' इति, ':' इति, अन्यद् वा योग्यं योजकं पदं चिह्नं वा यथास्थाने लेख्यम् ।

१३१३ यदि आख्या-पत्र में एक से अधिक अवान्तर आख्याएं हों, तो उन सभी आख्याओं को लिखा जाय ।

१३१३० 'व', ':' अथवा अन्य कोई योग्य योजक पद अथवा चिन्ह यथास्थान लिखा जाय ।

१३१३० **उदाहरण**

---

१. द—:१झ३२:६ घ६

द्विवेदी (रामचन्द्र).

तुलसी-साहित्य-रत्नाकर अथवा महाकवि तुलसीदास.

१५१०२

---

२. द—:१:६ढ६ छ६

रामधारी सिंह (अ. दिनकर).

मिट्टी की ओर : वर्तमान हिन्दी कविता के सम्बन्ध में आलोचनात्मक निबन्ध.

५७०६

---

१३२ सहकारः

१३२ द्वितीय-भागे १३ धारीय-द्वितीय-वर्ग-निर्दिष्ट-सूचन-प्रदायक-आख्यापत्र-संगत-अंशस्य प्रतिलिपिः ।

१३२००१ लिप्यन्तर-करणं वा ।

१३२०१ सहकार-नाम-अधिकार-अन्यतर-वर्णक-विशेषक-अन्यतर-पद-लोपः ।

१३२०२ न आनुवंशिक-विरुदस्य ।

१३२०३	**नापि 'संपा'-'भाषा'- प्रभृति-मानित - सरल-पदस्य ।**
१३२०४	**नापि च भाषान्तर-मूल-ग्रन्थ - आवृत्ति - विवरणस्य ।**
१३२१	**शीर्षक-उपयुक्त-आख्या-पत्र - एतदंश - वर्ति-नाम्नः लोपः ।**

१३२	आख्या-अनुच्छेदीयस्य प्रथम-वाक्यस्य द्वितीये भागे, १३ धारीये द्वितीये वर्गे निर्दिष्टं सूचनं येन दीयते तादृशस्य आख्यायाः संगताशंस्य प्रतिलिपिः कार्या ।
१३२००१	आख्या-पत्रे ग्रन्थालय-इष्ट-इतर-लिप्यात्मके इष्ट-लिप्यां लिप्यन्तर-करणं कार्यम् ।
१३२०१	सहकारस्य नाम्नः , अधिकारस्य वा अन्यतरस्य वर्णकस्य, विशेषकस्य वा पदस्यः लोपः कार्यः ।
१३२०२	अनुवंशिकस्य विरुदस्य तु लोपः न कार्यः ।
१३२०३	'संपा', 'भाषा' प्रभृतः मानितस्य सरलस्य पदस्य लोपः न कार्यः ।
१३२०४	यस्य मूल-ग्रन्थस्य भाषान्तरं स्यात् तस्य आवृत्ति-विषयकस्य संख्यादि-विवरणस्य लोपः न कार्यः ।
१३२१	शीर्षकार्थम् उपयुक्तस्य, आख्या-पत्रस्य एतस्मिन् अंशे विद्यमानस्य नाम्नः आख्यानुच्छेदे लोपः कार्यः ।

सहकार

१३२	**आख्या अनुच्छेद के प्रथम वाक्य के द्वितीय भाग म १३ धारा सम्बन्धी द्वितीय वर्ग में निर्दिष्ट सूचन जिसके द्वारा दिया जाय, उस आख्या के संगत अंश की प्रतिलिपि की जाय ।**
१३२००१	**यदि आख्या-पत्र इष्ट से इतर लिपि में हो, तो इष्ट लिपि में लिप्यन्तरकरण कर लिया जाय ।**

१३२०१ **सहकार के नाम अथवा अधिकार के वर्णक अथवा विशेषक पद का लोप कर दिया जाय।**

१३२०२ **आनुवंशिक विरुद का लोप न किया जाय।**

१३२०३ **'संपा.' 'भाषा.' प्रभृति मानित सरल पद का लोप न किया जाय।**

१३२०४ **जिस मूल ग्रन्थ का भाषान्तर हो उसकी आवृत्ति-विषयक संख्यादि के विवरण का लोप न किया जाय।**

१३२१ **शीर्षक के लिए काम में लाए हुए, आख्या-पत्र के इस अंश में विद्यमान नाम का आख्या-अनुच्छेद में लोप कर दिया जाय।**

१३२१ प्रधान संलेख के उदाहरण

निम्नलिखित में से कतिपय उदाहरणों के लिए धारा १३३ तथा उसके उपभेदों की पूर्व-कल्पना कर ली गई है। कारण आगे चलकर इनका पुनः अनुसंधान किया जायगा।

१. २ १५५ च ३

पारखी (रघुनाथ शतानन्द).

ग्रन्थालय शास्त्रा चा ओनामा इदि.

३७०५४

प्रस्तुत पुस्तक के आख्या-पत्र पर दो पंक्तियों में तो केवल ग्रन्थकार की उपाधि आदि दी है, तथा सहायक ग्रन्थालयी, फर्ग्यूसन कॉलेज, बाई जेरबाई वाडिया लायब्रेरी पूना' यह भी दिया गया है। इन सबका संलेख में लोप कर दिया गया है। उसका निर्देश करना कोई आवश्यक नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक में श्री. रा. रंगनाथन महोदय ने उपोद्घात लिखा है। उसके लोप का सूचन 'इदि.' द्वारा किया गया है।

२. ६०२ ड२:ढ६३लं घ३

काशी नागरी प्रचारिणी सभा.

विनीत निवेदन, सं० १६५०-१६८०.

१५४४१

प्रस्तुत पुस्तक का आख्या-पत्र निम्नलिखित है:—

"काशी नागरी प्रचारिणी सभा। का। विनीत निवेदन। (सं. १९५०-१९८०)."

संलेख में शीर्षक सूचीकार के द्वारा दिया गया है।

---

३. द१५:९शं८:१ १५२छ३

मम्मट.

काव्य प्रकाश, हरिमंगल मिश्र भाषा. आवृ. २.

५४७६८

प्रस्तुत उदाहरण में भाषान्तकार रूपी सहकार का सूचन किया गया है। साथ ही यह पुस्तक की द्वितीय आवृत्ति है। उसका भी निर्देश किया गया है।

---

४. मलं१:थ४ छ८

चतुर्वेदी (सीताराम).

शिक्षा के नये प्रयोग और विधान इदि.

५५१२५

प्रस्तुत पुस्तक का आख्या-पत्र निम्नलिखित है:—शिक्षा के नये प्रयोग। और विधान। (योरोप अमेरिका और भारत के प्रसिद्ध शिक्षाचार्यों और। शिक्षा प्रणालियों का विशद विवेचनात्मक इतिहास)। लेखक। शिक्षा-शास्त्र के आचार्य। साहित्याचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी। एम. ए. (संस्कृत, पाली, हिन्दी, प्रत्न-भारतीय इतिहास। तथा संस्कृति), बी. टी., एल. एल. बी.

यहां यह स्पष्ट ही है कि ग्रन्थकार की अति-दीर्घ उपाधियों का लोप किया गया है तथा उसका सूचन आवश्यक नहीं है। आख्या के जिस अंश का लोप किया गया है; उसका सूचन 'इदि.' द्वारा किया गया है।

---

५. ढ३१ छ९

रत्नकुमारी तथा **प्रभा वर्मा.**

आदर्श पाक विज्ञान.

५७४९७

प्रस्तुत पुस्तक की दो ग्रन्थ-कर्त्रियां हैं। अतः संलेख में दोनों के ही नाम दिये गए हैं।

यह ध्यान रहे कि यहां ग्रन्थ-कर्त्रियों के नाम के आगे दी हुई उपाधियां एवं पद आदि लुप्त कर दिए गए हैं।

६. घ ख४

वागनर (रूडोल्फ वॉन).

मेनुअल ऑफ केमिकल टेकनॉलॉजी, फर्डिनेन्ड फिशर संशो. तथा विलियम क्रुक्स द्वारा त्रयोदश जर्मन आवृ. से भाषा. तथा संपा.

११७५२

प्रस्तुत पुस्तक का आख्या-पत्र निम्नलिखित है :—

"मेनुअल ऑफ केमिकल टेकनॉलॉजी। लेखक। रूडोल्फ वॉन वागनर। सर विलियम क्रुक्स, एफ० आर० एस०। द्वारा, डॉ० फर्डिनेन्ड फिशर के द्वारा पुनः रूपान्तरित, त्रयोदश, परिवर्द्धित जर्मन आवृत्ति से अनूदित तथा संपादित। ५९६ चित्रों सहित। पुनर्मुद्रित १९०४।"

फिशर के आमुख में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संशोधन महत्त्वपूर्ण तथा व्यापक है, किन्तु वह इतना अधिक पर्याप्त नहीं है कि शीर्षक में वागनर के नाम को हटवाकर वह पद फिशर को दिलवा सके। इस उदाहरण द्वारा यह दिखाया गया है कि कम से कम विस्तृत-उक्ति के साथ-साथ, संलेख के आख्यादि अनुच्छेद को सुबोध्य बनाने के लिए कभी कभी सूचीकार को कितनी स्वच्छन्दता ग्रहण करनी पड़ती है तथा वह किस प्रकार आख्या-पत्र पर दिए हुए विवरण को सुश्रृंखल रूप में सुव्यवस्थ बनाता है।

७. छ घ८

ब्राइघम (अलबर्ट पेरि).

जियॉलॉजी, फ्रेडरिक ए. बर्ट संशो.

५२१४१

प्रस्तुत पुस्तक में आख्या-पत्र निम्नलिखित है:—

"जियॉलॉजी। लेखक। अलबर्ट पेरि ब्राइघम, एस. सी. डी., एल. एच. डी., एल. एल, डी.,। प्रोफेसर ऑफ जियॉलॉजी इन कॉलगेट युनिवर्सिटी। फ्रेडरिक ए. बर्ट, बी. एस., एफ. ए. एस. असोसिएट प्रोफेसर ऑफ जियॉलॉजी इन दि एग्रिकलचरल। एण्ड मेकानिकल कालेज ऑफ टेक्सस, द्वारा संशोधित तथा परिवर्द्धित"।

८. द—:१शंछ० छ५

सांकृत्यायन (राहुल). संपा.

हिन्दी काव्य धारा.

३५२८२

प्रस्तुत पुस्तक के आख्या-पत्र की प्रतिलिपि धारा १२६१ के नीचे उदाहरण के रूप में दी जा चुकी है।

---

९. नहं छ८

सक्सेना (बाबूराम).

सामान्य भाषा विज्ञान. आवृ. २.

५३४५६

प्रस्तुत उदाहरण में ग्रन्थकार की उपाधियों का लोप कर दिया गया है तथा 'आवृत्ति २' का भी सूचन कर दिया गया है।

---

१०. फ६६:५शं३ १५ग६

रामानन्द सरस्वती. भाष्य.

वेदान्त दर्शन, ब्रह्मामृत वर्षिणी-व्याख्या-सहित, एस. वेंकटरमण ऐयर संपा.

१७३६२

प्रस्तुत पुस्तक का आख्या-पत्र सस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में है। इसके संस्कृत अंश की प्रतिलिपि धारा १२६३ के नीचे उदाहरण १ के रूप में दी हुई है।

---

११. मः५४नं२१थ३२ च २

हेल्थ प्रोपेगेण्डा बोर्ड. मद्रास. कान्फ्रेन्स ऑफ मेडिकल इन्स्पेक्टर्स ऑफ स्कूल्स

---- प्रोसीडिंग्स इदि.

प्रस्तुत पुस्तक का आख्या-पत्र निम्नलिखित है :—

"प्रोसीडिंग्स ऑफ दि कान्फरेन्स ऑफ। मेडिकल इन्स्पेक्टर्स ऑफ स्कूल्स। उपोद्घात-लेखक। डब्ल्यु. ई. स्मिथ महाशय, एम. ए.। डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, मद्रास। हेल्थ प्रोपेगेण्डा बोर्ड। मद्रास."

प्रस्तुत उदाहरण में उपोद्घात अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। अतः उससे सम्बद्ध आख्या-पत्र के अंश के स्थान में 'इदि.' लिखा गया है।

---

१२. म३:४४:इ घ७

ग्रेट ब्रिटेन. एजुकेशन (बोर्ड ऑफ--). एडल्ट एजुकेशन कमेटी.

नेचुरल साइन्स इन् एडल्ट एज्यूकेशन.

४६३९९

प्रस्तुत उदाहरण में, आख्या-पत्र पर केवल आख्या ही दी हुई है। अतः पुस्तक में दिए हुए सूचन के आधार पर शीर्षक का पुनर्निर्माण सूचीकार को करना पड़ा है।

१३. ल २:२१ शं ढ ५८ ग ७

भारत. वायसराय तथा गवर्नर जनरल. हार्डिंज (बेरन). १९१०-१५.

स्पीचेज्.

५०३९८

प्रस्तुत पुस्तक में आख्या-पत्र निम्नलिखित है:—

"स्पीचेज् ऑफ। हिज़ एक्सेलेन्सी, दि राइट हॉन'बल। बेरन हार्डिंज फऑ पेन हर्स्ट,। जी. सी. बी., जी. एम. एस. आई., जी. सी. एम. जी., जी. एम. आइ. ई., जी. सी. वी. ओ.. आर. एस. ओ., सी. वी. ओ.। वायसराय एण्ड गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया। १९१३-१९१६."

१४. ल २१:१:थ ३ च ३

मद्रास.

मद्रास प्रेसिडेन्सी, १८८१-१९३१.

७४७२३

१५. द—:९ छ ७

मिश्र (विश्वनाथ प्रसाद).

वाङ्मय-विमर्श.आवृ. २.

५७५७३

इस उदाहरण में एकमात्र वे ही पद लुप्त किए गए हैं जो ग्रन्थकार के अधिकार-पद का सूचन करते हैं। वे शब्द हैं—"प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय।"

१६. द—:१:९ ढ० च ४

मिश्र (गणेश बिहारी) इदि.

हिन्दी नवरत्न अर्थात् हिन्दी के नव सर्वोत्कृष्ट कवि. संशो. आवृ. ४.

२२१६७

प्रस्तुत पुस्तक का आख्या पत्र निम्नलिखित है:—

गंगा पुस्तक-माला का इकत्तीसवां पुष्प

हिन्दी नवरत्न

अर्थात्

हिन्दी के नव सर्वोत्कृष्ट कवि

लेखक

गणेशबिहारी मिश्र

रावराजा रायबहादुर श्यामबिहारी मिश्र एम. ए.

रायबहादुर शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए.

चतुर्थ संस्करण

(सचित्र, संशोधित और संवर्द्धित)

उपाख्या-पत्र निम्नलिखित है :—

३१

हिन्दी-नवरत्न

संपादक

श्री दुलारे लाल भार्गव

(सुधा-संपादक)

१९९१ वि.

प्रस्तुत ग्रन्थ के ग्रन्थकार तीन हैं। अतः केवल प्रथम का नाम दिया गया है। अन्य दो का नाम लोप कर दिया गया है। लोप का सूचन 'इदि.' द्वारा किया गया है।

१३२२ सहकारौ

दो सहकार

१३२२ एक प्रकारक सहकार-नामनी।

१३२२ सहकारस्य विभिन्नेषु प्रकारेषु कस्यचन एकस्य एव प्रकारस्य सम्बद्धयोः सहकारयोः नामनी विद्येते चेत् ते उभे अपि लेख्ये।

१३२२ **सहकारों के विभिन्न प्रकारों में से किसी एक ही प्रकार से सम्बद्ध दो सहकारों के नाम दिए हुए हों, तो उन दोनों नामों को लिखा जाय।**

उदाहरण

द१५:२ ख४०:१ १५२छ५

कालिदास.

शकुन्तला नाटक, राजा लक्ष्मणसिंह भाषा. रमाशंकर शुक्ल रसाल तथा रामचन्द्र शुक्ल सरस संपा.

५२८७५

प्रस्तुत पुस्तक में एक भाषान्तरकार के अतिरिक्त. दो संपादकों के नाम हैं। अतः दोनों संपादकों का उल्लेख किया गया है।

१३२३ सहकाराः

तीन अथवा अधिक सहकार

१३२३ **बहूनां प्रथमम् ।**

१३२३० **'इदि' इति परम् ।**

१३२३ सहकारस्य विभिन्नेषु प्रकारेषु कस्यचन एकस्य एव प्रकारस्य सम्बद्धानां द्वयाधिकानां सहकाराणां नामानि विद्यन्ते चेत् तेषां केवलं प्रथमस्य एव नाम लेख्यम् ।

१३२३० तस्मात् सहकार-नाम्नः परम् 'इदि' इति लेख्यम् ।

१३२३ **सहकारों के विभिन्न प्रकारों में से किसी एक ही प्रकार से सम्बद्ध दो से अधिक सहकारों के नाम दिए हुए हों, तो उन नामों में से केवल प्रथम नाम को ही लिखा जाय।**

१३२३० **उस सहकार के नाम के पश्चात् 'इदि.' लिखा जाय।**

उदाहरण

द—: १ ज ८३ शं च०

सूरदास.

सूरसुधा, गणेश बिहारी मिश्र इदि. संपा.

प्रस्तुत पुस्तक के आख्या-पत्र पर (१) गणेशबिहारी मिश्र, (२) श्यामबिहारी मिश्र तथा (३) शुकदेवबिहारी मिश्र के नाम सम्पादक के रूप में दिए हुए हैं। अतः केवल प्रथम का नाम देकर अन्य दो का नाम लोप कर दिया गया है। लोप का सूचन 'इदि.' द्वारा किया गया है।

१३३ आवृत्तिः
आवृत्ति

**१३३ 	द्वितीयादि-सविशेषनामक- अन्यतर - आवृत्तेः उल्लेखः ।**

**१३३१ 	परतः संख्या ।**

१३३ 	द्वितीयायाः द्वितीयोत्तरायाः च विशेष-नाम्नासहितायाः च एव आवृत्तेः तृतीय-भागे अर्थात् द्वितीये वाक्ये उल्लेखः कार्यः ।

१३३१ 	आवृत्तेः संक्षिप्तात् रूपात्, "आवृ" इत्यस्मात् परम् आवृत्तेः संख्या लेख्या ।

**१३३ 	द्वितीय, अथवा द्वितीय से आगे की तथा विशेष नाम से युक्त आवृत्ति का ही तृतीय भाग अर्थात् द्वितीय वाक्य में उल्लेख किया जाय ।**

**१३३१ 	'आवृ.' इससे आगे आवृत्ति की संख्या लिखी जाय ।**

"लेखन शैली के लिए" द्रष्टव्य धारा ०३८.

उदा. आवृ. ५.

**१३३२ 	सविशेष नामक-आवृत्ति-आदि-तुच्छ - मान-पद-लोपः ।**

१३३२ 	आवृत्तिः सविशेषनामिका चेत् आदौ विद्यमानस्य तुच्छपदस्य मानपदस्य च लोपः कार्यः ।

१३३२ **यदि आवृत्ति का विशेष नाम हो तो आदि में विद्यमान तुच्छपद अथवा मानपद का लोप कर दिया जाय ।**

१३३२ उदा. शतवार्षिक आवृ.

१४ अधिसूचनम्

वरणम्

१४ अधिसूचन-अनुच्छेदः एकरूपः ।

१४००१ एकः अधिकाः वा भागाः ।

१४००२ अनु-पुस्तक-स्वरूपम् ।

१४००३ यथा——

१ माला अधिसूचनम् ; ‡
२ बहु-माला-अधिसूचनम् ; ‡
३ उद्गृहीत-अधिसूचनम्; ‡
४ आख्या-अन्तर-अधिसूचनम् ; ‡
५ उद्गृहण-अधिसूचनम् ; ‡
६ नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचनं‡ च ।

१४ अधिसूचनात्मकः अनुच्छेदः एकरूपः भवति ।

१४००१ अधिसूचन-अनुच्छेदे एकः एकाधिकाः वा भागाः भवन्ति ।

१४००२ भागानां निर्धारणे पुस्तकस्य स्वरूपं प्रमाणम् ।

१४ **अधिसूचन रूपी अनुच्छेद एक रूप होता है ।**

१४००१ **अधिसूचन के अनुच्छेद में एक अथवा उससे अधिक भाग होते हैं ।**

१४००२ **भागों के निर्धारण के लिए पुस्तक का स्वरूप प्रमाण माना जाय ।**

१४००३ **वे भाग निम्नलिखित होते हैं :—**

१ माला–अधिसूचन;

२ बहु-माला–अधिसूचन;

३ उद्गृहीत–अधिसूचन;

४ आख्या-अन्तर–अधिसूचन;

५ उद्गृहण–अधिसूचन; तथा

६ नैमित्तिक-पुस्तक–अधिसूचन ।

१४००३ जिस ग्रन्थमाला में पुस्तक छपी हो उसका उल्लेख लाभदायक है अथवा नहीं, तथा किसी पुस्तक के लिये माला निर्देशी संलेख लिखना उचित है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में सर्वदा से विवाद होता चला आ रहा है। उदाहरणार्थ, क्विन ने एक मध्यवर्ती मार्ग का सुझाव दिया है। वे कहते हैं :—

"अनुभव द्वारा यह प्रमाणित है कि इस प्रकार के संलेखों का कोई विशिष्ट व्यावहारिक मूल्य नहीं होता और कभी-कभी तो इनका सर्वथा परित्याग ही कर दिया जाता है। प्रस्तुत पुस्तक किस विशिष्ट ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुई है इस का प्रधान-संलेख में उल्लेख ही अनेक अंशों तक उद्दिष्ट प्रयोजन सिद्ध कर देता है। विशेषकर इन्टरनेशनल साइन्टिफिक जैसी ग्रन्थमाला में, जहां उन पुस्तकों के विषय इतने विभिन्न होते हैं कि न तो उनमें एकता होती है, न परस्पर कोई सम्बन्ध होता है और न कोई सामान्य धर्म ही होता है। जहां तक ऐसी ग्रन्थ-सूची अथवा अन्य ग्रन्थ-मालाओं का सम्बन्ध है एवं जहां विभिन्न पुस्तकें कुछ न कुछ अंशों में समानता रखती ही हैं, वहां तक यही कहा जा सकता है कि ऐसी ग्रन्थमालाओं का संलेखों में समावेश करना लाभदायक ही है। किन्तु उनके विषय में भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि पाठक-वर्ग तो कदाचित् ही ग्रन्थमाला के द्वार से विधिवत् अध्ययन करना चाहते हैं और न वे यही जानना चाहते हैं कि उस विशिष्ट ग्रन्थमाला में कुल कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

बेम्पटन, बायल, गिफर्ड, हिबर्ट आदि व्याख्यान-निधियों के अन्तर्गत एवं उनसे प्रकाशित ग्रन्थों को माला-शीर्षक के नीचे परिगणित कर देना संभवतः अधिक लाभदायक होगा। कारण यह है कि ये व्याख्यान-निधियां कुछ विशिष्ट सदुद्देश्य

को लेकर प्रवर्तित की जाती हैं। अतः प्रत्येक ग्रन्थ में अन्तर्वर्ती कुछ न कुछ समानता रहती ही है।"[२०]

इसी प्रश्न पर अध्याय ३ के अन्त में पुनः विचार किया गया है।

१४०१ आदि-चतुष्टय-प्रत्येकं वृत्त-कोष्ठके।†

१४०१० पृथक् वाक्यम्।

१४०५ अन्त्य-द्वय-प्रत्येकम् उद्धार-चिह्ने।

१४०१ आदि-चतुष्टयेषु अधिसूचनेषु प्रत्येकम् अधिसूचनं वृत्तकोष्ठके लेख्यम्।

१४०१० प्रत्येकम् अधिसूचनं पृथक् वाक्यम् भवति।

१४०५ अन्त्य-द्वयेषु अधिसूचनेषु प्रत्येकं अधिसूचनं उद्धार-चिह्ने लेख्यम्।

१४०१ आरम्भ के चार अधिसूचनों में से प्रत्येक अधिसूचन वृत्तकोष्ठक में लिखा जाय।

१४०१० प्रत्येक अधिसूचन पृथक् वाक्य होता है।

१४०५ अन्त के दो उद्धार-चिन्ह में लिखे जायं।

१४१ माला-अधिसूचने अंशाः षड्।

१४१०० यथा—

१ आदि-तुच्छपद-मानपद-रहित माला-नाम; †

२ अल्प-विरामः‡ ;

३ संपादक नाम, नामनी वा ; †

---

[२०] क्विन (जे. हेनरी) तथा एकाम्ब (एच. डब्ल्यु). मेनुअल ऑफ केटलागिंग एण्ड इण्डेक्सिग. पृ. १६४.

३१ 'संपा.' इति;
३२ अल्प-विरामः; ‡
४ क्रम-संख्या च ।

१४१ माला-अधिसूचने यथाक्रमं षड् अंशाः भवन्ति ।

१४१ माला-अधिसूचन में छः अंश होते हैं ।

१४१०० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ माला-नाम के आदि में तुच्छपद अथवा मानपद हो तो उसका लोप कर सर्व-प्रथम माला का नाम लिखा जाय ।
२ माला-नाम के आगे अल्पविराम किया जाय ।
३ उसके अनन्तर माला के एक सम्पादक का नाम अथवा दो सम्पादकों के नाम लिखे जायं ।
३१ सम्पादक-नाम के आगे 'संपा.' लिखा जाय ।
३२ 'संपा.' इसके आगे अल्प विराम किया जाय ।
४ अल्प विराम के आगे ग्रन्थ की माला सम्बन्धी क्रम-संख्या लिखी जाय ।

१४१०० माला के लक्षण के लिये द्रष्टव्य अध्याय ०७ ।

लेखन के स्थान तथा शैली के लिए क्रमशः धाराएं ०३२—०३२१, ०३४ तथा ०३७-०३७३ द्रष्टव्य हैं ।

१४१००१ ग्रन्थ-नाना-भाग-नैक-प्रकारक-माला-नाम्नां सर्वाधिक-सूचकं वरीयः ।

१४११ व्यक्ति-साधन-असमर्थ-माला-नाम्नः प्रकाशक-समष्टि-नाम-योगेन-व्यक्ति सिद्धिः ।

१४११०१ तदादौ ।

१४११०२ अन्ते वा ।

१४११०३ योजक-पद-विराम-चिह्नानि यथोचितम् ।

१४१००१ ग्रन्थस्य नानाभागेषु नैकप्रकारेण विद्यमानानां कस्याश्चन मालायाः नाम्नां सर्वाधिकं विवरणं यत् ददाति तादृशं नाम वरीयस्त्वेन स्वीकार्यम् ।

१४११ समष्ट्या प्रकाश्यमानायाः मालायाः नाम समष्टि-नाम्नः योगं विना व्यक्ति-साधने असमर्थं चेत् तस्याः समष्टेः नाम्नः योगेन व्यक्ति-सिद्धिः कार्या ।

१४११०१ तत् समष्टि-नाम ग्रन्थमालायाः नाम्नः आदौ यथोचितं योज्यम् ।

१४११०२ युक्ततरं चेत्, तत् समष्टि-नाम ग्रन्थमालायाः नाम्नः अन्ते यथोचितं योज्यम् ।

१४११०३ योजकं पदं विरामस्य चिन्हानि च यथोचितं योज्यानि ।

१४१००१ यदि किसी माला का नाम ग्रन्थ के नाना भागों में अनेक प्रकार से दिया हुआ पाया जाय, तो सबसे अधिक सूचना देने वाला नाम चुन लिया जाय ।

१४११ यदि कोई माला किसी समष्टि के द्वारा प्रकाशित की जाती हो तथा उस समष्टि के नाम को जोड़े बिना उस माला का नाम व्यक्ति-साधन करने में असमर्थ होता हो, तो उस समष्टि का नाम लगाकर व्यक्ति-साधन किया जाय ।

१४११०१ वह समष्टि का नाम ग्रन्थमाला के नाम के आदि में यथोचित लगाया जाय ।

१४११०२ यदि अधिक योग्य हो, तो वह समष्टि का नाम ग्रन्थमाला के नाम के अन्त में यथायोग्य लगाया जाय ।

१४११०३ योजक पद तथा विराम-चिह्न यथोचित स्थान में लगाए जायं ।

धारा १४१४१३ के अन्तर्गत दिए हुए उदाहरण १—४, ६, ९, ११ तथा १३ <u>द्रष्टव्य</u> हैं ।

१४१११ क्रम-समङ्क-रहित-ग्रन्थ-मुख्य-माला-स्व-नाम-मात्र-व्यक्ति-साधन-असमर्थ-गौण-मालात्मक-उभय-माला-नाम्नि ते ।

१४१११० यथाक्रमम् ।

१४१११०१ मध्ये अल्पविरामः ।

१४१११ मुख्य-मालायां ग्रन्थेषु क्रम-समङ्क-रहितेषु, गौण-मालायां च स्वनाम-मात्रेण व्यक्ति-साधने असमर्थायाम् ईदृश-माला-द्वयात्मक-नाम्नि सति उभयोरपि मालयोः नामनी लेख्ये ।

१४१११० उभयोः मालयोः नाम्नोः क्रमः स एव स्थाप्यः ।

१४१११०१ उभयोः नाम्नोः मध्ये अल्प-विरामः कार्यः ।

१४१११ यदि मुख्य माला के ग्रन्थ क्रम-समंक रहित हों तथा गौण माला केवल अपने नाम मात्र से व्यक्ति-साधन करने में असमर्थ हो, तो इस प्रकार की दो मालाओं से बने हुए माला-नाम के दोनों नाम लिखे जायं ।

१४१११० उन दोनों मालाओं के नामों का क्रम वही रखा जाय ।

१४१११०१ उन दोनों नामों के बीच में अल्प विराम किया जाय ।

१४१११०१ धारा १४१४१३ के अन्तर्गत दिया हुआ उदाहरण १४ द्रष्टव्य है ।

१४१३ सम्पादकयोः नामनी ।

१४१३० योजक-पदं यथास्थानम् ।

१४१३ कस्याश्चन मालायाः द्वौ संपादकौ चेत् उभयोः अपि-नामनी लेख्ये ।

१४१३० योग्ये स्थाने उभयोः नाम्नोः योजकं पदं लेख्यम् ।

१४१३ **यदि किसी माला के दो सम्पादक हों, तो दोनों के नाम लिखे जायं ।**

१४१३० **योग्य स्थान पर दोनों नामों का योजक पद लिखा जाय ।**

धारा १४१४१३ के अन्तर्गत दिया हुआ उदाहरण ८ द्रष्टव्य है ।

१४१३१ बहूनां प्रथमम् ।

१४१३११ 'इदि' इति परम् ।

१४१३१ कस्याश्चन मालायाः द्वयाधिकाः संपादकाः चेत् तेषां केवलं प्रथमस्य एव नाम लेख्यम् ।

१४१३११ तस्मात् संपादक-नाम्नः परम् 'इदि' इति लेख्यम् ।

१४१३१ **यदि किसी माला के दो से अधिक सम्पादक हों, तो उनमें से केवल प्रथम का ही नाम लिखा जाय ।**

१४१३११ **उस सम्पादक के नाम के आगे 'इदि.' यह लिखा जाय ।**

धारा १४१४१३ के अन्तर्गत दिए हुए उदाहरण १० तथा १२ द्रष्टव्य हैं ।

१४१४ प्रकाशक-निर्दिष्ट-माला-ग्रन्थ-क्रम-सूचक समङ्कः माला समङ्कः ।

१४१४ प्रकाशकेन प्रकाश्य निर्दिष्टः, मालायां ग्रन्थ-क्रमस्य सूचकः समङ्कः माला-समङ्कः ।

१४१४ **प्रकाशक के द्वारा निर्दिष्ट माला में ग्रन्थ के क्रम को सूचित करने वाला समंक माला-समंक होता है ।**

धारा १४१४१३ के अन्तर्गत दिए हुए उदाहरण २-५, १३ तथा १४ द्रष्टव्य हैं ।

१४१४१ प्रकाशक-अनिर्दिष्टत्वे अनुपरिग्रहणम् ।

१४१४१० अनु-अनुकूल-क्रमान्तरं वा ।

१४१४१ माला-समङ्के प्रकाशकेन न निर्दिष्टे, परिग्रहण-क्रमम् अनुसृत्य माला-समङ्कः लेख्यः ।

१४१४१० परिग्रहण-क्रमम् अनुसृत्य माला-समङ्क-लेखने असौकर्यं चेत् अन्यं कमपि अनुकूलम् क्रमम् अनुसृत्य माला-समङ्कः लेख्यः ।

१४१४१ यदि प्रकाशक ने माला-समंक न दिया हुआ हो, तो परिग्रहण के क्रम का अनुसरण कर स्वयं माला-समंक लगा दिया जाय ।

१४१४१० यदि परिग्रहण के क्रम का अनुसरण कर माला समंक के लिखने में असुविधा हो, तो अन्य किसी अनुकूल क्रम का अनुसरण कर माला-समंक लिखा जाय ।

धारा १४१४१३ के अन्तर्गत दिए हुए उदाहरण १, ८, १०, १५ तथा १६ द्रष्टव्य हैं ।

१४१४११ संवत्सरो वा ।

१४१४१२ संवत्सर-समङ्कौ वा ।

१४१४१३ अनुरूपम् अन्यद् वा ।

१४१४११ युक्तं चेत्, माला-समङ्क-स्थाने संवत्सरो लेख्यः ।

१४१४१२ युक्तं चेत् माला-समङ्क-स्थाने संवत्सरः समङ्कः च उभे अपि लेख्ये ।

१४१४१३ युक्तं चेत् माला-समङ्क-स्थाने पुस्तकस्य अनुरूपम् अन्यद् वा किमपि वस्तु लेख्यम् ।

१४१४११ यदि योग्य प्रतीत हो, तो माला-समंक के स्थान में संवत्सर लिखा जाय ।

१४१४१२ यदि योग्य प्रतीत हो तो माला-समंक के स्थान में संवत्सर तथा समंक दोनों लिखे जायं ।

१४१४१३ यदि योग्य प्रतीत हो तो माला-समंक के स्थान में पुस्तक के अनुरूप कोई वस्तु लिखी जाय ।

१४१४१३ उदाहरण ६, ७, ६, ११ तथा १२ द्रष्टव्य हैं।

यहां नीचे कतिपय उदाहरण दिए जाते हैं। प्रथम तीन पुस्तकें एक ही ग्रन्थमाला में छपी हुई हैं। इस प्रकार के उदाहरण का उद्देश्य यह है कि आगे चलकर ३२२४१ धारा के उदाहरण-स्वरूप उनका पुनः उपयोग किया जायगा।

---

१. २ झ०

रंगनाथन (श्री. रा.).

ग्रन्थ अध्ययनार्थ हैं. . .मुरारिलाल नागर भाषा.

(भारतीय ग्रन्थालय संघ, हिन्दी ग्रन्थमाला. १).

५६५४०

प्रस्तुत पुस्तक में आख्या के अनन्तर "ग्रन्थालय मीमांसा । प्रथम अधिकरण" नामक पद दिए हुए हैं। यहां संलेख में उनका लोप कर दिया गया है तथा उसका सूचन '. . .' द्वारा किया गया है।

---

२. २२ झ १

रंगनाथन (श्री. रा.) तथा **नागर** (मुरारिलाल).

ग्रन्थालय प्रक्रिया.

(भारतीय ग्रन्थालय संघ, हिन्दी ग्रन्थमाला, २).

५८६४०

---

३. २५५१५पंथ३४ झ२

रंगनाथन (श्री. रा.) तथा **नागर** (मुरारिलाल).

अनुवर्ग सूची कल्प.

(भारतीय ग्रन्थालय संघ, हिन्दी ग्रन्थमाला, ३),

६५३१५

---

४. २हं७ छ६

ग्रंथालय. प्रथम पद.

ग्रन्थालय आन्दोलन, विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे लेखों का संग्रह इदि.

(मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, १),

५३८६१

प्रस्तुत पुस्तक अंग्रेजी में है। यहां उसके प्रधान संलेख का हिन्दी रूपान्तर दिया गया है।

यहां प्राक्कथन तथा सन्देश आदि विषयक सूचन आख्या-पत्र पर विद्यमान है। किन्तु उनका लोप कर 'इदि.' द्वारा उस लोप का सूचन किया गया है। वे पुस्तक के तात्त्विक भाग नहीं हैं अर्थात् वे उतने अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

उपर्युक्त चारों उदाहरणों में 'हिन्दी ग्रन्थमाला' अथवा 'प्रकाशनमाला' केवल इस माला के नाम-मात्र से काम नहीं चल सकता ; अर्थात् केवल माला के नाम से माला व्यक्ति-सिद्ध नहीं हो पाती। अतः १४११ धारा के अनुसार, माला के नाम के पूर्व में उसकी प्रकाशक समष्टि का नाम जोड़ दिया गया है।

प्रथम तीन उदाहरणों में माला का नाम आख्या-पत्र पर नहीं दिया हुआ है, अपितु उपाख्या-पत्र पर दिया हुआ है। साथ ही माला-समंक भी वहीं दिया हुआ है।

किन्तु अन्तिम उदाहरण में एक विशेषता यह है कि उस पुस्तक में कहीं भी माला का नाम नहीं दिया हुआ है। हां, उस पुस्तक के अनन्तर प्रकाशित होने वाली, उस माला की अन्य पुस्तकों में इस पुस्तक का माला के प्रथम संपुट के रूप में निश्चित एवं स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। यह एक ऐसा उदाहरण है जहां सूचीकार को पुस्तक के बाहर जाने की भी छूट दी जाती है। इस अधिसूचन को लिखने के लिए वह पुस्तक से बाह्य विषयों का भी आश्रय लेता है। किन्तु ऐसे उदाहरण बहुत थोड़े ही होते हैं।

---

५. ऊ ११३ ग०

शूबेर्त (हेर्मान).

एलेमेन्तारे आरित्मातिक उन्त आल्गेब्र. औफ्ला. २.

(जाम्लुङ शूबेर्त, १).

५४९७

प्रस्तुत पुस्तक में ग्रन्थमाला का नाम आख्या-पत्र पर प्रथम पंक्ति के रूप में दिया हुआ है। साथ ही क्रम-समंक भी दिया हुआ है।

---

६. द—: ९ च ४

उपाध्याय (अयोध्यासिंह). (अ. हरिऔध).

हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास.

(पटना विश्वविद्यालय, रामदीनसिंह रीडरशिप व्याख्यान, १९३०-३१).

१९६२४

प्रस्तुत पुस्तक में आख्या-पत्र पर यह सूचित किया है कि यह कृति "बाबू रामदीन सिंह रीडरशिप के सम्बन्ध में दिए गए व्याख्यानों का संग्रह है।" आवरण-पृष्ठ पर यह प्रदर्शित किया गया है कि ये व्याख्यान १९३०-३१ वर्ष के हैं। यह आवश्यक है कि धारा १४११०३ के अनुसार, ग्रन्थमाला के नाम के पूर्व में विश्वविद्यालय का नाम लगा दिया जाय। कारण उसके लगाए बिना ग्रन्थमाला का नाम व्यक्तिसिद्ध नहीं हो पाता।

इस प्रकार के स्थल में, धारा १४१४१३ के अनुसार, क्रम-समंक को हटाकर उसके स्थान में संवत्सर-समंक लगा दिया जाय तो अधिक सुविधाजनक सिद्ध होगा।

---

७. ग २१३१ : क ४७ च१

सेन (हेमेन्द्र कुमार).

उच्च तापमान ज्वालाएं तथा उनकी तापगति.

(सुखराज राम रीडरशिप लेक्चर्स इन नेचुरल साइंस, १९२६/१९२७).

७४९३९

प्रस्तुत पुस्तक (अंग्रेजी मूल) में, आख्या-पत्र पर यह अतिरिक्त सूचन दिया है कि यह रीडरशिप व्याख्यान माला पटना विश्वविद्यालय की है। किन्तु माला का नाम इतना विशिष्ट है कि विश्वविद्यालय के नाम के लगाए बिना ही उसकी व्यक्ति-सिद्धि हो जाती है। अतः धारा १४१४१३ की यहां व्याप्ति नहीं है।

किन्तु आगे चलकर अध्याय ४ में यह दृष्टिगोचर होगा कि ग्रन्थमाला के नाम के पूर्व में विश्वविद्यालय का नाम लगाकर उसे नामान्तर-निर्देश के हेतु अवान्तर नाम के रूप में उपयोग में लाया जाना उचित है।

यहां की धारा १४१४१३ के अनुसार क्रम-समंक को हटाकर उसके स्थान में संवत्सर-समंक लगा दिया जाय तो अधिक सुविधा-जनक सिद्ध होगा।

---

८. द १५ : ९ शं ज००: १ छ५

अल्लराज.

रसरत्न प्रदीपिका. . . .रा. ना. दांडकर संपा.

(भारतीय विद्या ग्रन्थावलि, जिन विजय मुनि तथा अ. का. पुसलकर संपा., ८).

४८४५८

यहाँ पर माला का नाम तथा उसके सह-संपादकों के नाम उपाख्या-पत्र पर ही दिए हुए हैं। यहां प्रस्तुत माला के केवल दो ही संपादक हैं। अतः धारा १४१३० के अनुसार दोनों ही के नाम दिए गए हैं।

यहां आख्या-पत्र पर आख्या के अनन्तर " रसतत्त्व प्रकाशिका काव्य-शास्त्र सम्बन्धिनी सुपाठ्य-ग्रन्थ-पद्धति :। सा च विस्तृतांग्ल-प्रस्तावना-विविध-पाठान्तर परिशिष्टादिभिः समन्विता" ये पद दिए हुए हैं। संलेख में उनका लोप कर दिया गया है, कारण वे उतने आवश्यक नहीं हैं। किन्तु '. . .' तीन बिन्दुओं द्वारा उनके लोप का सूचन कर दिया गया है।

---

९. ड २५ : ४२४१ सं ८ च०

लूथवेट (रेमण्ड).

एक्स्पेरिमेन्टल ट्रॉपिकल टाइफस इन लेबोरेटरी एनिमल्स.

(बुलेटिन फ्राम दि इन्स्टीट्यूट फॉर मेडिकल रिसर्च, फेडरेटेड मेले स्टेट्स, १९३०, ३).

७०६९७

प्रस्तुत पुस्तक में ग्रन्थमाला का नाम आख्या-पत्र पर ही दिया गया है। संपुट का समंकन भी नहीं दिया हुआ है। प्रतिवर्ष विभिन्न संख्या के संपुट प्रकाशित किए जाते हैं। प्रत्येक वर्ष में प्रकाशित संपुटों को भी उनके परस्पर क्रम-समंक दिए जाते हैं। अतः क्रम-समंक "१९३०,३" इस रूप में दिया है और उसके लिए धारा १४१४१३ का अनुसरण किया गया है।

---

१०. द १३: ५ क ५८ शं १११घ७

आई जीयस.

(कृतियां), एडवर्ड सीमोर फॉस्टर भाषा.

(लोब क्लासिकल लायब्रेरी, ई. केप्स इदि. संपा., २०२).

५३४२१

यहां उपाख्या-पत्र पर ग्रन्थमाला का नाम दिया हुआ है तथा उसी के नीचे तीन संपादकों के नाम दिए हुए हैं। अतः केवल प्रथम संपादक का ही नाम दिया गया है तथा उसमें धारा १४१३११ का अनुसरण किया गया है।

११. फ ३ : प : ३६८ घ २

प्रिंगल-पेटिसन (एण्ड्र सेथ).
आइडिया ऑफ इम्मॉरटलिटि.
(गिफर्ड लेक्चर्स, युनिवर्सिटी ऑफ एडिनबरो, १६२२).

५३१०२

यद्यपि यहां पर ग्रन्थमाला के नाम में व्यष्टि-नाम भी समाविष्ट है, तथापि उससे माला व्यक्तिसिद्ध नहीं होती। कारण यह है कि लार्ड गिफर्ड के उत्तराधिकार-पत्र द्वारा चार स्कॉटिश विश्वविद्यालय केन्द्रों में पृथक् पृथक चार भाषणों के संघात चलते रहते हैं। अतः ग्रन्थमाला के नाम को व्यक्तिसिद्ध करने के लिए उसके पूर्व केन्द्र का नाम लगाना आवश्यक है।

इस प्रकार के स्थल में, क्रम-समंक को न लगाकर उसके स्थान में भाषण के वर्ष का उपयोग करना अधिक सुविधाजनक है—यह स्पष्ट ही है।

१२. भ: ४३ लं ५: घ० घ७

बण्डि (मरे राइट).
थियरी ऑफ इमेजिनेशन इन क्लासिकल एण्ड मेडीवल थॉट.
(युनिवर्सिटी ऑफ इलिनॉय, स्टडीज़ इन लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर विलियम ए. ओल्डफादर इदि. संपा. संपु. १२, अव. २–३).

इस ग्रन्थमाला में एकात्मक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। सामान्यतः वर्ष में उनकी चार संख्या होती है। किसी एक वर्ष में प्रकाशित सभी संपुटों पर वही एक संपुट-समंक होता है। किसी एक संपुट की एकात्मक पुस्तकों पर पृथक् रूप में सामान्यतः १, २, ३, तथा ४ इस प्रकार क्रम-समंक दिए जाते हैं। तथापि, कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि कोई एकात्मक पुस्तक उस सामान्य सीमा को, सामान्य आकार-प्रकार को अतिक्रांत कर जाती है तथा वह दो अवदानों का स्थान ग्रहण कर लेती है। ऊपर दिखाए हुए उदाहरण में यही घटना घटी है। अतः इस पुस्तक का माला-समंक "संपु. १२, अव. २-३" इस प्रकार के विचित्र रूप को प्राप्त करता है। इसमें धारा १४१४१३ का अनुसरण किया गया है।

१३. म १५ : ३ : ऊ १ : भ घ७

जुड (चार्ल्स हुबर्ड).

साइकॉलॉजिकल अनालिसिस ऑफ दि फण्डामेन्टल्स ऑफ अरिथमेटिक.

(युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, सप्लिमेन्टरी एजुकेशनल मोनोग्राफ्स, ३२). ४५४६८

यहां पर ग्रन्थमाला का नाम तथा अपने-अपने क्रम-समंकों से युक्त ग्रन्थमाला में प्रकाशित प्रकाशन अन्त-आवरण आन्तर तथा बाह्य भाग पर दिए हुए हैं। तालिका के शिरोभाग में "पब्लिकेशन्स आफ दि डिपार्टमेन्ट आफ एजुकेशन, दि युनिवर्सिटी आफ शिकागो" पद दिए हुए हैं। ग्रन्थमाला का केवल नाम उसे व्यक्तिसिद्ध नहीं कर पाता, अत: धारा १४११०३ के अनुसार विश्वविद्यालय का नाम ग्रन्थमाला के नाम के पूर्व जोड़ दिया गया है।

---

१४. प ४१ शं १:१ १५११ छ०

वाडेकर (आर. डी.). संपा.

मिलिन्द पंहो, देवनागरी में पालि पाठ्य इदि.

(बम्बई विश्वविद्यालय प्रकाशन, देवनागरी पालि-पाठ्यमाला, एन. के. भागवत संपा., ७).

३३०११

यदि प्रस्तुत उदाहरण में "देवनागरी पालि-पाठ्यमाला" केवल इतना ही माला-नाम दिया जाय तो वह माला का नाम सर्वथा व्यक्ति-सिद्ध नहीं हो पाता। अत: १४१११०३ धारा के अनुसार उस प्रधान माला का भी नाम दे दिया गया है जिसके अन्तर्गत यह गौण माला है। पुस्तकों के लिए प्रधान माला में कोई समंक नहीं दिए गए हैं।

माला का नाम उपाख्या-पत्र पर तथा आवरण-पृष्ठ पर भी दिया हुआ है। वहीं माला समंक भी है।

'इदि.' द्वारा आख्या-पत्र के उस अंश का सूचन है जो लुप्त कर दिया गया है।

१५. वलं४१:क५ च २

इयू (लियोनर्ड शिहिलिन).

पोलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ कॉन्फ्यूसियनिज़्म इदि.

(ब्राडवे ओरिएन्टल लायब्रेरी, क्लेमेन्ट एनरटन संपा., ३)

७४७४

यहां आख्यादि-अनुच्छेद के लिखने में आख्या-पत्र के कतिपय पदों को छोड़ दिया गया है, तथा उनका सूचन 'इदि.' द्वारा किया गया है।

१६. द १५ : १ ग ४० : १ छ५

बिल्हण.

विक्रमांकदेवचरित, मुरारिलाल नागर संपा.

(प्रिन्सेस ऑफ वेल्स, सरस्वती भवन ग्रन्थमाला, ८२).

५६३४५

प्रस्तुत पुस्तक का आख्या-पत्र आदि इस अध्याय के आरम्भ में ही दे दिया गया है।

प्रमिति :

१४१५ विश्वविद्यालयादि - समष्टि - उपस्थापित - प्रमिति-प्रकाशनानि माला ।

१४१५० तन्नाम्नि अंशाः त्रयः ।

१४१५०१ यथा—

१ विश्वविद्यालय-समष्टचन्तर-अन्यतर-नाम;

२ अल्प विराम;

३ 'प्रमितिः' इति ।

१४१५ विश्व-विद्यालयं प्रति, समष्ट्यन्तरं प्रति वा उपस्थापितानि प्रमिति-प्रकाशनानि 'माला' इति स्वीकार्याणि ।

१४१५ विश्वविद्यालय को अथवा अन्य किसी समष्टि को दिए हुए प्रमिति-प्रकाशन 'माला, समझे जायं ।

१४१५० पूर्वोक्त माला के नाम में तीन अंश होते हैं ।

१४१५०१ वे अंश निम्नलिखित होते हैं :–

१ विश्वविद्यालय अथवा अन्य समष्टि का नाम सर्वप्रथम लिखा जाय ।

२ उसके अनन्तर अल्प विराम किया जाय ।

३ उसके अनन्तर 'प्रमिति' यह पद लिखा जाय ।

१४१५०१ उदाहरण

---

१. द—: १ ज ८३ : ६ छ६

ब्रजेश्वर शर्मा.

सूरदास : जीवन और काव्य का अध्ययन.

(प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रमिति, १९४५, १).

४८४६८

प्रस्तुत पुस्तक के आख्या-पत्र पर ही इस बात का निर्देश है कि यह कृति गवेषणा प्रमिति है ।

इस प्रकार का अधिसूचन सर्वथा ऐच्छिक होता है । साधारण ग्रन्थालयों में इसकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती । किन्तु शास्त्रीय तथा विश्वविद्यालयीय ग्रन्थालयों में इस प्रकार के अधिसूचन द्वारा तथा सम्बद्ध निर्देशी संलेख में विद्यमान एवं ज्ञापित सूचन द्वारा न केवल गवेषकों को ही सहायता प्राप्त होती है, अपितु इस प्रकार के गवेषकों की सेवा करने वाले कर्तृगण को भी अत्यधिक लाभ पहुंचता है ।

---

२. द—:२ ढ८६ : ६ शं थ १०:१ झ०

जगन्नाथ प्रसाद शर्मा.

प्रसाद के नाटक का शास्त्रीय अध्ययन. आवृ. २.

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रमिति, १९४३, १).

५८१६६

प्रस्तुत पुस्तक के आख्या-पत्र पर ही यह सूचित कर दिया गया है कि यह कृति गवेषणा-प्रमिति है। प्रमिति के वर्ष की जानकारी भूमिका से प्राप्त होती है। किसी भी विरुद्ध कारण के न रहने से, इसे १६४३ में समर्पित एवं प्रकाशित प्रमितियों में से सं. १ यह चिन्ह लगा दिया गया है।

१४१६ कल्पित-माला

१४१६ **प्रति-सम्पुट-सविशेष-आख्या युक्त-सामूहिक--आख्या-निर्धारण-एकता-अन्यतर-युक्त-बहुसंपुटक-पुस्तक-इतर-प्रकाशक-मालेय-भिन्नः पुस्तक-संघातः कल्पित-माला।**

१४१६१ **सामूहिक-आख्या तन्नाम।**

१४१६२ **निर्धारण-एकता वा।**

१४१६ प्रतिसंपुटं सविशेषया आख्यया युक्तः, सामूहिकया आख्यया निर्धारणस्य एकतया वा युक्तः, बहु-संपुटकान् पुस्तकात् इतरः, प्रकाशक मालेयात् पुस्तक-संघातात् भिन्नः, पुस्तकानां संघातः 'कल्पित माला' इति उच्यते।

१४१६१ सा सामूहिक-आख्या तस्याः कल्पितमालायाः नामत्वेन स्वीकार्या।

१४१६२ निर्धारणस्य एकता वा तस्याः कल्पित-मालायाः नामत्वेन स्वीकार्या।

१४१६ प्रत्येक संपुट के लिए विशिष्ट आख्या से युक्त, सामूहिक (सबकीएक)आख्या अथवा निर्धारण की एकता से युक्त, बहु-संपुट वाली पुस्तक से अन्य, प्रकाशक की माला के पुस्तक संघात से भिन्न पुस्तकों का संघात, 'कल्पित माला' कहा जाता है।

१४१६१ **वह सामूहिक आख्या उस कल्पित माला के नाम के लिए की जाय ।**

१४१६२ **अथवा वह निर्धारण की एकता स्वीकृत की जाय ।**

१४१६२ उदाहरण

---

१. क ५ च ३

ग्रिम्ज़ेल (ई.).

ऑप्टिक्स . . . एल. ए. वुडवर्ड . . . भाषा.

(ग्रिम्ज़ेल (ई.) : टेक्स्ट बुक ऑफ फिज़िक्स, आर. टोमाशोक संपा., ४).

८१३७६

प्रस्तुत पुस्तक ५ संपुटों वाले संघात का एक अवयव है । उस संघात में यह चौथा संपुट है । प्रत्येक संपुट के आख्यापत्र पर, माला अधिसूचन में दी हुई सामान्य आख्या पाई जाती है । संपुटों की कोई सामान्य निर्देशी नहीं है । यदि प्रत्येक संपुट के साथ उसके स्वीय विशिष्ट विषय के आधार पर व्यवहार किया जाय, अर्थात् उनका वर्गीकरण, सूचीकरण तथा फलक-व्यवस्थापन उनके अपने-अपने प्रतिपाद्य विषय के अनुसार कर उन्हें पृथक्-पृथक् पुस्तक के रूप में माना जाय, तो उसी अवस्था में ग्रंथालय शास्त्र के सूत्रों की विशिष्ट सेवा हो सकेगी । साथ ही सूची में भी ऐसी कोई व्यवस्था होनी ही चाहिए कि पाठक संघात के सभी संपुटों को शीघ्रता से पा सके तथा सभी आख्याओं पर एक साथ दृष्टिपात कर सके । इसी उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए कल्पित माला–अधिसूचन दिया जाता है । कारण, उसके फलस्वरूप एक अतिरिक्त संलेख लिखा जायगा जिसके शिरोभाग में माला का नाम दिया होगा तथा उसके नीचे संघात के सभी संपुट उनके क्रमानुसार दिए होंगे ।

---

२. द१४२ : ३ द २८ : १ १११घ ८

टॉल्स्टाय (लियो).

चाइल्डहुड, बॉयहुड एण्ड यूथ,

(वर्क्स ऑफ लियो टॉलस्टाय, शतवार्षिक आवृ. ३).

४६८३४

प्रस्तुत पुस्तक २१ संपुटों वाले संघात का एक अवयव है। उस संघात में यह चौथा संपुट है। प्रत्येक संपुट की संपुटक आख्या में 'वर्क्स ऑफ लियो टॉल्स्टाय' यह निर्धारण तथा क्रम-समङ्क पाया जाता है। अन्तिम संपुट के पृ. ५०५ पर संपुटों के क्रम-समंक भी दिए हुए हैं। संघात में कोई सामान्य निर्देशी नहीं है। इसमें टॉल्स्टाय के चरित, नाटक, उपन्यास तथा गद्य काव्य सभी कुछ संगृहीत है। यदि प्रत्येक संपुट के साथ उसके स्वीय विशिष्ट विषय के आधार पर व्यवहार किया जाय, अर्थात् उनका वर्गीकरण, सूचीकरण तथा फलक व्यवस्थापन उनके अपने-अपने प्रतिपाद्य विषय के आधार पर किया जाय और उन्हें पृथक् पृथक् पुस्तक के रूप में माना जाय तो उसी अवस्था में ग्रन्थालय शास्त्र के सूत्रों की विशिष्ट सेवा हो सकेगी। साथ ही सूची में भी ऐसी कोई व्यवस्था होनी चाहिए कि पाठक को संघात के सभी संपुट एक साथ प्राप्त हो सकें तथा वह सभी आख्याओं पर एक साथ दृष्टिपात कर सके। सूची उस उद्देश्य को इसी पूर्वोक्त कल्पित-माला-अधिसूचन द्वारा सिद्ध कर सकती है। कारण इसके फलस्वरूप अनुवर्ण भाग में एक और अतिरिक्त संलेख लिखना पड़ेगा, जिसके शिरोभाग में माला का नाम दिया होगा तथा उसके नीचे संघात के सभी संपुट उनके क्रमानुसार दिए होंगे। इसके अतिरिक्त एक नामान्तर निर्देशी संलेख भी लिखा जायगा। जो व्यक्ति 'टॉल्स्टाय' (लियो) कृतियां' इसे देखेंगे उन्हें वह संलेख 'वर्क्स ऑफ लियो टॉल्स्टाय' की ओर देखने के लिए संकेत करेगा।

---

३. फ६६ : ५ शं १ १५ ग०.१–३

शङ्कर.

ब्रह्मसूत्र भाष्य, ३ संपु.

(वर्क्स ऑफ श्री शंकराचार्य, १–३).

१७३७५—७

वाणी विलास प्रेस द्वारा प्रकाशित शंकराचार्य की कृतियों के संग्रह के २० संपुटों में से प्रत्येक में, उनका अपना अपना आख्या-पत्र तो है ही, साथ ही साथ एक सामान्य आख्या-पत्र भी है जिस पर "वर्क्स ऑफ श्री शंकराचार्य" ये पद दिए हुए हैं तथा साथ ही साथ यथोचित क्रम-समंक अथवा संपुट-समंक भी दिया हुआ है। कल्पित-माला-अधिसूचन के फलस्वरूप एक माला-संलेख लिखना पड़गा, जिसमें संघात के सभी संपुट उनके क्रमानुसार प्रदर्शित किए जायेंगे, तथा "वर्क्स ऑफ श्री शंकराचार्य" इस शीर्षक से युक्त नामांतर-निर्देशी संलेख पाठकों के ध्यान को उस कल्पित-माला संलेख की ओर निर्दिष्ट करेगा।

४. ल ३१ : १ : ट० ग ८
इनेस (आर्थर डी.).
इंग्लैण्ड अन्डर दि टयूडर्स. आवृ. ५.
(हिस्ट्री ऑफ इंगलैण्ड, चार्ल्स ओमन, ४).
५०१२

५. म लं १-३ : थ २ घ ४
न्यूटन (आर्थर पर्सिवल).
युनिवर्सिटीज़ एंड एजुकेशनल सिस्टम्स ऑफ दि ब्रिटिश एम्पायर.
(ब्रिटिश एम्पायर, ए सर्वे, ह्य गन संपा., १०).
४५८४६

यह निश्चय करना कठिन है कि उदाहरण ४ तथा ५ माला अथवा कल्पित-माला के विषय हैं। वे दोनों की संधि पर हैं।

६. ड १७ : ४७ : ४ च ७
हर्त्स्लर् (आर्थर ई.).
सर्जिकल पेथॉलॉजी ऑफ दि डिज़ीज़ेस ऑफ दि नेक.
(हर्त्स् लर्' स् मोनोग्राफ्स ऑन सर्जिकल पेथॉलॉजी, ६).
६८५२३

१४२ माला-अनेकत्वम्
माला की अनेकता

१४२ एकाधिक-मालेय-पुस्तक-प्रातिस्विक-अधि-सूचनं द्विधा।

१४२०१ स्वतन्त्रम् अन्योन्यतन्त्रं च।

१४२०२ मालान्तर-नाम-निरपेक्ष-व्यक्ति-साधन-समर्थ-प्रतिमाला-नामकं स्वतन्त्रम्।

१४२०३ इतरत् अन्योन्यतन्त्रम्।

१४२ एकाधिकायाः मालायाः सम्बन्धिनः पुस्तकस्य प्रातिस्विकम् अधिसूचनं द्विप्रकारकं भवति ।

१४२०१ तौ द्वौ प्रकारौ स्वतन्त्रम्, अन्योन्यतन्त्रम् च इति उच्येते ।

१४२०२ यत्र प्रत्येकं माला-नाम इतरस्याः मालायाः नाम्नः अपेक्षां विनैव व्यक्ति-साधने समर्थं भवति तत् माला-अधिसूचनं स्वतन्त्रम् इति उच्यते ।

१४२०३ पूर्वोक्तात् इतरत् अधिसूचनम् अन्योन्यतन्त्रम् अथवा माला-अधिसूचन-परम्परा इति उच्यते ।

१४२ एक से अधिक माला से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तक का अधिसूचन दो प्रकार का होता है ।

१४२०१ वे दो प्रकार स्वतन्त्र और अन्योन्यतन्त्र कहे जाते हैं ।

१४२०२ जहां प्रत्येक माला का नाम अन्य माला की अपेक्षा के बिना ही व्यक्ति-साधन में समर्थ होता है, उस माला–अधिसूचन को स्वतन्त्र कहा जाता है ।

१४२०३ पूर्वोक्त से अन्य को अन्योन्यतन्त्र अथवा माला-अधिसूचन-परम्परा कहा जाता है ।

१४२१ स्वतन्त्र-माला-अधिसूचनम्

१४२१ प्रति-स्वतन्त्र-माला-अधिसूचनं १४१ धारोपधारामनु ।

१४२१० पृथक् वाक्यम् ।

१४२१ प्रत्येकं स्वतन्त्रं माला-अधिसूचनं १४१ धारा तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम् ।

१४२१० प्रत्येकं स्वतन्त्र-माला-अधिसूचनं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

१४२१ **प्रत्येक स्वतन्त्र-माला-अधिसूचन १४१ धारा का तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय।**

१४२१० **प्रत्येक स्वतन्त्र-माला-अधिसूचन पृथक वाक्य माना जाय।**

१४२१० उदाहरण

थ ८४४ शं ३ १५ घ ८

मातङ्ग मुनि.

बृहद्देशी, के. साम्बशिव शास्त्री संपा.

(त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज़, ६४). (सेतु लक्ष्मी प्रसाद-माला,६).

५१६०८

यहाँ प्रस्तुत पुस्तक के लिए दो मालाओं में पृथक्-पृथक् क्रम-समंक दिये गए हैं। दोनों मालाओं में से प्रत्येक माला दूसरी माला की सहायता के बिना ही स्वयं व्यक्ति-सिद्ध हो जाती है। अतः दोनों माला-अधिसूचन स्वतन्त्र हैं तथा उन्हें अपने अपने पृथक् कोष्ठकों में रखा गया है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि द्वितीय माला का नाम आख्या-पत्र पर मानार्थक पद 'श्री' इससे आरम्भ होता है। धारा १४१ तथा उसके उपभेदों के अनुसार यहाँ उसका लोप कर दिया गया है।

१४२२ अन्योन्यतन्त्र-माला-अधिसूचन-परम्परा

१४२२ **अन्योन्यतन्त्र-माला-अधिसूचन-परम्पराया-मधःस्थम्।**

१४२२०० **यथा—**

१ १४१४ धारोपधारामनु प्रधान-माला-अधिसूचनम्;

२ अर्ध विरामः;

३ द्वितीय-माला-नाम;

४ अल्प-विरामः;

५ १४१४ धारोपधारामनु द्वितीय-माला-क्रम-समङ्कः ।
६ अल्प-विरामः;
७ तृतीय-माला-नाम;
८ अल्पविरामः;
९ तृतीय-माला-क्रम-समङ्कः

१४२२००१ एवमन्यत् ।

१४२२ अन्योन्यतन्त्र-माला-अधिसूचनस्य परम्परायाम् अधोनिर्दिष्टं भवति ।

१४२२००१ एवमेव चतुर्थादि-मालानां नाम लेख्यम् ।

१४२२ **अन्योन्यतन्त्र माला-अधिसूचन की परम्परा में नौ प्रकार होते हैं।**

१४२२०० **वे इस प्रकार हैं :—**

१ सर्वप्रथम प्रधान माला का सूचन १४१४ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय;
२ उसके अनन्तर अर्द्ध विराम किया जाय;
३ उसके अनन्तर द्वितीय माला का नाम लिखा जाय;
४ उसके अनन्तर अल्प विराम किया जाय;
५ उसके अनन्तर द्वितीय माला का क्रम-समंक १४१४ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय;
६ उसके अनन्तर अर्द्ध विराम किया जाय;
७ उसके अनन्तर तृतीय माला का नाम लिखा जाय;
८ उसके अनन्तर अल्प विराम किया जाय;
९ उसके अनन्तर तृतीय माला का क्रम-समंक लिखा जाय।

१४२२००१ **इसी प्रकार चतुर्थ आदि मालाओं का नाम लिखा जाय।**

१४२२००१ उदाहरण

द १५ : १ इ २ हं ५ १५२ च ८
भट्ट (नृसिंहप्रसाद कालिप्रसाद).
महाभारत के पात्र, बृहस्पति उपाध्याय भाषा.
(सस्ता साहित्य मण्डल, सर्वोदय साहित्य माला, ७८; लोक साहित्य माला, २).
२६६४६

यहाँ पर दो अन्योन्यतन्त्र माला-अधिसूचनों की परम्परा बनी हुई है। जब तक 'सस्ता साहित्य मण्डल' इस प्रकाशक-समष्टि का समावेश न हो तब तक 'सर्वोदय साहित्य माला' व्यक्ति-सिद्ध नहीं हो पाती। जब तक इन दोनों से बनी हुई प्राथमिक माला का निवेश नहीं होता तब तक द्वितीय माला व्यक्ति-सिद्ध नहीं हो सकती।

१४२२०१ अन्त्य-उपमाला-इतर-ईदृश-माला-परम्परा-अन्तःपाति-माला-विशेष-अङ्ग-प्रकाशक-निर्दिष्ट-माला-समङ्क-रहित-पुस्तक-मालायै-अन्योन्यतन्त्र-माला-अधि-सूचन-परम्परायां न माला-अधिसूचनम्।

१४२२०११ तन्नाम परवर्ति-उपमाला-व्यक्ति-साधकम्।

१४२२०१११ १४१११ धारानुरूपम्।

१४२२०१ पूर्वोक्त-प्रकारक-माला-परम्परायाः अङ्गभूतायां, अन्त्यायाः उपमालायाः भिन्नायां, कस्यांचन अन्य-स्याम् परम्परायां विद्यमानेभ्यः पुस्तकेभ्यः यदि प्रकाशकेन समङ्का न दत्ताः चेत् तस्यै अङ्गभूतायै उपमालायै अन्योन्य तन्त्र-माला-अधिसूचनानां कक्षायां किमपि माला-अधिसूचनं न लेख्यम्।

१४२२०११ पूर्वोक्तायै यस्यै अङ्गभूतायै उपमालायै अन्योन्यतन्त्र-माला-अधिसूचनानां परम्परायां किमपि माला-अधिसूचनं न लिख्यते, तस्याः उपमालायाः नाम ततः परिवर्तिन्याः उपमालायाः व्यक्ति-साधनाय उपयोक्तव्यम् ।

१४२२०१११ व्यक्ति-साधनाय तन्नाम १४१११ धाराम् अनुसृत्य लेख्यम् ।

१४२२०१ यदि इस प्रकार की माला-परम्परा की अंगभूत, अन्त्य उप-माला से भिन्न अन्य किसी परम्परा में विद्यमान पुस्तकों के लिए प्रकाशक ने समंक न दिया हो, तो उस अंगभूतउपमाला के लिए अन्योन्यतन्त्र-माला-अधिसूचनों की परम्परा में कोई माला-अधिसूचन न दिया जाय ।

१४२२०११ पूर्वोक्त जिस अंगभूत उपमाला के लिए अन्योन्यतन्त्र-माला अधिसूचनों की परम्परा में कोई माला-अधिसूचन नहीं दिया जाता, उस उपमाला के नाम को परवर्ती उपमाला के व्यक्ति-साधन के लिए काम में लाया जाय ।

१४२२०१११ व्यक्ति-साधन के लिए वह नाम १४१११ धारा का अनुसरण कर लिखा जाय ।

१४२२०२ प्रकाशक-निर्दिष्ट-समङ्क-रहित-अन्त्य-उपमालायाः समङ्कनम् ।

१४२२०२१ १४१४ धारानुसारम् ।

१४२२०२ अन्तिमायाम् उपमालायां प्रकाशकेन पुस्तकानां समङ्कः न निर्दिष्टः चेत् सः सूचीकारेण लेख्यः ।

१४२२०२१ सः समङ्कः १४१४ धाराम् अनुसृत्य लेख्यः ।

१४२२०२ यदि अन्तिम उपमाला में प्रकाशक ने पुस्तकों का समंक न निर्दिष्ट किया हो, तो उसे सूचीकार स्वयं दे ।

१४२२०२१ वह समंक १४१४ धारा का अनुसरण कर लिखा जाय।

१४२२०२१ उदाहरण

शइढ७:६१५:४२:थ२३ च१

मत्सुओ का (आसा, कुमारी).

लेबर कन्डिशन्स ऑफ विमेन एन्ड चिल्ड्रन इन जापान.

(बुलेटिन ऑफ दि युनाइटेड स्टेट्स ब्यूरो ऑफ लेबर स्टेटिस्टिक्स, ५५८; इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स एण्ड लेबर कन्डिशन्स सीरीज,१०).

४०००२

यह स्पष्ट ही है कि यह स्थल अन्योन्यतन्त्र माला-अधिसूचन परम्पराओं का है। संपुटों पर केवल प्रथम-निर्दिष्ट माला में ही समंक दिए हुए हैं, द्वितीय में नहीं। किन्तु, अन्त के पत्रों में उन विभिन्न गौण मालाओं की तालिकाएं दी हुई हैं जो मालाएं उस प्रधान माला में समाविष्ट हैं। उन समंकों से यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक का उसकी गौण माला में दसवां समंक है।

यहाँ यह भी कहना उचित है कि यह कृति पुस्तिकात्मक है। अतः उसके पुस्तक समंक के नीचे रेखा खींची जानी चाहिए। उसका विशिष्ट विषय अत्यधिक विशिष्ट कोटि का है। अतः उसका क्रामंक समंक तुलनात्मक दृष्टि से विस्तृततर है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि प्रस्तुत पुस्तक में केवल वस्त्र व्यवसाय की चर्चा है।

१४२३ माला-अवान्तरनाम

अवान्तर नामों से युक्त माला

१४२३ **अवान्तर-नाम-सहित-मालायां सर्वनामानि।**

१४२३१ **'वा' इति यथास्थानम्।**

१४२३ मालायाम् अवान्तरैः नामभिः सहितायां सर्वाणि नामानि लेख्यानि।

१४२३१ 'वा' इति योजक-पदं यथास्थानं लेख्यम्।

१४२३ यदि माला के अवान्तर नाम हों, तो वे सब नाम लिखे जायं।

१४२३१ 'वा' यह योजक पद योग्य स्थान में लिखा जाय।

१४२३१ उदाहरण

द १५ : १ ख ४० : ३ च १

कालिदास.

मेघदूत, मल्लिनाथकृत संजीवनी, चरित्रवर्धनाचार्यकृत चारित्रवर्धिनी तथा नारायण शास्त्रीकृत भावप्रबोधिनी व्याख्याओं सहित, नारायण शास्त्री खिस्ते संपा.

(काशी संस्कृत सीरीज़ वा हरिदास संस्कृत ग्रंथमाला, ८८, काव्य विभाग, १४).

७२०९८

१४३ उद्गृहीत-अधिसूचनम्

उद्गृहीत-अधिसूचन

उपकल्पनम्

उपकल्पन

१४३ **उद्गृहीत-अधिसूचने अंशौ द्वौ ।**

१४३० **यथा—**

१ आधार-निरूपणम्

२ 'इत उद्गृहीतम्' 'अस्य पूरकम्' इत्यादि वर्णकं च ।

१४३० तौ अंशौ यथाक्रमं निम्ननिर्दिष्टौ भवतः ।

१ यस्मात् ग्रन्थात् उद्गृहीतं स्यात् तस्य आधार-भूतस्य ग्रन्थस्य निरूपणं प्रथमः अंशः भवति ।

२ 'इतः उद्गृहीतम्' इति, 'अस्य पूरकम्' इति वा यथावसरं वर्णकं पदं द्वितीयः अंशः भवति ।

१४३ **उद्गृहीत-अधिसूचन में दो अंश होते हैं ।**

१४३० **वे अंश क्रमशः निम्नलिखित हैं :—**

१ जिस ग्रन्थ से उद्गृहीत हो उस आधारभूत ग्रन्थ का निरूपण प्रथम अंश होता है ।

२ अवसर के अनुसार "यहां से उद्गृहीत" अथवा "इसका पूरक" ये वर्णक पद द्वितीय अंश होते हैं ।

१४३१ **उद्गृहीत-आधार-सामयिक-प्रकाशन-निरूपणे अंशाः त्रयः ।**

१४३१० **यथा——**

१ सामयिक-प्रकाशन-नाम;

२ पूर्ण-विरामः;

३ सामयिक-प्रकाशन-संपुट-समङ्क-वर्ष-उभयान्यतमं च ।

१४३१०१ **समङ्क-वत्सर-अन्तराले पूर्ण-विरामः**

१४३१ उद्गृहीतस्य आधारः सामयिक-प्रकाशनं चेत् तस्य निरूपणे अंशाः त्रयः भवन्ति ।

१४३१० ते अंशाः निम्ननिर्दिष्टाः भवन्ति ।

१ सामयिक-प्रकाशनस्य नाम;

२ पूर्ण-विरामः;

३ सामयिक-प्रकाशनस्य सम्बद्ध-संपुटस्य समङ्कः, वत्सरः, तदुभयं वा अपि च ।

१४३१०१ समङ्कस्य वत्सरस्य च अन्तराले पूर्ण-विरामः कार्यः ।

१४३१ यदि उद्गृहीत का आधार सामयिक-प्रकाशन हो, तो उसके निरूपण में तीन अंश होते हैं ।

१४३१० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ सामयिक-प्रकाशन का नाम;

२ पूर्ण-विराम; तथा

३ सामयिक-प्रकाशन से सम्बद्ध संपुट का समंक, वर्ष अथवा दोनों ही।

१४३१०१　**समंक और वर्ष के बीच पूर्ण-विराम किया जाय।**

१४३१०१ उदाहरण

प २ : ४ हं शं ग ६० : १ शं　१५ छ २

लक्ष्मीधर भट्ट.

कृत्यकल्पतरु का राजधर्म काण्ड, जगदीशलाल शास्त्री संपा. (ओरिएन्टल कॉलेज मेगेज़ीन, संपु. ३, १९४२ में से उद्गृहीत).

५४८५५

यहाँ पर प्रस्तुत पुस्तक सामयिक-प्रकाशन से उद्गृहीत है। अतः उसका अधिसूचन दिया गया है।

और द्रष्टव्य धारा ८९२ तथा उसके उपभेद भी।

१४३११　व्यक्ति-साधन-असमर्थ-सामयिक-प्रकाशन-नाम्नः स्वप्रकाशक-समष्टि-व्यक्ति-अन्यतर-नाम-योगेन व्यक्ति-साधनम्।

१४३१२　तदादौ।

१४३१३　मध्ये पूर्णविरामः।

१४३११　सामयिक - प्रकाशनस्य नाम व्यक्ति-साधने असमर्थं चेत् तस्य प्रकाशिकायाः समष्टेः व्यक्तेः वा नाम्नः योगेन तस्य व्यक्ति-साधनं कार्यम्।

१४३१२　सामयिक-प्रकाशिकायाः समष्टेः व्यष्टेः वा तत् नाम सामयिक-प्रकाशनस्य नाम्नः आदौ लेख्यम्।

१४३१३　सामयिक-प्रकाशिकायाः समष्टेः व्यष्टेः वा नाम्नः सामयिक-प्रकाशनस्य च नाम्नः मध्ये पूर्णविरामः लेख्यः।

१४३११ यदि सामयिक-प्रकाशन का नाम व्यक्ति-साधन करने में असमर्थ हो, तो उसकी प्रकाशक-समष्टि अथवा व्यष्टि के नाम को लगाकर उसका व्यक्ति-साधन किया जाय ।

१४३१२ सामयिक-प्रकाशन-समष्टि अथवा व्यष्टि का वह नाम सामयिक प्रकाशन के नाम के आदि में लिखा जाय ।

१४३१३ सामयिक-प्रकाशक-समष्टि अथवा व्यष्टि के नाम के तथा सामयिक-प्रकाशन के नाम के बीच द्विबिन्दु लिखा जाय ।

१४३२ उद्गृहीत-आधार-पुस्तक-निरूपणे अंशा: पञ्च ।

१४३२० यथा—

१ पुस्तक-शीर्षकम्;
२ पूर्ण-विराम:;
३ पुस्तक-लघु-आख्या;
४ पूर्ण-विराम:;
५ भाग-अध्याय-पृष्ठ-अन्यतमं च ।

१४३२०१ आख्या-प्रथम-पद-शीर्षके न प्रथम-द्वितीयौ ।

१४३२ उद्गृहीतस्य आधार: पुस्तकं चेत् तस्य निरूपणे अंशा: पञ्च भवन्ति ।

१४३२०१ शीर्षके आख्याया: प्रथम-पदे सति पुस्तक-शीर्षकं पूर्णविराम: च इति अंशौ न भवत: ।

१४३२ यदि उद्गृहीत का आधार पुस्तक हो, तो उसके निरूपण में पांच अंश होते हैं ।

१४३२० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ उद्गृहीत-आधार-पुस्तक का शीर्षक;
२ द्विबिन्दु;

३ उस पुस्तक की लघु आख्या;

४ पूर्ण-विराम; तथा

५ सम्भव और आवश्यक होने पर उद्गृहीत-आधार पुस्तक के भाग, अध्याय और पृष्ठ संख्या।

१४३२०१　**यदि शीर्षक आख्या का प्रथम पद हो, तो पुस्तक का शीर्षक तथा द्विबिन्दु में दो अंश नहीं होते हैं।**

१४३२०१ उदाहरण

१.　द–:१ ज ८० : ६　　छ ६

शुक्ल (रामचन्द्र).

जायसी ग्रन्थावली की भूमिका.

(जायसी (मलिक मुहंमद): ग्रंथावली, भूमिका से उद्गृहीत) (नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला, ३१ क).

५१०५३

इस उदाहरण में, प्रस्तुत पुस्तक एक अन्य पुस्तक से उद्गृहीत है तथा साथ ही एक ग्रंथमाला का एक संपुट भी है। अतः यहाँ दो स्वतन्त्र अधिसूचन दिए हुए हैं। प्रथम उद्गृहीत–अधिसूचन है तथा द्वितीय माला-अधिसूचन है।

२.　२ : ह २ पं　　च १

रंगनाथन (श्रीयाली रामामृत).

आदर्श ग्रन्थालय विधेयक.

(रंगनाथन (श्रीयाली रामामृत) : ग्रन्थालय शास्त्र-पंचसूत्री से उद्गृहीत, पृ. २५६-२७१).

४०००३

---

१४४ आख्या-अन्तर-अधिसूचनम्

आख्या-अन्तर-अधिसूचन

उपकल्पनम्

उपकल्पन

१४४　**आख्या-अन्तर-अधिसूचने अंशौ द्वौ।**

१४४० यथा--

१ यथा-प्रकाशनम् आख्यान्तरम्;

२ 'इत्याख्यया पूर्वं प्रकाशितम्' इति 'इत्याख्यया पश्चात् प्रकाशितम्' इति 'इत्याख्यया अमेरिका-संयुक्त-राष्ट्रे प्रकाशितम्' इत्यादि वा देशक-पदानि ।

१४४० तौ अंशौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः ।

१ यां यां आख्याम् अङ्गीकृत्य पुस्तकं प्रकाशितं स्यात् सा सा आख्या;

२ विभिन्नायाः आख्यायाः अनन्तरम् 'इत्याख्यया पूर्वं प्रकाशितम्', इति 'इत्याख्यया पश्चात् प्रकाशितम्' इति, 'इत्याख्यया अमेरिका-संयुक्त राष्ट्रे प्रकाशितम्', इत्यादि वा, ईदृशानि अन्यानि वा वर्णकानि पदानि च ।

१४४ आख्या-अन्तर के अधिसूचन में क्रमशः दो अंश होते हैं।

१४४० वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ जिन जिन आख्याओं को अंगीकार कर पुस्तक प्रकाशित हुई हो, वे आख्याएं;

२ विभिन्न आख्याओं के अनन्तर 'इस आख्या से पूर्व प्रकाशित हुई', 'इस आख्या से पश्चात् प्रकाशित हुई' अथवा 'इस आख्या से अमेरिका संयुक्त राष्ट्र में प्रकाशित हुई' ये अथवा अन्य इसी प्रकार के वर्णक पद ।

१४४० उदाहरण

२८:५:थ ३. छ ६
सत्यनारायण.
यूरोप के झकोरे में.
("आवारे की योरप यात्रा" इस आख्या से पूर्व प्रकाशित).
५४१३७

१४४१ **पूर्व-पर-उभय-आख्या-सहित-पुस्तक-आख्या-अन्तर-अधिसूचने द्वयम् ।**

१४४१ पुस्तके पूर्वाख्यया पराख्यया च इति उभयाभ्याम् आख्याभ्यां युक्ते, आख्या-अन्तर-अधिसूचने पूर्वाख्यायै पराख्यायै च उभयाभ्याम् आख्याभ्याम् अधिसूचन-द्वयं लेख्यम् ।

१४४१ यदि ग्रन्थ की पूर्व-आख्या तथा पर-आख्या दोनों हों, तो आख्या-अन्तर-अधिसूचन में पूर्व-आख्या तथा पर-आख्या दोनों आख्याओं के लिए दो अधिसूचन लिखे जायँ ।

१४५ उद्ग्रहण-अधिसूचनम्

उद्ग्रहण-अधिसूचन

१४५ **उद्ग्रहण-अधिसूचने अंशौ द्वौ ।**

१४५० **यथा—**

१ 'उद्गृहीताय द्रष्टव्यम्' इति देशक-पदे;

२ उद्गृहीत-क्रामक-समङ्कः च ।

१४५०१ **अनेकत्वे पृथक् वाक्यम् ।**

१४५ उद्ग्रहण-अधिसूचन में यथाक्रम दो अंश होते हैं ।

१४५० वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ 'उद्गृहीत के लिए द्रष्टव्य' यह देशक पद; तथा
२ उद्गृहीत का क्रामक-समंक ।

१४५०१ यदि उद्गृहीत अनेक हों तो प्रत्येक क्रामक-समंक पथक वाक्य माना जाय ।

१४५०१ उदाहरण

द–:१ ज ८० शं छ ६

जायसी (मलिक मुहम्मद).

ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल संपा.

(नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला, ३१).

"उद्गृहीत के लिए द्रष्टव्य द–:१ ज ८० : ६३ छ ६"

५१०५२

---

१४६ नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचनम
नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचन

१४६ **नैमित्तिक-अधिसूचने अंशाः त्रयः**

१४६० **यथा—**

१ "नैमित्तिक-ग्रन्थाय" "निमित्त ग्रन्थाय" इति वा;

२ 'द्रष्टव्यम्' इति देशक-पदम्;

३ नैमित्तिक-ग्रन्थ-क्रामक-समङ्कः च ।

१४६ नैमित्तिक पुस्तक के अधिसूचन में क्रमशः तीन अंश होते हैं ।

१४६० वे तीन अंश निम्नलिखित हैं :—

१ "नैमित्तिक पुस्तक के लिए" यह वाक्यांश;
२ 'द्रष्टव्य' यह देशक पद; और
३ नैमित्तिक पुस्तक का क्रामक समंक ।

१४६० उदाहरण

---

१. ल २ : १ : थ ५ छ ४

निकोलस (बेवरली).

वर्डिक्ट ऑन इण्डिया.

"नैमित्तिक ग्रन्थ के लिए द्रष्टव्य ल२ : १ : थ ५ छ४ :६"

३६५६७

---

२. ल २:१: थ ५ छ ४ : ६

जोग (एन. जी.).

जज और जूडास ?

"नैमित्तिक ग्रन्थ के लिए द्रष्टव्य ल २ : १ : थ ५ छ ४

---

१५ परिग्रहण-समङ्कः

१५ परिग्रहण-समङ्कः आख्या-पत्र-पृष्ठात् ।

१५० सः परिगृहीतृ-अङ्कितः :

१५ परिग्रहण-समङ्कः आख्या-पत्रस्य पृष्ठात् ग्राह्यः ।

१५० सः परिग्रहण-धाराम् अनुसृत्य परिग्रहीत्रा अङ्कितः भवति ।

१५ परिग्रहण-समंक आख्या-पत्र के पृष्ठ भाग से लिया जाय ।

१५० वह परिग्रहण की धाराओं के अनुसार परिगृहीता द्वारा लगाया हुआ होता है ।

१५० लेखनशैली के लिए द्रष्टव्य धाराएं ०३५-०३५१ तथा ०३८-०३८२.

१६ पत्रक-पृष्ठम्

पत्रक का पृष्ठ भाग

१६ प्रधान-संलेख-पत्रक-पृष्ठे पुस्तक-विषयक-अतिरिक्त-संलेख-उल्लेखः ।

१६००१ यथा——

१ विषयान्तर-संलेखः;

२ वर्ग-निर्देशि-संलेखः;

३ पुस्तक-निर्देशि-संलेखः ;

४ नामान्तर-निर्देशि-संलेखः च ।

१६ प्रधान-संलेख्यस्य पत्रकस्य पृष्ठ-भागे प्रकृत-पुस्तक विषयकाणाम् अन्येषाम् अतिरिक्तानां संलेखानाम् उल्लेखः कार्यः ।

१६ प्रधान संलेख के पत्रक के पृष्ठ भाग में उस पुस्तक से सम्बद्ध अन्य अतिरिक्त-संलेखों का उल्लेख किया जाय ।

१६००१ प्रधान संलेख के पत्रक के पृष्ठ भाग में उस पुस्तक से सम्बद्ध निम्नलिखित अन्य अतिरिक्त-संलेखों का उल्लेख होता है ।

१ विषयान्तर - संलेख;

२ वर्ग-निर्देशी-संलेख;

३ पुस्तक-निर्देशी-संलेख; तथा

४ नामान्तर-निर्देशी-संलेख ।

१६०१ **प्रधान-संलेख-पत्रक-पृष्ठं लघुतर-पार्श्व-समानान्तर-कल्पित-रेखा-सम-विभक्तम् ।**

१६०१० **भागौ वाम-दक्षिणौ ।**

१६०१ प्रधान-संलेखस्य पत्रकस्य पृष्ठं पत्रकस्य लघुतर-पार्श्वेण समानान्तरया कल्पितया रेखया द्विधा-विभक्तं कार्यम् ।

१६०१० तौ द्वौ भागौ यथाक्रमं वामः दक्षिणः च इति उच्येते ।

१६०१ प्रधान-संलेख के पत्रक का पृष्ठ भाग पत्रक के लघुतर पार्श्व से समानान्तर कल्पित रेखा के द्वारा दो भागों में बंटा हुआ मान लेना चाहिए।

१६०१० वे दोनों भाग क्रमशः वाम और दक्षिण कहे जाते हैं।

१६०२ दक्षिण, दीर्घतर-पार्श्व-समानान्तर-कल्पित-रेखा-द्वयेन समं त्रिधाविभक्तः।

१६०२० अग्र-मध्य-मूल-भागाः।

१६०२ दक्षिणः भागः दीर्घतरेण पार्श्वेण समानान्तराभ्यां, कल्पनया यथासुखं लिखिताभ्यां, रेखाभ्यां यथा-सौकर्यं समं त्रिधा विभक्तः कल्प्यः।

१६०२० ते भागाः अग्र-भागः, मध्य-भागः, मूल-भागः च इति उच्यन्ते।

१६०२ दक्षिण भाग दीर्घतर पार्श्व से समानान्तर, कल्पना से यथासुख खींची हुई दो रेखाओं से सुविधाजनक तीन समान भागों में बंटा हुआ मान लेना चाहिए।

१६०२० वे भाग अग्रभाग, मध्यभाग तथा मूलभाग कहे जाते हैं।

१६१ प्रति-वामार्ध-रेखं विषयान्तर-संलेख-उल्लेखः।

१६१० उल्लेखे अंशौ द्वौ।

१६१०१ यथा—

१ विषयान्तर-संलेख-वर्ग-समङ्कः;

२ अनुसन्धान-पृष्ठ-समङ्क-अनुगत 'पृ.'-इति, समङ्क-अनुगत-भाग-अध्याय-अन्यतरोभयं वा इति च।

१६१ वामस्य अर्धस्य प्रत्येकस्यां रेखायां प्रत्येकस्य विषयान्तर-संलेखस्य उल्लेखः कार्यः ।

१६१० विषयान्तर-संलेखस्य उल्लेखे द्वौ अंशौ भवतः ।

१६१०१ तौ द्वौ अंशौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः ।

१ विषयान्तर-संलेखस्य अग्रानुच्छेद-रूपः वर्ग-समङ्कः ।

२ सति संभवे अनुसंधानस्य पृष्ठ-समङ्केन अनुगतं 'पृ' इति संक्षिप्तरूपम्, समङ्केन अनुगतं 'अध्यायः' इति वा पदं तदुभयं वा इति च ।

१६१ **वाम अर्द्ध की प्रत्येक रेखा में प्रत्येक विषयान्तर-संलेख का उल्लेख किया जाय ।**

१६१० **विषयान्तर-संलेख के उल्लेख में दो अंश होते हैं ।**

१६१०१ **वे दो अंश निम्नलिखित होते हैं :—**

१ विषयान्तर-संलेख के अग्रानुच्छेद-स्वरूप वर्ग-समंक; तथा

२ यदि सम्भव हो, तो अनुसन्धान के पृष्ठ-समंक से अनुगत 'पृ.' यह संक्षिप्त रूप, अथवा समंक से अनुगत 'भाग' यह पद, अथवा समंक से अनुगत 'अध्याय' यह पद अथवा वे दोनों ।

१६२ दक्षिणार्धे-निर्देशि-नामान्तर-निर्देशि-संलेख-सर्व-शीर्षकाणि ।

१६२१ अग्रे वर्ग-निर्देशि-संलेख-शीर्षकाणि ।

१६२१० यथाक्रमम् ।

१६२ दक्षिणे अर्धे पुस्तकस्य निर्देशि-संलेखानां नामान्तर-निर्देशि-संलेखानां च अग्रानुच्छेद-रूपाणि सर्वाणि शीर्षकाणि लेख्यानि ।

१६२१ अग्र-भागे वर्ग-निर्देशि-संलेखेभ्यः व्यवहृतानि शीर्षकाणि लेख्यानि ।

१६२१० तानि शीर्षकाणि यथाक्रमं लेख्यानि

१६२ दक्षिण अर्द्ध में पुस्तक के निर्देशि-संलेखों के तथा नामान्तर निर्देशी-संलेखों के अग्रानुच्छेद-स्वरूप सभी शीर्षक लिखे जायं।

१६२१ अग्रभाग में वर्ग-निर्देशी-संलेखों के लिए व्यवहृत शीर्षक लिखे जायं।

१६२१० वे शीर्षक क्रमशः लिखे जायं।

१६२१० द्रष्टव्य धारा ३११.

१६२२ मध्ये पुस्तक-निर्देशि-संलेख-शीर्षकाणि।

१६२२ मध्य-भागे पुस्तक-निर्देशि-संलेखेभ्यः व्यवहृतानि शीर्षकाणि यथाक्रमं लेख्यानि।

१६२२ मध्य भाग में पुस्तक-निर्देशी-संलेखों के लिए व्यवहृत शीर्षक क्रमशः लिखे जायं।

१६२२ द्रष्टव्य धारा ३२१.

१६२३ मूले नामान्तर-निर्देशि-संलेख-शीर्षकाणि।

१६२३ मूल-भागे नामान्तर-निर्देशि-संलेखेभ्यः व्यवहृतानि शीर्षकाणि यथाक्रमं लेख्यानि।

१६२३ मूल-भाग में नामान्तर-निर्देशी-संलेखों के लिए व्यवहृत शीर्षक क्रमशः लिखे जायं।

१६२३ द्रष्टव्य धाराएं ४११, ४२१, ४३१, ४४१ तथा ४५१.

अध्याय २

पृथक्-पुस्तकम्

पृथक् पुस्तक

विषयान्तर-संलेखः

विषयान्तर संलेख

२ **विषयान्तर-संलेखे अनुच्छेदाः चत्वारः**

२० **यथा—**

१ विशिष्ट-विषयान्तर-वर्गसमङ्कः (अग्रानुच्छेदः);

२ "अन्यदपि द्रष्टव्यम्" इति देशक-पदानि;

३ पुस्तक-क्रामक-समङ्कः‡ ;

४ पुस्तक-शीर्षक-पूर्णविराम-लघु-आख्या-पूर्ण-विराम-अनुसन्धान-अध्याय-पृष्ठानि च ।

२० ते अनुच्छेदाः निम्नलिखिताः भवन्ति :—

१ विशिष्टस्य विषयान्तरस्य वर्ग-समङ्कः (अग्रानुच्छेदः) ;

२ "अन्यदपि द्रष्टव्यम्" इति इमानि देशक-पदानि;

३ विषयान्तर-आधारभूतस्य पुस्तकस्य क्रामक-समङ्कः ;

४ विषयान्तर-आधारभूतस्य पुस्तकस्य शीर्षकम्, पूर्ण-विरामः, लघु-आख्या, पूर्ण विरामः, अनुसन्धानस्य अध्यायः पृष्ठानि वा इति च ।

२ विषयान्तर-संलेख में चार अनुच्छेद होते हैं ।

२० वे अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—

१ विशिष्ट-विषयान्तर का वर्ग-समंक;
२ "और द्रष्टव्य" यह देशक पद;
३ विषयान्तर की आधारभूत पुस्तक का क्रामक-समंक; तथा
४ विषयान्तर की आधारभूत पुस्तक का शीर्षक, द्विबिन्दु, उस पुस्तक की लघु-आख्या, पूर्ण-विराम तथा अनुसन्धान के अध्याय अथवा पृष्ठ इत्यादि ।

२०१ शीर्षकात्मक-व्यष्टि-नाम्नि-न नामाद्य-पदम् ।

२०२ एकाधिक-वाक्ये एकम् ।

२०३ आख्या-प्रथम-पद-शीर्षके न तत् ।

२०४ नापि च पूर्णविरामः ।

२०१ व्यष्टि-नाम शीर्षकं चेत् तस्य नामाद्य-पदं न लेख्यम् ।

२०२ शीर्षकम् एकाधिक-वाक्यात्मकं चेत् पूर्ण-विराम-स्थाने अल्पविरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम् ।

२०३ आख्यायाः प्रथमं पदं शीर्षकं चेत् शीर्षकं न लेख्यम् ।

२०४ आख्यायाः प्रथमं पदं शीर्षकं चेत् शीर्षकानुगामी पूर्णविरामः अपि न लेख्यः ।

२०१ यदि व्यष्टि-नाम शीर्षक हो तो उसका नामाद्य-पद न लिखा जाय ।

२०२ यदि शीर्षक में एक से अधिक वाक्य हों तो पूर्ण-विराम के स्थान में अल्प-विराम करके एक वाक्य बना लिया जाय ।

२०३ यदि आख्या का प्रथम पद शीर्षक हो तो वह न लिखा जाय ।

२०४ यदि आख्या का प्रथम पद शीर्षक हो तो उसका अनुगामी द्विबिन्दु भी न लिखा जाय ।

२१ विषयान्तर-वर्ग-समङ्कः वर्गकार-निर्मितः ।
२३ क्रामक-समङ्कः प्रधान-संलेखीयः ।
२४ शीर्षक प्रधान-संलेखीयम् ।
२४१ २ धारामनु परिणतम् ।

२१ विषयान्तर-वर्ग-समङ्कः वर्गीकरण-धाराम् अनुसृत्य वर्गकारेण निर्मितः भवति ।
२३ प्रधान-संलेखस्य यः क्रामक-समङ्कः भवति, स एव तृतीयानुच्छेदे लेख्यः ।
२४ प्रधान-संलेखस्य यत् शीर्षकं भवति तदेव चतुर्थानुच्छेदे लेख्यम् ।
२४१ तत् शीर्षकं २ धाराम् अनुसृत्य परिणमितव्यम् ।

२१ वह विषयान्तर-वर्ग-समंक वर्गीकरण की धाराओं के अनुसार वर्गकार के द्वारा लगाया हुआ होता है ।
२३ प्रधान संलेख का जो क्रामक-समंक होता है वही तृतीय अनुच्छेद में लिखा जाय ।
२४ प्रधान संलेख का जो शीर्षक होता है वही चतुर्थ अनुच्छेद में लिखा जाय ।
२४१ वह शीर्षक २ धारा परिणत कर लिखा जाय ।

२५ पुस्तक-अंश-मात्र-अनुसन्धाने चर्चित-प्रकरण-आधार-अध्याय-पृष्ठ-प्रभृति-उल्लेखः ।

२५ संपूर्ण-पुस्तकस्य अनुसंधानं न चेत्, अपि तु पुस्तक-अंशमात्रस्य चेत् तदा चर्चित-प्रकरणस्य आधारभूतः

यः अध्यायः स्यात्, यानि पृष्ठानि वा स्युः, अन्यद् वा ईदृशं किमपि चेत् तस्य उल्लेखः कार्यः ।

२५ **यदि सम्पूर्ण पुस्तक का अनुसन्धान न हो, अपितु पुस्तक के केवल किसी अंश का ही अनुसन्धान हो तो चर्चा के विषय प्रकरण का आधार-भूत जो अध्याय हो, जो पृष्ठ हों अथवा इसी प्रकार का अन्य कुछ हो, तो उसका उल्लेख किया जाय।**

२५ 'लघु आख्या' के लिए धाराएं ०२४१—०२४११ तथा लेखन-शैली के लिए धाराएं ०३२-०३२१ और ०३६-०३६७ द्रष्टव्य हैं ।

विषयान्तर-संलेख-पत्रकों को प्रधान-पत्रकों से पृथक् रूप में व्यक्त करने के लिए रंग-भेद का उपयोग किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, प्रधान-पत्रकों को श्वेत रखा जा सकता है तथा विषयान्तर-संलेखों को गुलाबी रखा जा सकता है ।

उदाहरण

१. ल २२५ न क १:१ : ग ६

और दृष्टव्य

द १५ :१ ग४०:१ छ ५

बिल्हण : विक्रमांकदेवचरित, सर्ग १-१७ तथा उपो. पृ. १८-४०.

२. ल २२५ न क १:१ इं

और द्रष्टव्य

द १५: १ ग ४०:१ छ ५

बिल्हण : विक्रमांकदेव चरित, प्राक्कथन- पृ. ६-७.

३. र ८ : २४१ :१: ग६

और द्रष्टव्य

द १५: १ ग ४०:१ छ ५

बिल्हण : विक्रमांक देव चरित, सर्ग १८ तथा उपो.पृ. ८-१०.

४. ल २४१ : १ ग ६

और द्रष्टव्य

द १५: १ ग ४०:१ छ ५

बिल्हण : विक्रमांकदेवचरित, सर्ग १८ तथा उपो. पृ. ८-१०.

५. द १५ : १ ग ४० वं

और द्रष्टव्य

द १५: १ ग ४० :१ छ ५

बिल्हणः विक्रमांकदेव चरित सर्ग १८ उपो. पृ. ८-१८.

६. द १५: १ ग ४०: ६

और द्रष्टव्य

द १५: १ ग ४० : १ छ ५

बिल्हण : विक्रमांकदेव चरित. उपो. पृ. ५-१८

७. द१५: १ ग ४० : १ : ६

और द्रष्टव्य

द १५ : १ ग ४०:१ छ ५

बिल्हणः विक्रमांकदेवचरित. उपो. पृ.१६-१८.

प्रधान संलेख के लिए, अध्याय १ की धारा १४१४२ के नीचे दिया हुआ उदाहरण १६ द्रष्टव्य है।

विक्रमांकदेव चरित महाकाव्य में तथा उसकी इस आवृत्ति में निम्नलिखित विषयान्तर प्रसंगवश वर्णित हैं :—

१ कल्याण चालुक्यों का इतिहास;
२ कल्याण चालुक्यों के इतिहास की ग्रन्थ सूची;
३ काश्मीर देश का भौगोलिक वर्णन;
४ काश्मीर देश का तात्कालिक इतिहास;
५ महाकवि बिल्हण का जीवन चरित;
६ महाकवि बिल्हण की समालोचना; तथा
७ विक्रमांकदेवचरित की समालोचना

इनमें से कतिपय विषय सर्वथा प्रथम बार प्रकाशित किए गए हैं। यदि इन्हें विषयान्तर संलेखों द्वारा प्रकाश में न लाया गया तो पाठक अवश्यमेव इनसे वंचित रहेंगे। किन्तु यदि ये संलेख लिख दिए गए तो ऐसी आशंका सर्वदा के लिए दूर हो जायगी।

'कल्याण चालुक्यों के इतिहास की ग्रन्थसूची' आदि कुछ विषय तो एसे हैं जिनके अन्वेषक यह कल्पना तक नहीं कर सकते कि प्रस्तुत पुस्तक में उनकी अध्ययन सामग्री उन्हें प्राप्त हो जायगी। यदि ये विषयान्तर संलेख न लिखे गए तो ग्रन्थालय के कर्तृगण तक को इन विषयों के अस्तित्व की गंध तक नहीं आ सकेगी। हाँ, वे बार बार पर्याप्त समय नष्ट कर थोड़ा-बहुत पता लगालें यह बात दूसरी है। यह भी संभव है कि ग्रन्थालय में इस विषय पर केवल एक ही पुस्तक हो। बेचारी अध्ययन-सामग्री पुस्तकों में ढेर बनी पड़ी रहेगी। कहीं भी उनका विश्लेषण नहीं होगा और ग़रीब पाठक उनकी अपनी सामग्रियों के रहते हुए भी ग्रन्थालय से विमुख होकर लौटते रहेंगे।

नाना-लक्ष्यक ग्रन्थ अधिक मात्रा में सर्वत्र पाये जाते हैं। वर्गीकरण आज जिस सीमा तक उन्नत हो सका है वहाँ तक पहुँच कर भी वह इस प्रकार के ग्रन्थों पर विफल सिद्ध हो रहा है और वह अपनी इस कमी को पूर्ण करने के लिए सूचीकरण से सहायता की अपेक्षा करता है।[२१] सूची में जब तक विषयान्तर संलेख अथवा विषय-विश्लेषक[२२] न दिए जांय तब तक अनुलय-सेवा कदापि समर्थ एवं सशक्त नहीं हो सकती। कुछ भी हो, इस प्रकार के संलेख के कारण ग्रन्थालय शास्त्र के सूत्रों में ही, परस्पर स्वपक्ष में ही, टकराव हो जाता है और उसका पर्यवसान एक समझौते में होता है। वह समझौता यही है कि जो ग्रंथ मुद्रित ग्रन्थ सूचियों में विश्लेषित कर दिए गये हों उनके लिए इस प्रकार के संलेख न लिखे जांय।[२३]

---

२१ रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय वर्गीकरण प्रवेश (*Prolegomena to library classification*). १९३७. (मद्रास ग्रंथालय संघ, प्रकाशन ग्रन्थ माला, ६).

रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय वर्गीकरण : तत्व एवं प्रक्रिया. १९४४. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, १२). अनुच्छेद २४१.

२२ रंगनाथन (श्री. रा.) तथा सुन्दरम (सी). अनुलय सेवा एवं ग्रन्थ-सूची (*Reference service and bibliography*). संपु. १.१९४०. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशनमाला, ९). अनुच्छेद ३३३१.

२३ रंगनाथन (श्री रा.). ग्रन्थालय-सूची-सिद्धांत. (*Theory of library catalogue*). १९३८. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशनमाला, ७). अध्याय ३२-३३.

अध्याय ३

निर्देशि-संलेखः

निर्देशी-संलेख

३ **निर्देशि-संलेखो द्विधा।**

३० **यथा—**

१ वर्ग-निर्देशि-संलेखः;
२ पुस्तक-निर्देशि-संलेखः च।

३ निर्देशि-संलेखस्य द्वौ प्रकारौ भवतः।

३ निर्देशी संलेख के दो प्रकार होते हैं :—

३० १ वर्ग-निर्देशी-संलेख; तथा
२ पुस्तक-निर्देशी-संलेख।

३०१ **अनुवर्ग-भाग-प्रति-प्रधान-विषयान्तर-संलेख-अग्रानुच्छेदवर्ति-वर्ग-समङ्क-तत् निश्रेणि-कतिपय-ऊर्ध्वतर-बन्ध-उभय-बोध्य-वर्ग-नाम-निर्देशकः वर्ग-निर्देशि-संलेखः।**

३०१ केवलं वर्गस्य निर्देशकः, अर्थात् अनुवर्ग-भागे वर्त-मानस्य प्रत्येकस्य प्रधान-संलेखस्य प्रत्येकस्य विषया-न्तर-संलेखस्य च अग्रानुच्छेदे वर्तिना वर्ग-समङ्केन,

तस्य निश्रेण्याः कतिपयैः ऊर्ध्वतरैः बन्धैः च बोध्यानां वर्ग-नाम्नां निर्देशकः संलेखः वर्ग-निर्देशि संलेखः इति उच्यते ।

३०१ **केवल वर्ग के निर्देशक, अर्थात् अनुवर्ग-भाग में विद्यमान प्रत्येक प्रधान संलेख के तथा प्रत्येक विषयान्तर-संलेख के अग्रानुच्छेद में वर्तमान वर्ग-समंक द्वारा, तथा उस वर्ग-समंक की निश्रेणि के कुछ ऊपर के बन्धों द्वारा बोध्य वर्ग-नामों का निर्देशक-संलेख वर्ग-निर्देशी-संलेख कहा जाता है ।**

३०२ पुस्तक-प्रधान-संलेख-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-अनुच्छेद-वर्ति-कतिपय-भाव-निर्देशकः पुस्तक-निर्देशि-संलेखः ।

३०२ केवलं विशिष्टस्य पुस्तकस्य निर्देशकः, तस्य प्रातिस्विकस्य प्रधान-संलेखस्य द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ अनुच्छेदेषु विद्यमानानां कतिपयानां भावानां निर्देशकः संलेखः पुस्तक-निर्देशि-संलेखः इति उच्यते ।

३०२ **केवल विशिष्ट पुस्तक का निर्देशक, उसके अपने-अपने प्रधान-संलेख के द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अनुच्छेदों में विद्यमान कतिपय भावों का निर्देशक संलेख पुस्तक-निर्देशी संलेख कहा जाता है ।**

३०२ उपर्युक्त दोनों प्रकार के संलेखों के पत्रक नामान्तर-निर्देशी-संलेखों के पत्रकों के साथ उसी एक अनुवर्ण-क्रम में व्यवस्थित किए जायेंगे। यदि सच पूछा जाय तो यह मानना पड़ेगा कि इस प्रकार बना हुआ सूची का निर्देशी भाग अनुवर्ण-सूची के अधिकांश उद्देश्यों को पूर्ण कर देता है ।

सूची के इस भाग में पत्रकों की संख्या बहुत अधिक होनी संभावित है। यदि इस बात का स्मरण रखा जाय तो यह सुविधाजनक प्रतीत होगा कि पत्रकों के

लिए कोई एक विशिष्ट उपाय काम में लाया जाय जिससे पत्रक का वर्ण देखते ही यह ज्ञात हो जाय कि उस पत्रक पर किस प्रकार का संलेख लिखा गया है। ध्यानपूर्वक आयोजित वर्ण-पद्धति से इस उद्देश्य की सिद्धि की जा सकती है।

उदाहरणार्थ—पुस्तक-निर्देशी-संलेख श्वेत पत्रकों पर लिखे जायं तथा अध्याय ४ में वर्णित नामान्तर निर्देशी-संलेख लाल पत्रकों पर लिखे जायँ। वर्ग-निर्देशी-संलेख कृष्ण-प्रांत-युक्त पत्रकों पर हो सकते हैं। जब रंग श्वेत से अतिरिक्त अन्य कोई हो तो यह आवश्यक नहीं है कि सारा पत्रक रंग दिया जाय। यदि केवल सिरे के किनारे ही रंग दिए जायं तो हमारा काम चल जायगा, और उससे सफाई और सुन्दरता भी बढ़ जायगी।

३१ वर्ग-निर्देशि-संलेख :

३१ वर्ग-निर्देशि-संलेखे अनुच्छेदौ द्वौ।

३१० यथा—

१ शीर्षकम् (अग्रानुच्छेदः);

२ अन्तरीण-निर्देशि समङ्कौ च।

३१ वर्ग-निर्देशि-संलेखे यथाक्रमं द्वौ अनुच्छेदौ भवतः।

३१ वर्ग निर्देशी संलेख में क्रमशः दो अनुच्छेद होते हैं।

३१० वे दो अनुच्छेद ये हैं :—

१ शीर्षक (अग्रानुच्छेद); और

२ अन्तरीण तथा निर्देशी-समंक।

३१० हम यह पहले ही कह आये हैं कि इस कल्प का सार्वदेशिक उपयोग हो सकता है। चाहे कोई भी वर्गीकरण-पद्धति काम में लाई जाय, इस कल्प के अनुसार सूची का निर्माण किया जा सकता है। इस नियम में केवल एक ही अपवाद है। वह यही वर्ग-निर्देशी-संलेखों वाला अंश है।

यदि वर्ग-समङ्क द्विबिन्दु-वर्गीकरण के हों तो धारा ३१ तथा उसके उपभेदों का बड़ी सरलता से अनुसरण किया जा सकता है। यदि व्यवहृत वर्गीकरण पद्धति में वर्ग-समङ्क व्यंजक-घटनात्मक हों तथा समङ्क और सापेक्षता के उपसूत्रों[२४] का अनुपालन करते हों तो दूसरी पद्धति के लिए भी प्रस्तुत धाराएं बहुत अंशों तक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

चाहे किसी प्रकार की वर्गीकरण-पद्धति काम में लाई जाय, इस कल्प की सभी धाराएं पूर्णतः उपयोग में लाई जा सकती हैं।

निश्रेणि-सरणिः

३१०० वर्ग-निर्देशि-संलेख-शीर्षक-वरण-उपकल्पने निश्रेणि-सरणिः।

३१०० वर्ग-निर्देशि-संलेखस्य शीर्षकस्य वरणे उपकल्पने च अधोनिर्दिष्टा निश्रेणि-सरणिः उपकरणं स्यात्।

३१०० वर्ग निर्देशी संलेख के शीर्षक के वरण तथा उपकल्पन में निम्नलिखित निश्रेणि-सरणि साधन होगी।

३१०० इस कल्प के अंग्रेज़ी मूल की प्रथम आवृत्ति में दी हुई, वर्ग-निर्देशी-संलेखों के उपकल्पन तथा वर्ण की धाराएं लाघव-न्याय[२५] को कितनी ही प्रिय लगें, किन्तु ग्रन्थालय-शास्त्र के प्रथम चार सूत्रों को तो उनसे महान् असन्तोष होता है। यह स्वाभाविक ही है। विशेषकर उन ग्रन्थालयों में जहाँ सर्वथा मुक्त-आसंग नहीं होता, पर्याप्त फलक-दर्शक नहीं होते या समर्थ अनुलय-सेवा[२६] की व्यवस्था नहीं होती। उन धाराओं द्वारा जो लाघव अथवा मितव्ययिता सिद्ध की जाती है वह

---

२४. रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय वर्गीकरण प्रवेश (*Prolegomena to library classification*). १९३७ (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशनमाला, ६). पृ. ६१; ९०-९२.

२५. रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रन्थालय सूची सिद्धांत. १९३८. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशनमाला, ७). पृ. ५४-५९.

२६. तत्रैव. पृ. ३६९-३७०.

बड़ी ही कठोर है। इसका आदर राष्ट्रीय-केन्द्र ग्रन्थालय सरीखे ग्रन्थालयों में हो सकता है, जहां ग्रन्थों की निरन्तर महती बृद्धि होती ही रहती है। साधारण पाठक अपने उद्दिष्ट विशिष्ट विषयों को चाहे भलीभांति जानते हों, किन्तु वे पूर्वोक्त प्रकार की कठोर मितव्ययिता से बनाए हुए वर्ग निर्देशी-संलेखों का उपयोग सरलता से नहीं कर सकते और वे न सूची के अनुवर्ग भाग में अथवा फलकों पर ही, अपने उद्दिष्ट विषयों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

इस कल्प के अंग्रेज़ी मूल रूप की द्वितीय आवृत्ति में दी हुई वैकल्पिक धाराएं निश्रेणि-सरणि का अनुसरण करती हैं। मितव्ययिता के सम्बन्ध में उनकी कठोरता मूल धाराओं से कुछ कम ही है। तथा वे वर्ग निर्देशी संलेखों की व्यवस्था करने में अधिक उदारता का आश्रय करती हैं। अतः स्वभावतः उनके कारण पाठक अधिक स्वतंत्र हो जाते हैं। उन्हें अनुलय ग्रन्थालयियों का अधिक मुँह नहीं ताकना पड़ता।

प्रस्तुत पुस्तक के मूल-अंग्रेजी रूप के तृतीय संस्करण में दी हुई धाराएं अधिक सरल निश्रेणि-सरणि का अनुसरण करती हैं। उनका उद्देश्य यह है कि अनुलय ग्रन्थालयियों की और भी कम सहायता ली जाय। शब्दान्तरों में पाठक यथासम्भव स्वयं ही अपने उद्दिष्ट विशिष्ट विषयों को ढूंढ निकाल सकें। जब हम १६४८ में भारत सरकार के श्रम-विभाग के ग्रंथालय की सूची बना रहे थे तब हमने इसकी आवश्यकता का अनुभव किया था।

ब्रिटिश म्यूज़ियम में ब्रिटिश राष्ट्रीय ग्रन्थ-सूची (ब्रिटिश नेशनल बिब्लियोग्राफ़ी) के सम्पादक बड़ी ही दृढ़ता से हमारी निश्रेणि-सरणि का उपयोग करते हैं। उनके उस ढंग को देखकर हमारी पूर्वोक्त धारणा और भी दृढ़तर हो गई है। पूर्वोक्त तृतीय प्रकार की धाराएं द्वितीय प्रकार की धाराओं की अपेक्षा एक दृष्टि से तो न्यूनतर लाघव उत्पन्न करती हैं। किन्तु दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो वे (तृतीय) द्वितीय की अपेक्षा और भी अधिक लाघव उत्पन्न करती हैं। इसका कारण अवांछित बन्धों की कल्पना है, जिसका ३१०२ धारा में लक्षण दिया गया है। ब्रिटिश राष्ट्रीय ग्रन्थसूची द्वारा प्राप्त अनुभव ही उपर्युक्त कल्पना का जनक है।

धाराः

३१००१ **वर्ग-समङ्कः वर्ग-निश्रेणिः।**

३१००२ **निश्रेणि-लेखन-सरणिर्यथा।**

११ प्रथमबन्धः प्रथमाङ्कात्मकः;
१२ प्रत्यनन्तर-बन्धम् एकाङ्क-वृद्धि;
१३ अन्त्य-बन्धे सर्वाङ्काः;
२ यथाक्रममधोऽधो बन्धः;
३१ प्रतिबन्ध-स्वाभाविक-भाषा-रूपान्तरं दक्षिणे;
३२ समबोधक चिह्नं योजकम्;
४ अधोमुख-बाणः समबोधक-चिह्न-द्वय-योजकः ।

३१००१ वर्ग-समङ्कः वर्गाणां निश्रेणि-रूपेण स्थाप्यः ।

३१००२ निश्रेण्याः लेखनस्य सरणिः निम्नलिखिता भवति ।

११ प्रथमे बन्धे प्रथमः अङ्कः लेख्यः ।

१२ तदनन्तरम् प्रत्येकस्मिन् बन्धे एकाङ्कस्य वृद्धिः कार्या ।

१३ अन्तिमे बन्धे वर्ग-समङ्कस्य सर्वेऽपि अङ्काः लेख्याः ।

२ एकस्य बंधस्य अधस्तात् अन्यः बन्धः क्रमशः लेख्यः ।

३१ प्रत्येकस्य बन्धस्य स्वाभाविक-भाषायां रूपान्तरं बन्धस्य दक्षिणे पार्श्वे लेख्यम् ।

३२ समबोधकं '=' चिन्हं बन्धस्य रूपान्तरस्य च उभयोः योजकं भवति ।

४ अधोमुखः बाणः एकस्य उपरिवर्तिनः समबोधक-चिन्हस्य तदधोवर्तिनः अपरस्य समबोधक-चिन्हस्य च उभयोः योजकः भवति ।

३१००१ **वर्ग-समंक वर्गों की निश्रेणि के रूप में रखा जाय ।**

३१००२ शृंखला के लिखने की शैली निम्नलिखित है :—

११ प्रथम बन्ध म प्रथम अंक लिखा जाय;

१२ उसके अनन्तर प्रत्येक बन्ध में एक अंक बढ़ाया जाय;

१३ अन्तिम बन्ध में वर्ग-समंक के सभी अंक लिख दिए जायं;

२ एक बन्ध के नीचे अन्य बन्ध क्रमशः लिख दिए जायं;

३१ प्रत्येक बन्ध के रूपान्तर को स्वाभाविक भाषा के बन्ध के दाहिनी ओर लिखा जाए;

३२ समबोधक '=' चिन्ह को बन्ध और उसके रूपान्तर दोनों के बीच योजक रूप में लिखा जाय;

४ अधोमुख बाण-किसी ऊपर के एक समबोधक चिन्ह तथा उसके नीचे के अन्य बोधक चिन्ह इन दोनों के बीच योजव रूप में लिखा जाय।

३१००२ इस प्रकार लिखे जाने का कारण केवल यही है कि इस साधन के द्वारा निश्रेणि का स्वरूप अभासित हो सके।

३१०१ वर्ग-समङ्क-प्रतियोगि-अनामक-अन्त्य-मुख-लक्ष्यक-अन्यतर-बन्ध मिथ्या-लक्ष्यम् ।

३१०१ यः बन्धः वर्ग-समङ्कः न भवति, अर्थात् वर्गीकरण-धारानुसारी, बोध-विषयः चिन्हानां प्रतिरूपाणां समवायः न भवति, अथवा

यस्य बन्धस्य अन्त्येमुखे विद्यमानं लक्ष्यं नाम-रहितं भवति, अर्थात् स्वाभाविक-भाषायां सामान्य-व्यवहारे यस्य नाम न प्रचलितं भवति,

तौ उभौ अपि-बन्धौ मिथ्या-बन्धौ इति उच्येते ।

३१०१

१ जो बन्ध वर्ग-समंक नहीं होता, अर्थात् वर्गीकरण की धाराओं का अनुसरण करने वाला, बोध-गम्य चिन्हों का समवाय नहीं होता, अथवा

२ जिस बन्ध के अन्त्य मुख में विद्यमान लक्ष्य नाम रहित होता है, अर्थात् स्वाभाविक भाषा और सामान्य व्यवहार में जिसका नाम प्रचलित नहीं होता,

वे दोनों ही बन्ध मिथ्या-बन्ध कहे जाते हैं।

३१०१ उदाहरणार्थ—यदि किसी बन्ध के अन्त में निम्नलिखितों में से कोई एक हो तो उस बन्ध को मिथ्या-बन्ध माना जायः—

१ योजक-चिन्ह; अथवा

२ बोध-चिन्ह; अथवा

३ अधिकतर अवसरों पर दो से न्यून अंगों का बना हुआ काल-समंक।

३१०२ मुख-लक्ष्य-आश्लेष-अभ्यन्तर-अंश-विरत-ग्रन्थ-रचना-अन्वेषण-विषयता-शून्य-मूल-वर्ग संख्या-अन्त्य-बन्ध-बोध्य-विशिष्ट विषय-ग्रन्थ-अन्वेषक-अनन्विष्ट-विशिष्ट-विषय-बोधक : बन्ध : अवाञ्छित बन्ध :।

३१०२ यः बन्धः

१ कस्यचित् मुखस्य कस्यचित् लक्ष्यस्य अंशे एव विरतः भवति, अथवा कस्यचित् आश्लेषस्य अंशे एव विरतः भवति;

२ यः च तादृशं विशिष्टं विषयं बोधयति यः ग्रन्थानां रचनायाः अन्वेषणस्य वा पात्रं न संभाव्यते, अथवा तादृशं विशिष्ट-विषयं बोधयति यः मूल-भूतस्य वर्ग-समङ्कस्य अन्त्येन बन्धेन बोध्यस्य विशिष्ट-विषयस्य ग्रन्थानाम् अन्वेषकेन पाठकेन न अन्विष्यते ;

तादृशः बन्धः अवांछितः बन्धः इति उच्यते।

३१०२ **जो बन्ध**

१ किसी मुख के किसी लक्ष्य में ही विरत हो जाय, अथवा किसी आश्लेष के अंश में ही विरत हो जाय; तथा

२ किसी ऐसे विशिष्ट विषय का बोध कराये जिसमें ग्रन्थों की रचना की अथवा खोज की संभाव्यता न हो, अथवा जो ऐसे किसी विशिष्ट विषय का बोध कराये जिसके मूल-भूत वर्ग-समंक के अन्तिम बन्ध द्वारा बोध्य विशिष्ट विषय के खोजने वाले पाठक के द्वारा उसके खोजे जाने की सम्भाव्यता न हो, ऐसा बन्ध अवांच्छित - बन्ध कहा जाता है।

३१०२ इस धारा के व्यवहार में स्थान-भेद की छूट दी गई है। किस प्रकार की अध्ययन सामग्री का संगठन किया गया है, सेव्य पाठकों की अभिरुचि कैसी है, किस प्रकार की सेवा उद्दिष्ट है आदि वस्तुओं का विचार कर प्रत्येक ग्रन्थालय अथवा संघटन को निर्णय करना चाहिए कि किन बन्धों को अवांछित माना जाय। इसके निर्णय के लिए ठीक उसी मार्ग का आश्रय लिया जाय जो अपने लिए सर्वथा उपयुक्त हो। इस प्रकार का जो यथार्थ, स्थानीय लक्षण हो उसका सदा नियमित रूप से अनुसरण किया जाय। यहां हमने "संघटन" शब्द का उपयोग राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय ग्रन्थ सूचियों के तथा सामयिक-प्रकाशनों की समूह सूची के निर्माण कार्य में लगी हुई समष्टियों को ध्यान में रखकर किया है।

३१०३ मिथ्या-अवाञ्छित-इतर-बन्धः सार्थकः।

३१०३ यः बन्धः मिथ्या-बन्धः न भवति, यः च अवांछितः बन्धः अपि न भवति सः बन्धः सार्थकः बन्धः इति उच्यते।

३१०३ **जो बन्ध मिथ्या अथवा वांछित न हो, वह सार्थक बन्ध होता है।**

३१०३ <u>उदाहरण</u>

सूचन—११ धारा ३१०१ के द्वितीय प्रकार के मिथ्या-बन्धों के आगे वर्ग नाम वृत्त कोष्ठकों में दिए गए हैं।

१२ अन्य मिथ्या-बन्धों के आगे वर्गनाम नहीं दिए गए हैं।

२ अवांछित-बन्धों के आगे वर्ग नाम ऋजु कोष्ठकों में दिए गए हैं।

३ सार्थक-बन्धों के आगे वर्ग-नाम किसी कोष्ठक में आवृत्त किए बिना ही रखे गए हैं।

४ ६३ से लेकर आगे के उदाहरणों में अस्थायी बोध-चिन्ह लगाए गय हैं। **द्विबिन्दु वर्गीकरण** की चतुर्थ आवृत्ति में ही उनका अन्तिम रूप स्थिर किया जा सकता है। तब तक उन्हें अस्थायी ही कहना पड़ेगा।

<u>उदाहरण १</u> वर्ग-समंक ड ४५ : ४२१

ड = आयुःशास्त्र
↓
ड ४ = श्वास प्रणाली का आयुःशास्त्र
↓
ड ४५ = फेफड़ों का आयुःशास्त्र
↓
ड ४५ : =
↓
ड ४५ : ४ = फेफड़ों का रोग
↓
ड ४५ : ४२ = संक्रामक रोग
↓
ड ४५ : ४२१ = क्षय

चतुर्थ बन्ध मिथ्या है, कारण उसके अन्त में ":" यह योजक चिन्ह है। अतः उसके आगे कोई वर्ग नाम नहीं दिखलाया गया है। अन्य बन्ध सार्थक हैं।

<u>उदाहरण २</u> वर्ग-समंक द १५२ : २ ढ ८९ : २५

द = साहित्य
↓
द १ = [यूरोपीय साहित्य]
↓
द १५ = [संस्कृत साहित्य]
↓
द १५२ = हिन्दी साहित्य
↓
द १५२ : =
↓
द १५२ :२ = हिन्दी नाट्य
↓
द १५२ : २ढ =
↓
द १५२: २ ढ ८ =

द १५२ : २ ढ ८६ = प्रसाद (जयशंकर)
↓
द १५२ : २ ढ ८६ : =
↓
द १५२ : २ ढ ८६: २ = (प्रसादीय नाटकों का द्वितीय अष्टक)
↓
द १५२ : २ ढ ८६: २५ = ध्रुवस्वामिनी

जिन बँधों के आगे वर्ग-नाम नहीं दिया गया है,वे मिथ्या बंध हैं एवं जिनके आगे ऋण कोष्ठकों में वर्ग नाम दिया गया है वे अवांछित बंध हैं। शेष सार्थक बंध हैं।

उदाहरण ३ वर्ग-समंक श ढ २५६ झ : ५१ : ७३ : थ ३

श = अर्थ शास्त्र
↓
श ढ =
↓
श ढ २ =
↓
श ढ २५ = सहकारिता
↓
श ढ २५६ = सहकारी उद्योग
↓
श ढ २५६ झ = सहकारी कृषि
↓
श ढ २५६ झ : =
↓
श ढ २५६ झ : ५ = सहकारी कृषि में वाणिज्य
↓
श ढ २५६ झ :५१ = सहकारी कृषि के वाणिज्य में आपणन
↓
श ढ २५६ झ :५१: =
↓
श ढ २५६ झ : ५१:७ = [अमेरिका में ,, ,,]
↓
श ढ २५६ झ: ५१:७३ = संयुक्त राष्ट्र में ,, ,,
↓
श ढ २५६ झ : ५१ : ७३: =
↓
शढ २५६ झ : ५१ : ७३: थ = (,, १६००–६ तक)
↓
श ढ २५६ झ : ५१ : ७३: थ ३ = (,, १६३०–६ तक)

जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम वृत्त कोष्ठक में दिए गए हैं तथा जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम नहीं दिए गए हैं वे बन्धधारा ३१०१ के अनुसार मिथ्याबन्ध है।

जिन बन्धों के आगे वर्गनाम ऋजु कोष्ठकों में दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०२ के अनुसार अवांछित-बन्ध हैं। अन्य बन्ध धारा ३१०३ के अनुसार सार्थक-बन्ध हैं।

उदाहरण ४ वर्ग-समंक ल ४४ : २ : ६ ह

ल = इतिहास
↓
ल ४ = [एशियाई इतिहास]
↓
ल ४४ = भारतीय इतिहास
↓
ल ४४ : =
↓
ल ४४: २ = भारतीय वैधानिक इतिहास
↓
ल ४४: २ : =
↓
ल ४४ : २ : ६ =
↓
ल ४४ : २ : ६ ह = भारतीय वैधानिक विधि

जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम नहीं दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०१ के अनुसार मिथ्या बन्ध हैं।

जिन बन्धों के आगे वर्ग नाम ऋजु कोष्ठकों में दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०२ के अनुसार अवांछित-बन्ध हैं।

अन्य बन्ध धारा ३१०३ के अनुसार सार्थक-बन्ध हैं।

उदाहरण ५ वर्ग-समंक म ६ स ३१ भं ४४ : थ ३

म = शिक्षा शास्त्र
↓
म ६ =
↓
म ६ स =
↓
म६ स ३ =
↓
म ६ स ३१ = ग्राम शिक्षण

म ६ स ३१ भं = ग्राम शिक्षण का गणन
↓
म ६ स ३१ भं ४ = [एशिया में ,,]
↓
म ६ स ३१ भं ४४ = भारत में ,,
↓
म ६ स ३१ भं ४४ : =
↓
म ६ स ३१ भं ४४ : थ = (,, १६००-६६ तक)
↓
म ६ स ३१ भं ४४ : थ ३ = (,, १६३०-६ तक)

जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम वृत्त कोष्ठक में दिए गए हैं तथा जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम नहीं दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०१ के अनुसार मिथ्या-बन्ध हैं।

जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम ऋजु कोष्ठक में दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०२ के अनुसार अवांछित-बन्ध हैं।

अन्य बन्ध धारा ३१०३ के अनुसार सार्थक-बन्ध हैं।

उदाहरण ६ वर्ग-समंक ह ४४ : ३ पं ढ ७२

ह = विधि
↓
ह ४ = [एशियाई ,,]
↓
ह ४४ = भारतीय विधि
↓
ह ४४ : =
↓
ह ४४ : ३ = संविदा की ,,
↓
ह ४४ : ३ पं = भारतीय संविदा विहित
↓
ह ४४ : ३ पं ढ = (१८००-६६ तक के ,,)
↓
ह ४४ : ३ पं ढ ७ = (१८७०–७६ तक के ,,)
↓
ह ४४ : ३ पं ढ ७२ = १८७२ का भारतीय संविदा विहित

जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम वृत्त कोष्ठक में दिए गए हैं तथा जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम नहीं दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०१ के अनुसार मिथ्या-बन्ध हैं।

जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम ऋजु कोष्ठक दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०२ के अनुसार अवांच्छित बन्ध हैं।

अन्य बन्ध धारा ३१०३ के अनुसार सार्थक-बन्ध हैं।

उदाहरण ७ वर्ग-समंक ऊ शं ढ ८७ : ६

ऊ = गणित
↓
ऊ शं = गणितीय कृतियाँ
↓
ऊ शं ढ = (१८००-९९तक उत्पन्न ग्रंथकारों की कृतियाँ)
↓
ऊ शं ढ ८ = (१८८०-९ तक " " ")
↓
ऊ शं ढ ८७ = रामानुजन की कृतियां
↓
ऊ शं ढ ८७ : =
↓
ऊ शं ढ ८७ : ६ = " कृतियों की समीक्षा

जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम वृत्त कोष्ठक में दिए गए हैं तथा जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम नहीं दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०१ के अनुसार मिथ्या-बन्ध हैं।

अन्य बन्ध धारा ३१०३ के अनुसार सार्थक-बन्ध हैं।

उदाहरण ८ वर्ग समङ्क द १५२ : २ ढ ८६ : ६ शं थ १० : ६

द १५२ : २ ढ ८६ : ६ = प्रसादीय समीक्षा
↓
द १५२ : २ ढ ८६ : ६ शं = प्रसादीय समीक्षा विषयक कृतियाँ
↓
द १५२ : २ ढ ८६ : ६ शं थ = (१९००-९९ तक की ")
↓
द १५२ : २ ढ ८६ : ६ शं थ १ = (१९१०-१९ तक ")
↓
द १५२ : २ ढ ८६ : ६ शं थ १० = प्रसादीय समीक्षा विषयक जगन्नाथप्रसाद शर्मा की कृतियाँ
↓
द १५२ : २ ढ ८६ : ९ शं थ १० : =
↓
द १५२ : २ ढ ८६ : ६ शं १० : ६ = प्रसादीय स मीक्षा विषयक जगन्नाथ प्रसाद शर्मा की कृतियों की समीक्षा

जिन बन्धों के आगे वर्ग-नाम वृत्त कोष्ठक में दिए गए हैं तथा जिन बन्धों के आगे वर्गनाम नहीं दिए गए हैं वे बन्ध धारा ३१०१ के अनुसार मिथ्या-बन्ध हैं।

अन्य बन्ध धारा ३१०३ के अनुसार सार्थक-बन्ध हैं।

इस उदाहरण में निश्रेणि का केवल निचला अंश दिखाया गया है। ऊपरी भाग उदाहरण २ के समान ही है।

उदाहरण ६१ वर्ग-समङ्क ऊO ख

ऊ = गणित
↓
ऊO =
↓
ऊO ख = यन्त्र कलेय गणित

जिस बन्ध के आगे वर्ग-नाम नहीं दिया गया है वह बन्ध धारा ३१०१ के अनुसार मिथ्या-बन्ध है।

अन्य बन्ध धारा ३१०३ के अनुसार सार्थक-बन्ध हैं।

उदाहरण ६२ वर्ग-समंक क ४७O ख

क = वस्तु शास्त्र
↓
क ४ = ताप
↓
क ४७ = ताप-गति
↓
क ४७O =
↓
क ४७O ख = यन्त्र कला विशारदों के लिए तापगति

चतुर्थ बन्ध मिथ्या है तथा अन्य बन्ध सार्थक हैं।

उदाहरण ६३ वर्ग-समंक घ ५५O ढ ६

घ = रसायन कला
↓
घ ५ = प्रांगार रसायन कला
↓
घ ५५ = इन्धन रसायन ,
↓
घ ५५O =
↓
घ ५५O ढ =

↓

घ ५५० ढ ६ = काच-उद्योग-अर्थक-इन्धन रसायन कला

चतुर्थ तथा पंचम बन्ध मिथ्या हैं, द्वितीय बन्ध अवाञ्छित है तथा अन्य बन्ध सार्थक हैं।

उदाहरण ६४ वर्ग-समंक ह ४४: ३O श : ५४५

ह ४४:३O =
↓

ह ४४ : ३O श = अर्थ शास्त्र-अर्थक भारतीय संविदा विहित
↓

ह ४४: ३O श : =
↓

ह ४४ : ३O श: ५ = वाणिज्य अर्थक " " "
↓

ह ४४ : ३O श : ५४ = आयात-निर्यात-अर्थक भारतीय संविदा विहित
↓

४४ : ३O श : ५४५ = निर्यात-अर्थक " " "

प्रथम तथा तृतीय बन्ध मिथ्या हैं, पंचम बन्ध अवांछित है तथा अन्य बन्ध सार्थक हैं।

प्रथम से पूर्व के बन्ध उदाहरण ६ में पहले ही दिये जा चुके हैं।

उदाहरण ६५ वर्ग-समंक व. गं र

व = राजशास्त्र
↓

व. =
↓

व. गं =
↓

व. गं र = भू-राजशास्त्र

द्वितीय तथा तृतीय बन्ध मिथ्या हैं। प्रथम तथा चतुर्थ बन्ध सार्थक हैं।

उदाहरण ९६ वर्ग-समंक श: ३. चं ह : २

श = अर्थ शास्त्र
↓

श: =
↓

श: ३ = वितरण
↓

शः ३. =
↓
शः ३. चं =
↓
शः ३. चं ह = वितरण का विधि पर प्रभाव
↓
शः ३. चं ह =
↓
शः ३. चं हः २ = वितरण का सम्पत्ति-विधि पर प्रभाव

चार बन्ध मिथ्या हैं, एक अवाञ्छित है तथा तीन समर्थक ह।

उदाहरण ९७ वर्ग-समंक क. कं ग

क = वस्तु शास्त्र
↓
क. =
↓
क. कं =
↓
क. कं ग = वस्तु शास्त्र तथा रसायन शास्त्र की तुलना

चार बन्धों में से दो मिथ्या हैं तथा दो सार्थक हैं।

उदाहरण ९८ वर्ग समंक स ११-३१:७२. कं स ११-३३:७२

स = समाज शास्त्र
↓
स १ =
↓
स ११ = बाल
↓
स ११- =
↓
स ११-३ =
↓
स११-३१ = ग्रामीण बाल
↓
स११–३१ : =
↓
स ११-३१ :७ = ग्रामीण बाल का व्यक्तित्व
↓
स११-३१ : ७२ =
↓

स ११-३१ : ७२. =
↓
स ११-३१ : ७२. कं =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स १ =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स ११ =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स ११– =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स ११–३ =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स ११-३३ =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स ११-३३ : =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स ११-३३ : ७ =
↓
स ११-३१ : ७२. कं स ११–३३ :७२= ग्रामीण बाल तथा नागरिक बाल की संतुलित मेधा

यहां सत्रह बन्ध मिथ्या हैं, एक अवाञ्छित है तथा पांच सार्थक बन्ध हैं।

---

३११ शीर्षकम्
शीर्षक
वरणम्
वरण

३११ **प्रति-प्रधान-विषयान्तर-संलेख-वर्ग-समङ्क-निश्रेणि-प्रति-सार्थक-बन्ध-अन्त्य-अङ्क-बोध्य-पदं शीर्षकम् ।**

३११ र्ग-निर्देशि-संलेखे प्रत्येकस्य प्रधान-संलेखस्य, विषयान्तर-संलेखस्य च वर्ग-समङ्कस्य परिणाम-

रूपायाः निश्रेण्याः प्रत्येकस्य सार्थकस्य बन्धस्य अन्त्येन अङ्केन बोध्यं पदं शीर्षकं भवति ।

३११ **वर्ग-निर्देशी-संलेख में प्रत्येक प्रधान संलेख के तथा विषयान्तर-संलेख के वर्ग-समंक की परिणाम-स्वरूप निश्रेणि के प्रत्येक सार्थक बन्ध के अन्त्य अंक द्वारा बोध्य पद शीर्षक होता है ।**

३११ वर्ग निर्देशी संलेखों का एक यह उद्देश्य है कि पाठक जिस विशिष्ट विषय में अभिरुचि रखता हो उससे सम्बद्ध अध्ययन-सामग्री किस वर्ग-समंक के नीचे प्राप्त होगी, उसका उसे ज्ञान करा दे। बहुधा पाठक अपने उद्दिष्ट विषय के नाम ग्रहण तथा निर्देश में असमर्थ रहता है। अधिक से अधिक वह यह कर सकता है कि अधिक व्यापक विषय का ही नाम ले ले। इसका कारण उसकी अपनी स्वतन्त्र विचार-धारा हो सकती है। और यह भी हो सकता है कि ग्रंथालय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों को वह जानता ही न हो। उसकी यह भ्रांत धारणा हो सकती है कि जिन गहन विषयों में उसकी अभिरुचि है उतने सूक्ष्मतम विशिष्ट विषयों को लेकर ग्रन्थालय सूची में संलेख ही न बनाए गए हों। चाहे कोई भी कारण क्यों न हों,यह एक तथ्य है कि जिन विषयों की आवश्यकता होती है उनकी अपेक्षा अधिकव्यापक विषय ही पाठकों द्वारा ढूंढे जाते हैं। इसी संभावित आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त धारा के द्वारा, निश्रेणि के न केवल अन्तिम सार्थक-बन्ध अपितु ऊर्ध्ववर्ती बन्धों के प्रत्येक सार्थक-बन्धों के लिए, वर्ग-निर्देशी-संलेख की व्यवस्था की गई है।

३१११ पूर्वधारा-अधिगत-व्यक्ति-साधन-असमर्थ-शीर्षक-पदं प्रधान-शीर्षकम् ।

३१११०१ व्यक्ति-साधनाय प्रस्तुत-उपसूत्र-साहाय्य पूर्वबन्ध-अन्त्य अङ्क-अधिगत-अतिरिक्त-पदं व्यक्ति-साधकम् ।

३१११०२ न्यूनतम-बन्ध-उपयोगः ।

३१११०३ प्रति-अतिरिक्त-पदम् उपशीर्षकम् ।

३१११०३०	**पृथक् वाक्यम् ।**
३१११०४	**प्रति-शीर्षक-उपशीर्षक केवल-विशेष्यम् ।**
३१११०५	**आवश्यकत्वे सविशेषणम् ।**
३१११०५०	**यथा—**
	'बीजगणितीयं समीकरणम्'
	'पाचन-प्रणाली'
	'समूह-शास्त्राणि' च
३१११	शीर्षकहेतोः पूर्व-धारया अधिगतं पदं व्यक्ति-साधने असमर्थं चेत् प्रधान-शीर्षकम् इति स्वीकार्यम्।
३१११०१	व्यक्ति-साधनाय प्रस्तुत-उपसूत्रस्य साहाय्येन पूर्व-वर्तिनः एकस्य एकाधिकस्य वा बन्धस्य अन्त्यात् अङ्कात् अधिगतेन केनचित् अतिरिक्तेन पदेन व्यक्ति-साधनं कार्यम् ।
३१११०२	ईदृश-बन्धानां न्यूनतमः उपयोगः श्रेयान् ।
३१११०३	पूर्वोक्त-प्रकारेण प्राप्तं प्रत्येकम् अतिरिक्तं पदं उपशीर्षकं भवति ।
३१११०३०	प्रत्येकम् उपशीर्षकं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।
३१११०४	प्रत्येकं शीर्षकम् उपशीर्षकं च केवलं विशेष्यं भवति।
३१११०५	आवश्यकं चेत्, तत् विशेष्यं विशेषणेन विशिष्टं कार्यम् ।
३१११	**यदि शीर्षक के लिए पूर्व धारा से प्राप्त पद व्यक्ति-साधन करने में असमर्थ हो, तो उसे प्रधान शीर्षक के रूप में लिया जाय।**
३१११०१	**व्यक्ति साधन के लिए प्रस्तुत-उपसूत्र[२७] की सहायता से**

२७ रंगनाथन (श्री. रा.)· ग्रन्थालय वर्गीकरण प्रवेश. १९३७. (मद्रास ग्रन्थालय संघ, प्रकाशन माला, ६). पृ. ७१-७२.

पूर्ववर्ती किसी एक अथवा अधिक बन्ध से प्राप्त किए हुए अतिरिक्त पद द्वारा व्यक्ति-साधन किया जाय ।

३१११०२ इस प्रकार के बन्धों का कम से कम उपयोग श्रेयस्कर है।

३१११०३ पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त प्रत्येक अतिरिक्त पद उपशीर्षक होता है ।

३१११०३० प्रत्येक उपशीर्षक पृथक् वाक्य माना जाय ।

३१११०४ प्रत्येक शीर्षक तथा उपशीर्षक केवल विशेष्य होता है ।

३१११०५ यदि आवश्यकता हो, तो उस विशेष्य के साथ विशेषण लगा दिया जा सकता है ।

३१११०५० उदाहरणार्थ,

'बीजगणितीय समीकरण', पाचन-प्रणाली'; तथा 'समूह-शास्त्र' का उल्लेख किया जा सकता है ।

३११२ संपूर्ण-वर्ग-समङ्क-तदंश-मात्र-अन्यतरस्य व्यक्ति-वाचक-नामत्व-लोक-प्रसिद्ध-एक-पद-रूपान्तर-सहत्व-अन्यतरत्वे तत् शीर्षकम् ।

३११२ संपूर्णः वर्ग-समङ्कः, तस्य अंश-मात्रं वा व्यक्ति-वाचक-नाम चेत्, लोके प्रसिद्धं एकपदात्मकं रूपान्तरं वा सहेत चेत् तत् नाम-पदं शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

३११२ यदि सम्पूर्ण वर्ग-समंक अथवा उसका अंशमात्र व्यक्ति-वाचक नाम हो, अथवा उसका लोक-प्रसिद्ध एक पद के रूप म रूपान्तर किया जा सकता हो, तो उस नाम अथवा पद को शीर्षक के रूप म लिया जाय ।

उपकल्पनम्

उपकल्पन

३११४ **मानित-व्यवहृत-वर्गीकरण-पद्धति-परिगणित-पदानि शीर्षकाणि ।**

३११४१ **व्यक्ति-नाम-शीर्षक-पदं १२१ धारोप-धारामनु ।**

३११४२ **समष्टि-नाम-शीर्षक-पदं १२३ धारोप-धारामनु ।**

३११४३ **अप्राप्त-पूर्व धारा-द्वय-एकाधिक-पदात्मक-शीर्षक-पदे प्रति-समस्त पद-वाक्य-पदानि अनुस्वभाव-क्रमम् ।**

३११४ मानितायां व्यवहृतायां च वर्गीकरणस्य पद्धत्यां परिगणितानि पदानि शीर्षकत्वेन स्वीकार्याणि ।

३११४१ शीर्षकत्वेन व्यवहृतं पदं व्यष्टि-नाम चेत् तत् प्रथमाध्यायस्य १२१ धारां तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम् ।

३११४२ शीर्षकत्वेन व्यवहृतं पदं समष्टि-नाम चेत् तत् प्रथमाध्यायस्य १२३ धारां तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम् ।

३११४३ ३११४१-३११४२ धारयोः अप्राप्तौ, शीर्षकत्वेन व्यवहृते पदे च एकाधिक-पदात्मके समस्त-पदस्य सर्वाणि पदानि तेषां स्वाभाविकं क्रमम् अनुसृत्य लेख्यानि ।

३११४ **मानित तथा व्यवहार में लाई हुई वर्गीकरण की पद्धति में परिगणित पद शीर्षक के रूप में स्वीकार किए जायं ।**

३११४१ शीर्षक के रूप में व्यवहृत पद यदि व्यक्ति का नाम हो तो वह प्रथम अध्याय की १२१ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय ।

३११४२ शीर्षक के रूप में व्यवहृत पद यदि समष्टि का नाम हो, तो वह प्रथम अध्याय की १२३ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण कर लिखा जाय ।

३११४३ यदि ३११४१ तथा ३११४२ धाराओं की प्राप्ति न हो तथा शीर्षक के रूप में व्यवहृत पद में एक से अधिक पद हों, तो समस्त पद के प्रत्येक पद उनके स्वाभाविक क्रम का अनुसरण कर लिखे जायं ।

३११५ एकाधिक-आश्लेष-घटित-वर्ग-समङ्क-विभिन्न-आश्लेष-बोध्य-पदानि, व्यवहृत-वर्गीकरण-पद्धति-परिगणित-योजक-चिह्न-मानित-पर्यायि-भूत-'प्रभावयन्'-'प्रवणयन्'-'तुलयन'-प्रभृति-योग्य-पदैः योज्यानि ।

३११५ आश्लेष-संवादि-शीर्षक-अंशे एकाधिक-वाक्यमये एकम् ।

३११५ वर्ग-समङ्क एकाधिकः आश्लेषः चेत्, तस्य विभिन्नैः आश्लेषैः बोध्यानि पदानि , व्यवहृतायां वर्गीकरण-स्य पद्धत्यां परिगणितानां योजक-चिन्हानां मानित-पर्यायि-भूतैः 'प्रभावयन्' इति 'प्रवणयन्' इति, 'तुलयन्' इति, तत्सदृशैः अन्यैः वा योग्यैः पदैः यथा-स्थानम् अन्योन्यं योजनीयानि ।

३११५१ योजक-पदैः संयुक्तानां आश्लेषानां मध्ये, कस्यचन आश्लेषस्य संवादिनः शीर्षकस्य कश्चन अंशः एका-

धिक-वाक्यमयः चेत् पूर्ण-विराम-स्थाने अल्प-विरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम् ।

३११५ **यदि वर्ग-समंक में एक से अधिक आश्लेष हों, तो उन विभिन्न आश्लेषों से बोध्य पदों को, व्यवहार में लाई हुई वर्गीकरण की पद्धति में परिगणित योजक चिन्हों के मानित पर्याय रूपी, 'प्रभावित', 'प्रवण', 'तुलित', तथा उसी प्रकार के अन्य योजक पदों द्वारा यथास्थान परस्पर जोड़ दिया जाय ।**

३११५१ **यदि योजक पदों से युक्त आश्लेषों में से किसी एक आश्लेष के संवादी शीर्षक का कोई अंश एक से अधिक वाक्यों से बना हुआ हो, तो पूर्ण विराम के स्थान में अल्प-विराम कर उन वाक्यों का एक वाक्य बना लिया जाय ।**

३११६ शीर्षक-पद-प्रचलन-रूपान्तर-सावधानता ।

३११६१ प्रचलन-हानौ प्रचलत् ।

३११६ शीर्षके विद्यमानानां पदानां प्रचलन-विषये सूची-कारः निरन्तरं सावधानः भवेत् ।

३११६१ शीर्षक-पदस्य प्रचलने हानिः चेत्, तत्तत्काले प्रच-लत् पदं शीर्षकमिति स्वीकृत्य संलेखः लेख्यः ।

३११६ **शीर्षक में विद्यमान पदों की प्रसिद्धि का निरन्तर ध्यान रखा जाय ।**

३११६१ **यदि शीर्षक में विद्यमान पद के प्रचलन का अन्त हो जाय, तो उस समय में प्रचलित पद को शीर्षक के रूप में स्वीकार कर संलेख लिखा जाय ।**

३११६१ प्रस्तुत धारा एक ऐसे तत्त्व की ओर निर्देश करती है जिसके कारण वर्ग-निर्देशी-संलेख सूचीकार के लिए एक कसौटी बन जाते हैं। वर्गीकरण का एक महत्त्व-

पूर्ण उपसूत्र यह है कि वर्गीकरण की तालिका में किसी वर्ग के सूचन के लिए जो पद उपयोग में लाया जाय उसका अर्थ स्थिर हो। यह संभव है कि जो व्यक्ति ग्रंथालय का संचालन करते हों वे उस उपसूत्र का आदर करें और एक पद का एक ही अर्थ में सर्वदा उपयोग करते रहें। किंतु कुछ ऐसी अज्ञात शक्तियां सदा काम करती रहती हैं जो काल-क्रमानुसार शब्दों के अर्थों को बदल देती हैं। उन पर किसी भी व्यक्ति का नियंत्रण नहीं चल सकता। असुर, देवानां, प्रिय, आदि शब्दों के अर्थों में उतार-चढ़ाव उदाहरण स्वरूप दिये जा सकते हैं। संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो मानवोपयोग में आने वाले इन शब्दों के अर्थों में अर्थ-सम्बन्धी परिवर्तनों को रोक सके। वर्गकार तथा सूचीकार का तो कहना ही क्या ? जो परिवर्तन शताब्दी में होते हैं उनकी तो बात और है। ग्रंथालय-सूची तो एक स्थायी वस्तु है। अतः उसे इसका भी ध्यान रखना ही पड़ेगा। महान् ऑक्सफोर्ड कोश के (*Oxford Dictionary*) प्रकाशित पूरक संपुट द्वारा यह सर्वथा प्रमाणित कर दिया गया है कि एक ही पीढ़ी के अन्दर असाधारण गति से नये पद उत्पन्न होते हैं तथा पुराने पदों के अर्थों में विचित्र प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं।

जिस वस्तु की रोकथाम हम सर्वथा नहीं कर सकते हों उसे योग्य सुव्यवस्थापन द्वारा समाहित करना पड़ेगा। यही वह स्थल है जहां सांप्रतिकता के उपसूत्र द्वारा सूची के सुधार की पुकार कार्यशील होती है। यहाँ सुधार से हमारा तात्पर्य अन्तर्वर्ती सुधार [२८] से है। भौतिक पत्रक का सुधार दूसरी वस्तु है। वर्ग-निर्देशी-संलेखों के शीर्षकों के रूप में उपयुक्त पद ज्यों-ज्यों गत-काल होते जायें त्यों-त्यों अनेक नए पर्यायों के शीर्षकों से युक्त पत्रक लगाए जायं। इस प्रक्रिया में सतत अवधान तथा परिश्रम की आवश्यकता है। अन्यथा सूची द्वारा पाठकों की सहायता तो दूर रही, उल्टे उस के द्वारा अति भ्रम तथा भयानक हानि होगी। साथ ही समय समय पर इस प्रकार के संलेखों का अन्तर्निवेश यह अनिवार्य कर देता है कि सूची का भौतिक स्वरूप विशिष्ट प्रकार का हो। वह ऐसा हो जिस से हम जब चाहें तब ही जिस किसी संलेख को निकाल सकें, शुद्ध कर सकें अथवा बदल सकें और साथ ही अन्य संलेखों में किसी प्रकार की कोई गड़बड़ी भी न हो। इस

---

२८. रंगनाथन (श्री. रा.). ग्रंथालय वर्गीकरण प्रवेश. १९३७. (मद्रास ग्रंथालय संघ, प्रकाशन माला, ६). पृ. ६७.

परिस्थिति के कारण सूची का लेजर (बद्ध-संपुटित) स्वरूप सर्वथा अव्यावहारिक प्रमाणित हो चुका है तथा हमें पत्रक-सूची को सर्वोत्तम मानना पड़ता है।

३११७ विशिष्ट-वर्ग-निर्देशि-संलेखः पुनर्न ।

३११७ केनचन पुस्तकेन अपेक्षितः वर्ग-निर्देशि-संलेखः, अपरस्य पुस्तकस्य हेतोः पूर्वं लिखितः सूच्याम् आदितः एव विद्यते चेत् सः पुनरपि न लेख्यः।

३११७ किसी एक पुस्तक के द्वारा अपेक्षित कोई वर्ग-निर्देशी-संलेख यदि दूसरी पुस्तक के लिए पहले लिखा हुआ सूची में आदि से ही विद्यमान हो,तो वह फिर से न लिखा जाय।

३११७ इस धारा का तात्पर्य स्पष्ट है। किन्तु यहां यह कह देना आवश्यक है कि उपर्युक्त धारा के परिणामस्वरूप, यद्यपि निर्देशी-पत्रक न लिखा जाय, तथापि किसी ग्रंथ द्वारा अपेक्षित वर्ग-निर्देशी-संलेख का शीर्षक तो प्रधान पत्रक के पृष्ठ भाग में लिखना ही पड़ेगा। इसका कारण यह है कि प्रधान पत्रक के पृष्ठ भाग द्वारा उन सभी निर्देशी-संलेखों का पूर्णतः विश्वसनीय निर्देश होना चाहिए जो संलेख उस विशिष्ट ग्रंथ से सम्बन्ध रखते हों।

मद्रास विश्वविद्यालय ग्रंथालय में एक प्रक्रिया ढूंढ निकाली गई थी। यदि हम यहां एक साधारण किंतु महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक विवरण देना चाहें तो उस प्रक्रिया का उल्लेख किया जा सकता है। जो शीर्षक किसी पहले के ग्रंथ के कारण ग्रंथालय-सूची में आरम्भ से ही स्थान पा चुके हों वे ही शीर्षक यदि प्रधान पत्रक के पृष्ठ भाग पर पुनः आएं तो उन्हें पहचानने के लिये टायपिस्ट और Amanuensis के समझाने के लिए प्रधान पत्रक के पृष्ठ-भाग पर दिये हुए उस शीर्षक के ठीक आगे पेंसिल का एक छोटा-सा बिन्दु बना दिया जाता था। यह प्रक्रिया बड़ी ही लाभदायक प्रमाणित हुई है।

३११८ स्वनाम-ज्ञात-नामक-ग्रंथकार-स्वग्रंथकार-उभयबोधक-एकाङ्क-युक्त-चिर-गहन-ग्रंथ-

तद्व्याख्या-सदृश-कृतेः वर्ग-निर्देशि-संलेखेषु निर्दिश्यमान-शीर्षकाणि ।

३११८० यथा—

१ कृतिनाम (मुख्यशीर्षकम्);

२ ग्रंथकार-नाम (मुख्यशीर्षकम्);

३ प्रतिप्रकार-परिवृत्ति-पुरःसरं ग्रंथकार-नामानि च (मुख्यशीर्षकम्) ।

३११८०१ व्यक्ति-साधन-असमर्थ-कृति-नाम्नः परं ग्रंथकारनाम (उपशीर्षकम्);

३११८०२ व्यक्ति-साधन-असमर्थ-ग्रंथकार-नाम्नः परं कृतिनाम (उपशीर्षकम्);

३११८ कस्यचन चिर-गहन-ग्रन्थस्य, तस्य व्याख्यायाः स-दृशायाः वा कृतः,

१ स्वीयं नाम स्यात्;

२ स्व-ग्रन्थकारस्य नाम ज्ञातं स्यात्; अथ च

३ एक एव अङ्कः स्वस्य ग्रन्थस्य ग्रन्थकारस्य च उभयोः बोधकः स्यात्, तादृशायाः कृतेः वर्ग-निर्देशि-संलेखेषु निम्नलिखितानि शीर्षकाणि क्रमशः भवन्ति ।

३११८० तानि शीर्षकाणि निम्नलिखितानि भवन्ति :—

१ कृतेः नाम मुख्य-शीर्षकेषु प्रथमः प्रकारः भवति;

२ ग्रन्थकारस्य नाम मुख्य-शीर्षकेषु द्वितीयः प्रकारः भवति;

३ एकाधिक-ग्रन्थकारत्वे च प्रत्येकेन प्रकारेण परि-

वृत्तिं कृत्वा ग्रन्थकार-नामानि तृतीयः प्रकारः भवति ।

३११८०१　क्रुतेः नाम व्यक्ति-साधने असमर्थं चेत् ग्रन्थकारस्य नाम उपशीर्षकं भवति ।

३११८०२　ग्रन्थकारस्य नाम व्यक्ति-साधने असमर्थं चेत् कृतेः नाम उपशीर्षकं भवति ।

३११८　किसी चिरगहन ग्रन्थ का अथवा उसकी व्याख्या के सदृश कृति का—

१ अपना नाम हो;

२ अपने ग्रन्थकार का नाम ज्ञात हो; तथा

३ एक ही अंक अपना (ग्रन्थ का) तथा ग्रन्थकार दोनों का बोधक हो उस प्रकार की कृति के वर्ग-निर्देशी-संलेखों में क्रमशः निम्नलिखित शीर्षक होते हैं ।

३११८०　वे शीर्षक निम्नलिखित होते हैं :—

१ कृति का नाम मुख्य शीर्षकों में प्रथम प्रकार होता है;

२ ग्रन्थकार का नाम मुख्य शीर्षकों में द्वितीय प्रकार होता है;

३ एक से अधिक ग्रन्थकार होने पर प्रत्येक प्रकार से परिवृत्तिकर ग्रन्थकार के नाम तृतीय प्रकार होता है ।

३११८०१　यदि कृति का नाम व्यक्ति-साधन में असमर्थ हो, तो ग्रन्थकार का नाम उपशीर्षक होता है ।

३११८०२　यदि ग्रन्थकार का नाम व्यक्ति-साधन में असमर्थ हो, तो कृति का नाम उपशीर्षक होता है ।

३१२ अन्तरीणम्

३१२१　"प्रस्तुत-वर्ग-तदुपभेद-ग्रंथेभ्यः सूची-अनुवर्ग-भागेपुरोनिर्दिष्ट-वर्ग-संख्याया अधो द्रष्टव्यम्" इति-देशक-पदानि अन्तरीणम् ।

३१२१ शीर्षकस्य बोधकः वर्ग-समङ्कः निर्देशि-समङ्कः भवति पुस्तक-निर्देशि-संलेखे यथाक्रमं त्रयः अनुच्छेदाः भवन्ति ।

३१२१ **"प्रस्तुत वर्ग के तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिए सूची के अनुवर्ग भाग में, सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए" ये देशक पद अन्तरीण होता है ।**

३१२१ वर्ग-निर्देशी संलेखों के लिए जिन पत्रकों का उपयोग किया जाय उन पर यदि उपर्युक्त देशक-पद यथास्थान में प्रवणाक्षरों में छपा लिये जायें तो वे संलेख अधिक सुन्दर एवं सुवाच्य प्रतीत होंगे ।

निर्देशि समङ्कः

३१२२ **शीर्षक बोधक-वर्ग समङ्कः निर्देशि समङ्कः ।**

३१२२ **शीर्षक का बोध कराने वाला वर्ग-समंक निर्देशी-समंक के रूप में लिखा जाता है ।**

३१२२ धारा ३१०३ के नीचे दिये हुए वर्ग समंकों के लिए निम्नलिखित वर्ग-निर्देशी-संलेख लिखने पड़ेंगे ।

उदाहरण १

---

११. **क्षय. फेफड़े.**

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द४५:४२१

---

१२. **संक्रामक रोग. फेफड़े.**

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ड४५:४२

---

१३. रोग. फेफड़े.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समक के नीचे देखिए

ड४५:४

१४. फेफड़े. आयुःशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ड४५

१५. श्वास प्रणाली. आयुःशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ड ४

१६. आयुःशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ढ

उदाहरण २

२१. ध्रुवस्वामिनी.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २ ढ ८९ : २५

२२. प्रसाद (जयशङ्कर). नाट्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उस के उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २ ढ ८९

२३. नाट्य. हिन्दी.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २

२४. हिन्दी. साहित्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२

२५. साहित्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द

उदाहरण ३

३१. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका. आपणन. कृषि. सहकारिता.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के गन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

श ढ २५९ झ : ५१ : ७३

३२. आपणन. कृषि. सहकारिता.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अगुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

श ढ २५९ झ : ५१

३३. वाणिज्य. कृषि. सहकारिता.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

श ढ २५९ झ : ५

३४· कृषि. सहकारिता.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

श ढ २५९ झ :

३५. उद्योग. सहकारिता.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे दखिए

श ढ २५९

३६. सहकारिता. अर्थशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

श ढ २५

३७. अर्थशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

श

उदाहरण ४

४१. विधि. विधान. भारत.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ल ४४ : २ : ९ह

४२. विधान. भारत.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ल ४४ : २

४३. भारत. इतिहास.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ल ४४

४४. इतिहास.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ल

उदाहरण ५

५१. भारत. गणन. ग्राम-शिक्षण.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

म ९ स ३१ भं ४४

५२. गणन. ग्राम-शिक्षण.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

म ९ स ३१ भं

५३. ग्राम-शिक्षण.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

म ९ स ३१

५४. शिक्षण-शास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

म

उदाहरण ६.

६१. भारतीय संविदा विहित,१८७२.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ह ४४ : ३ पं ढ ७२

६२. विहित. संविदा. भारत.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ह ४४ : ३ पं

६३. संविदा. भारत. विधि.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ह ४४ : ३

६४. भारत. विधि.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ह ४४

६५. विधि.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ह

उदाहरण ७.

७१. समीक्षा. रामानुजन (श्री निवास).

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ऊ शं ढ ८७ : ९

७२. रामानुजन (श्री निवास). कृति.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ऊ शं ८७

७३. कृति. गणित.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ऊ शं

७४. गणित.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ऊ

उदाहरण ८.

८१. समीक्षा. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा. समीक्षा. प्रसाद (जयशङ्कर). नाट्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २ ढ ८९ : ९ शं थ १० : ६

८२. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा. समीक्षा. प्रसाद (जयशङ्कर) नाट्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २ ढ ८९ : ६ शं थ १०

८३. कृति. समीक्षा. प्रसाद (जयशङ्कर). नाट्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २ ढ ८९: ६: शं

८४. समीक्षा. प्रसाद (जयशङ्कर). नाट्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २ ढ ८९ : ६

८५. प्रसाद (जयशङ्कर). नाट्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २ ढ ८९

८६. नाट्य. हिन्दी.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२ : २

८७. हिन्दी. साहित्य

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द १५२

८८. साहित्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

द

उदाहरण ९१.

९११. यन्त्रकला. प्रवण गणित.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ऊ O ख

उदाहरण ९२.

९२१. यन्त्रकला प्रवण तापगति.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

क ४७ O ख

९२२. तापगति.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

क ४७

९२३. ताप.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

क ४

९२४. वस्तु-शास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

क

उदाहरण ९३.

९३१. काच-उद्योग प्रवण इन्धन, रसायन-कला.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

घ ५५ O ढ ६

९३२. इन्धन. रसायन-कला.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

घ ५५

९३३. रसायन कला.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिय अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

घ

उदाहरण ९४.

९४१ निर्यात प्रवण संविदा, विधि, भारत.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ह ४४ : ३ O श : ५४५

९४२ वाणिज्य प्रवण संविदा, विधि, भारत.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

ह ४४ : ३ O श : ५४

अन्य संलेखों को लिखने की आवश्यकता नहीं है, कारण वे उदाहरण ६ के अन्तर्गत ६३,६४ तथा ६५ संलेखों के रूप में पहले ही लिखे जा चुके हैं।

उदाहरण ९५

९५१. भू-राजशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

व. गं र

"भूगोल प्रभावित-राजशास्त्र" के लिए "भू-राज शास्त्र" इस एक पद का उपयोग किया जा सकता है। वही इस संलेख के शीर्षक के रूप में व्यवहृत किया गया है।

९५१. भूगोल.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिय अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

र

उदाहरण ९६.

९६१. संपत्ति विधि प्रभावक वितरण, अर्थशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

श : ३. चं ह: २

९६२. वितरण-अर्थशास्त्र

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

श : ३

उदाहरण ९७.

९७१. रसायनकला तुलित वस्तुशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

क. कं ग

९७२. वस्तुशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

क

उदाहरण ९८.

९८१. मेधा. नगर-बाल तुलित मेधा, ग्रामीणबाल

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

स ११-३१: ७२ कं स ११-३३: ७२

९८२. मेधा, ग्रामीण बाल.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

स ११-३१ : ७२

९८३. ग्रामीण बाल. समाजशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

स ११-३१

९८४. बाल. समाजशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

स ११

९८५. समाजशास्त्र.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

स १

उदाहरण १.

फ ६६ : ५ शं१ = शंकर. ब्रह्मसूत्रभाष्य.

↓

फ ६६ : ५ शं१२ = वाचस्पति. मिश्र भामती.

↓

फ ६६ : ५ शं१२१ = अमलानन्द. कल्पतरु.

↓

फ ६६ : ५ शं१२११ = अप्पय दीक्षित परिमल.

↓

उपर्युक्त धारा के अनुसार निम्नलिखित आठ वर्ग-निर्देशी-संलेखों को लिखने की आवश्यकता पड़ती है ।

---

१. ब्रह्मसूत्र भाष्य. शङ्कर.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

फ ६६ : ५ शं १

---

२. शङ्कर. ब्रह्मसूत्र भाष्य.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

फ ६६ : ५ शं १

---

३. भामती.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

फ ६६ : ५ शं १२

---

४. वाचस्पति मिश्र भामती.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिये हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

फ ६६ : ५ शं १२

---

५. कल्पतरु.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिये हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

फ ६६ : ५ शं १२१

---

६. अभलानन्द. कल्पतरु.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिये हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

फ ६६ : ५ शं १२१

७. परिमल.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिये हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

फ ६६ : ५ शं १२११

८. अप्पय दीक्षित. परिमल.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिए हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

फ ६६ : ५ शं १२११

उदाहरण २.

न १५ : क शं१ — पाणिनि 'अष्टाध्यायी'

↓

न १५ : क शं१८ — जयादित्या तथा वामन

अन्त्य बन्ध के कारण निम्नलिखित तीन वर्ग निर्देशी संलेख लिखने पड़ेंगे:—

२१. काशिका.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिये हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

न १५ : क शं १८

२२. जयादित्य तथा वामन.

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिये हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

न १५ : क शं १८

२३. **वामन** तथा **जयादित्य.**

प्रस्तुत वर्ग तथा उसके उपभेदों के ग्रन्थों के लिये अनुवर्ग भाग में सामने दिये हुए वर्ग-समंक के नीचे देखिए

न १५ : के शं १८

---

३२ पुस्तक-निर्देशि-संलेखः

३२ **पुस्तक-निर्देशि-संलेखे अनुच्छेदाः त्रयः ।**

३२०० **यथा—**

१ शीर्षकम् (अग्रानुच्छेदः);

२ अन्तरीण-निर्देशि-समङ्कौ;

३ नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचनं च ।

३२००२ **द्वितीयानुच्छेद-प्रतिभागो वाक्यम् ।**

३२००३ **नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचनम् उद्धार-कोष्ठके ।**

३२००२ द्वितीयस्य अनुच्छेदस्य प्रत्येकः भागः पृथक् वाक्यं भवति ।

३२००३ तृतीयानुच्छेदे नैमित्तिकस्य पुस्तकस्य अधिसूचनम् उद्धार कोष्ठके (=" ") लेख्यम् ।

३२ **पुस्तक-निर्देशी - संलेख में क्रमशः तीन अनुच्छेद होते हैं ।**

३२०० **वे तीन अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—**

१ शीर्षक (अग्रानुच्छेद); तथा

२ अन्तरीण तथा निर्देशी-समंक; तथा

३ नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचन यदि आवश्यक हो ।

३२००२ **द्वितीय अनुच्छेद का प्रत्येक भाग पृथक् वाक्य होता है ।**

३२००३ तृतीय-अनुच्छेद में नैमित्तिक-पुस्तक का अधिसूचन उद्धार कोष्ठक में (“ ”) लिखा जाय ।

३२०१ शीर्षक-अंतरीण-अभिन्न-निर्देशि-समङ्क-विभिन्न-एकाधिक-संलेखाः एकत्र ।

३२०२ क्रामक-समङ्काः यथाक्रमम् ।

३२०३ अर्ध-विरामः विभाजकः ।

३२०१ यदि एकाधिकाः संलेखाः शीर्षके अन्तरीणे च अभिन्नाः स्युः, केवलं निर्देशि-समङ्के च विभिन्नाः स्युः, तादृशाः संलेखाः एकत्र लेख्याः ।

३२०२ अस्मिन् एकीकृते संलेखे विभिन्नाः क्रामक-समङ्काः क्रमेण लेख्याः ।

३२०३ कयोश्चन द्वयोः क्रामक-समङ्कयोः अर्ध-विरामः विभाजकः भवति ।

३२०१ यदि एक से अधिक संलेख शीर्षक तथा अन्तरीण में अभिन्न हों, तथा केवल निर्देशी-समंक में ही विभिन्न हों, तो ऐसे संलेखों को एक में लिख दिया जाय ।

३२०२ इस स्वीकृत संलेख में विभिन्न क्रामक-समंक क्रमशः लिखे जायं ।

३२०३ किन्हीं दो क्रामक-समंकों को अर्द्ध-विराम द्वारा विभाजित कर दिया जाय ।

३२१ शीर्षकाणि

३२१ पुस्तक-निर्देशि-संलेखे अधस्तनानाम् अन्यतम शीर्षकम् ।

३२१० यथा--

१ पुस्तक-अपेक्षित-वर्ग-निर्देशि-संलेख-अनुपयुक्त-प्रधान-संलेख-शीर्षकम्;

२ प्रथम-प्रकारक-शीर्षक-सहग्रंथकार-सहसह-कारनाममयत्वे द्वितीय ग्रंथकार-सहकार-अन्यतरनाम;

३ प्रधान-संलेख-आख्यादि-द्वितीय-भाग-उल्लि-खित-प्रतिसहकारनाम;

४ प्रधान-संलेख-प्रति-स्वतंत्रमाला-अधि-सूचनक-माला-नाम;

५ प्रधान-संलेख-प्रति-अन्योन्यतंत्र-माला-अधिसूचन-माला-नाम;

६ उद्गृहीत-अधिसूचन-उल्लिखित-कृति-शीर्ष-कम्;

७ वर्ग-निर्देशि-संलेख-शीर्षक-अयोग्य-प्रधान-संलेख-शीर्षक-अनुपयुक्त प्रथमपद-पुस्तक-प्रतिपाद्य-विषय-असूचक-काल्पनिक-आख्या;

८ आख्या-अन्तर-प्रकाशित-पुस्तक प्रति-आख्यं प्रथम-प्रकारः ।

32100 पुस्तकापेक्षित-प्रतिप्रकारम् एकः ।

3210 पुस्तक-निर्देशि-संलेखस्य शीर्षकाणाम् अष्टौ प्रकाराः भवन्ति :—

१ यत् शीर्षकं तद्रूपम् एव, तेन पुस्तकेन अपेक्षितस्य वर्ग-निर्देशि-संलेखस्य शीर्षकत्वाय उपयुक्तं न भवति तादृशं प्रधान-संलेखस्य शीर्षकं प्रथमः प्रकारः

२ पूर्वोक्ते प्रथम-प्रकारके शीर्षके सहग्रन्थकारयोः सह-सहकारयोः वा नामनी विद्येते चेत्, द्वितीयस्य ग्रन्थकारस्य सहकारस्य वा नाम द्वितीयः प्रकारः;

३ प्रधान-संलेखस्य आख्यादि—अनुच्छेदीये द्वितीये भागे उल्लिखितस्य प्रत्येकस्य सहकारस्य नाम तृतीयः प्रकारः;

४ प्रधान-संलेखस्य प्रत्येकस्मिन् स्वतन्त्रे माला-अधिसूचने वर्तिन्याः मालायाः नाम चतुर्थः प्रकारः;

५ प्रधान-संलेखस्य प्रत्येकस्मिन् अन्योन्यतन्त्रे माला-अधिसूचने वर्तिन्याः मालायाः नाम पंचमः प्रकारः;

६ उद्गृहीत-अधिसूचने उल्लिखितायाः कृतेः शीर्षकं षष्ठः प्रकार;

७ या आख्या वर्ग-निर्देशि-संलेखस्य शीर्षकत्वाय योग्या न भवति, यस्याश्च प्रथमं पदं प्रधान-संलेखस्य शीर्षकत्वाय उपयुक्तं न भवति, या च पुस्तकस्य प्रतिपाद्यं विषयं न सूचयति, तादृशी काल्पनिका-पुस्तकस्य आख्या सप्तमः प्रकारः भवति;

८ पुस्तके विभिन्नाभिः आख्याभिः सह प्रकाशिते प्रत्येकस्यै आख्यायै प्रथमः प्रकारः पुनः अपि स्वीकार्यः ।

३२१०० विशिष्टेन पुस्तकेन अपेक्षितं प्रत्येकं प्रकारम् आश्रित्य एकैकः संलेखो लेख्यः ।

३२१ पुस्तक-निर्देशी-संलेख में निम्नलिखितों में से कोई एक शीर्षक होता है ।

३२१० पुस्तक-निर्देशी-संलेख के शीर्षकों के आठ प्रकार होते हैं :—

१ जो शीर्षक ठीक उसी रूप में, उसी पुस्तक से अपेक्षित वर्ग-

निर्देशी संलेख के शीर्षक के लिए उपयुक्त नहीं होता ऐसा प्रधान-संलेख का शीर्षक प्रथम प्रकार होता है ;

२ पूर्वोक्त प्रथम प्रकार के शीर्षक में दो सह-ग्रन्थकारों या दो सह-सहकारों के नाम विद्यमान हों, तो द्वितीय ग्रन्थकार अथवा सहकार का नाम द्वितीय प्रकार होता है ;

३ प्रधान संलेख के आख्यादि-अनुच्छेद-सम्बन्धी द्वितीय भाग में उल्लिखित प्रत्येक सहकार का नाम तृतीय प्रकार होता है।

४ प्रधान संलेख के प्रत्येक स्वतन्त्र-माला-अधिसूचन में विद्यमान माला का नाम चतुर्थ प्रकार होता है ;

५ प्रधान संलेख के प्रत्येक अन्योन्यतन्त्र-माला-अधिसूचन में विद्यमान माला का नाम पंचम प्रकार होता है ;

६ उद्गृहीत-अधिसूचन में उल्लिखित कृति का शीर्षक षष्ठ प्रकार होता है ;

७ जो आख्या वर्ग-निर्देशी-संलेख के शीर्षक के लिए योग्य नहीं होती, जिसका प्रथम पद प्रधान-संलेख के शीर्षकत्व के लिए उपयुक्त नहीं होता, और जो पुस्तक के प्रतिपाद्य विषय को सूचित नहीं करती उस प्रकार के काल्पनिक पुस्तक की आख्या सातवां प्रकार होता है;

८ यदि पुस्तक विभिन्न आख्याओं के साथ प्रकाशित हुई हो, तो प्रत्येक आख्या के लिए प्रथम प्रकार पुनः स्वीकार किया जाय।

३२१०० विशिष्ट पुस्तक के द्वारा अपेक्षित प्रत्येक प्रकार के लिए एक एक संलेख लिखा जाय ।

उपकल्पनम्

उपकल्पन

३२११ प्रथम-प्रकारक-शीर्षक प्रधान-संलेखीयम्।

३२११ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु प्रथम-

प्रकारकं चेत् तत् प्रधान-संलेखे यत् स्यात् तदेव स्वीकार्यम् ।

३२११ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से प्रथम प्रकार का हो, तो वह प्रधान संलेख में जो हो वही स्वीकृत किया जाय।

३२१२ द्वितीय-प्रकारक-शीर्षकं प्रधान-संलेखवत्।

३२१२१ वर्णकं तस्मात् परम् ।

३२१२१२ पृथक् वाक्यम् ।

३२१२ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु द्वितीय-प्रकारकं चेत् तत् प्रधान-संलेखे यथालिखितं स्यात् तथैव लेख्यम् ।

३२१२१ तस्मात् शीर्षकात् परम् "सहग्रन्थ" इति "सह-व्याख्या" इति "सह संपा" इति तत्सदृशम् अन्यद्वा योग्यं वर्णकं पदं लेख्यम् ।

३२१२१२ तत् वर्णकं पदं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

३२१२ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से द्वितीय प्रकार का हो तो वह प्रधान-संलेख में जिस प्रकार लिखा गया हो उसी प्रकार लिखा जाय।

३२१२१ उस शीर्षक के आगे "सह-ग्रन्थ." "सह-व्याख्या" "सह-संपा." यह अथवा इसी प्रकार का अन्य कोई योग्य वर्णक पद लिखा जाय।

३२१२१२ वह वर्णक पद पृथक् वाक्य माना जाय।

३२१३ तृतीय-प्रकारक-शीर्षके १२१ धारोपधारा अनुकार्या ।

३२१३१ वर्णकं तस्मात् परम् ।

३२१३१२ पृथक् वाक्यम् ।

३२१३ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु तृतीय-प्रकारकं चेत् तत् १२१ धाराम् तदीयाम् उपधारां च अनुकृत्य लेख्यम् ।

३२१३१ "व्याख्या.","संपा.","संग्रा.",प्रभृति "सह व्याख्या." "सह संपा.","सह संग्रा." प्रभृति योग्यं वर्णकं पदं तस्मात् शीर्षकात् परं लेख्यम् ।

३२१३१२ तत् वर्णकं पदं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

३२१३ यदि शीर्षक ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से तृतीय प्रकार का हो, तो वह १२१ धारा तथा उसकी उपधारा का अनुसरण कर लिखा जाय ।

३२१३१ "व्याख्या.","संपा.", "संग्रा.", आदि "सह व्याख्या.", "सह-संपा.", "सह-संग्रा." आदि योग्य वर्णक पद उस शीर्षक के आगे लिखे जायं ।

३२१३१२ वह वर्णक पद पृथक् वाक्य माना जाय ।

३२१४ चतुर्थ-प्रकारक-शीर्षके माला-नाम-पदानि अनुस्वभाव-क्रमम् ।

३२१४० आदि तुच्छ-मान-पद-लोपः ।

३२१४ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु चतुर्थ-प्रकारकं चेत् मालायाः नाम्नि विद्यमानानि पदानि तेषां स्वीयं स्वाभाविकं क्रमम् अनुसृत्य लेख्यानि ।

३२१४० मालायाः नाम्नः आदौ तुच्छम् उपपदं मानपदं वा चेत् तत् न लेख्यम् ।

३२१४ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से चतुर्थ प्रकार का हो तो माला-नाम में विद्यमान पद उनके अपने स्वाभाविक क्रम का अनुसरण कर लिखे जायं।

३२१४० यदि माला-नाम के आदि में तुच्छ, उपपद अथवा मानपद हो तो वह न लिखा जाय।

३२१५ पञ्चम-प्रकारक-शीर्षके ३२१४ धारोप-धारा अनुकार्या।

३२१५१ द्वितीय तदुत्तर-मालासु विशेषः।

३२१५१० यथा--

१ आदौ विशिष्ट-लिप्यां माला-विशिष्ट-नाम;

२ ततः सामान्य-लिप्यां मुख्य-माला-नाम;

३ योजकं पदं यथास्थानम्।

३२१५ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु पंचम-प्रकारकं चेत् तत् ३२१४ धारां तदीयाम् उपधारां च अनुकृत्य लेख्यम्।

३२१५१ द्वितीयस्याः तदुत्तरस्याः च मालायाः लेखने निम्ननिर्दिष्टः विशेषः ज्ञेयः।

३२१५१० अयम् विशेषः ज्ञेयः —:

१ प्रथमं विशिष्टायां लिप्यां मालायाः विशिष्टं नाम लेख्यम् ;

२ मालायाः विशिष्ट-नाम्नः अनन्तरं सामान्यायां लिप्यां मुख्य-मालायाः नाम लेख्यम्;

३ 'अन्तर्वर्तिनी' प्रभृति योजक-पदं यथास्थानं लेख्यम्।

३२१५ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से पंचम

प्रकार का हो, तो वह ३२१४ धारा और उसकी उपधारा का अनुसरण कर लिखा जाय ।

३२१५१ द्वितीय और उसके अनन्तर की माला के लेखन में निम्नलिखित विशेष जाने जायं ।

३२१५१० वह यह हैं :—

१ प्रथम विशिष्ट लिपि में माला का विशिष्ट नाम लिखा जाय।

२ माला के विशिष्ट नाम के अनन्तर सामान्य लिपि में मुख्य माला का नाम लिखा जाय ।

३ "के अन्तर्गत" आदि योजक पद यथास्थान लिखे जायं ।

३२१६ षष्ठ-प्रकारक-शीर्षकम् उद्गृहीत-अधि-सूचन-निर्दिष्ट-कृतिकम् ।

३२१६ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु षष्ठ-प्रकारकं चेत् तत् उद्गृहीत-अधिसूचने उल्लिखिता-याः कृतेः यत् स्यात् तदेव स्वीकार्यम् ।

३२१६ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से षष्ठ प्रकार का हो, तो उद्गृहीत-अधिसूचन में उल्लिखित कृति को जैसा हो वैसा ही स्वीकार किया जाय ।

३२१७ सप्तम-प्रकारक - शीर्षके आख्या-पदानि अनुस्वभाव-क्रमम् ।

३२१७० आदि-तुच्छ-मान-पद-लोपः ।

३२१७ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु सप्तम-प्रकारकं चेत् आख्यायां विद्यमानानि पदानि तेषां स्वीयं स्वाभाविकं क्रमम् अनुसृत्य लेख्यानि ।

३२१७० आख्यायाः आदौ तुच्छम् उपपद मानपदं वा चेत् तत् न लेख्यम् ।

३२१७ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से सप्तम प्रकार का हो, तो आख्या में विद्यमान पद उनके अपने स्वाभाविक क्रम का अनुसरण करके लिखे जायं।

३२१७० यदि आख्या के आदि में तुच्छ, उपपद अथवा मानपद हो तो वह न लिखा जाय।

३२१८ अष्टम-प्रकारक-शीर्षकं प्रधान-संलेखीयम्।

३२१८ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु अष्टम-प्रकारकं चेत् तत् प्रधान-संलेखे यत् स्यात् तदेव स्वीकार्यम्।

३२१८ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से अष्टम प्रकार का हो तो वह प्रधान संलेख में जैसा हो वैसा ही स्वीकार किया जाय।

३२१९ शीर्षकं पुस्तक-निर्देशि-संलेख-नाम-निरूपि।

३२१९० यथा—

ग्रन्थकार-सम्पादक-सहग्रन्थकार-सह-सम्पादक-माला-आख्या-निर्देशि-संलेखाः।

३२१९ पुस्तक-निर्देशि-संलेखे विद्यमानेन शीर्षकेन तस्य संलेखस्य नाम निरूपणीयम्।

३२१९० पूर्वोक्त-धारानुसारं निम्नलिखित-सदृशानि नामानि भवन्ति—

ग्रन्थकार-निर्देशि-संलेखः, संपादक-निर्देशि-संलेखः, सह-ग्रन्थकार-निर्देशि-संलेखः, सह-संपादक-निर्देशि-संलेखः, माला-निर्देशि-संलेखः, आख्या-निर्देशि-संलेखः, इत्यादि।

३२१६ पुस्तक-निर्देशी-संलेख में विद्यमान शीर्षक से उस संलेख का नाम निरूपित किया जाय।

३२१६० पूर्वोक्त धारा के अनुसार उक्त संलेखों के नाम ये हैं :--
३२०१ ग्रन्थकार-निर्देशी-संलेख, सम्पादक-निर्देशी-संलेख, सह-ग्रन्थकार-निर्देशी-संलेख, सह-सम्पादक-निर्देशी-संलेख, माला-निर्देशी-संलेख, आख्या-निर्देशी-संलेख, इत्यादि।

३२२ अन्तरीणम्

अन्तरीण

३२२ अन्तरीणम् अनुशीर्षक-स्वरूपम्।

३२२०१ अनुपद-धाराः प्रमाणम्।

३२२०३ प्रधान-संलेखीय-क्रामक-समङ्कः निर्देशि-समङ्कः।

३२२ अन्तरीणं लेख्यं शीर्षकस्य स्वरूपम् अनुभिद्यते।

३२२०१ अन्तरीण-उपकल्पने अनुपदं निर्दिश्यमानाः धाराः प्रमाण-रूपेण स्वीकार्याः।

३२२०३ प्रधान-संलेखे विद्यमानः क्रामक-समङ्कः निर्देशि-समङ्कः इति स्वीकार्यः।

३२२ अन्तरीण-लेख्य शीर्षक के स्वरूप के अनुसार भिन्न होता है।

३२२०१ अन्तरीण के उपकल्पन में आगे कही जाने वाली धाराएं प्रमाण रूप से स्वीकार की जायं।

३२२०३ प्रधान संलेख में विद्यमान क्रामक-समंक निर्देशी-समंक के रूप में स्वीकार किया जाय।

३२२१ प्रथम-प्रकारक-शीर्षके ०२४१-०२४११ धारा-निर्वृत्त-लघु-आख्या-अन्तरीणम्।

३२२१ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु प्रथम-प्रकारकं चेत् ०२४१-०२४११ धाराभिः निर्वृत्ता लघुः आख्या अन्तरीणम् इति स्वीकार्यम् ।

३२२१ **शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से प्रथम प्रकार का हो, तो ०२४१-०२४११ धाराओं से प्राप्त हुई लघु-आख्या अन्तरीण के रूप में स्वीकार की जाय ।**

३२२१ उदाहरण

१. धारा १३१२२ के अन्तर्गत उदाहरण के लिए ग्रन्थकार-निर्देशी-संलेख लिखने की आवश्यकता नहीं है । कारण, उस पुस्तक के लिए नियमानुसार, ग्रन्थ-कार के नाम को शीर्षक बनाते हुए वर्ग-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा ।

२. धारा १३२१ के अन्तर्गत उदाहरण के लिए निम्नलिखित ग्रन्थकार-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

पारखी (रघुनाथ शतानन्द).
ग्रन्थालय शास्त्रचा ओनामा.
२ १५५च३

---

३. धारा १३२१ के अन्तर्गत उदाहरण ५ के लिए निम्नलिखित सह-ग्रन्थ-कार-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

रत्नकुमारी तथा **प्रभा वर्मा**.
आदर्श पाक विज्ञान.
द३१ छ९

---

४. धारा १३२१ के अन्तर्गत उदाहरण १६ के लिए निम्नलिखित सह-ग्रन्थ-कार-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

मिश्र (गणेश बिहारी) इदि.
हिन्दी नवरत्न.
द—:१:९ढ० च४

---

५. धारा १३२१ के अन्तर्गत उदाहरण २ के लिए निम्नलिखित ग्रन्थकार-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

काशी-नागरी प्रचारिणी सभा.
निवेदन.
९O२ डं२: ढ९३लं घ३

---

६. धारा १२६१ के अन्तर्गत उदाहरण १ को ही पुनः धारा १३२१ के अन्तर्गत उदाहरण के रूप में दिया गया है। उसके लिए निम्नलिखित सम्पादक-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

सांकृत्यायन (राहुल). संपा.
हिन्दी काव्य धारा
द—: १ शं छ० छ ५

---

७. १२६१ धारा के अन्तर्गत उदाहरण २ के लिए निम्नलिखित भाषान्तरकार–शीर्षक-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

कौसल्यायन (आनन्द). भाषा.
जातक.
प४१:२२५२२ छ१

---

८. १२७ धारा के अन्तर्गत उदाहरण १ के लिए निम्नलिखित सह-सम्पादक-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

धीरेन्द्र वर्मा तथा **रामकुमार वर्मा**. संपा.
आधुनिक हिन्दी काव्य.
र—: १शं ट० छ ५

---

९. १२८१ धारा के अन्तर्गत उदाहरण के लिए निम्नलिखित आख्या-प्रथम-शब्द-शीर्षक-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

ऋग्वेद. प्रथमपद.
ऋग्वेद संहिता.
प११:२१ झ०

३२२२ द्वितीय-प्रकारक-शीर्षके अन्तरीणे अंशाः त्रयः ।

३२२२० यथा—

१ लघु-आख्या;

२ सह-ग्रन्थकार-सह-व्याख्याकार-सह-सम्पादक-द्वय-प्रभृति-नामनी;

२१ योजक-पदं यथास्थानम्;

२२ व्यष्टि-नामान्त्य-पदेन अलम्;

२३ एकाधिक-वाक्ये एकम्;

३ सम्बन्ध-सूचक-पदम्;

३२२२ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु द्वितीय-प्रकारकं चेत् अन्तरीणे यथाक्रमं त्रयः अंशाः भवन्ति ।

३२२२० ते त्रयः अंशाः निम्नलिखिताः भवन्ति ।

१ पुस्तकस्य लघुः आख्या प्रथमः अंशः भवति ।

२ सह-ग्रन्थकारयोः, सह-व्याख्याकारयोः, सह-संपादकयोः, तत्सदृशयोः, अन्ययोः वा नामनी द्वितीयः अंशः भवति ।

२१ द्वयोः नाम्नोः योजकं पदं यथास्थानम् लेख्यम् ।

२२ व्यष्टि-नाम्नि शीर्षके सति तस्य नामान्त्य—पदेन अलम् ।

२३ नाम्नि एकाधिक—वाक्यमये, पूर्ण-विराम-स्थाने अल्प-विरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम् ।

३ आख्या-सह-ग्रन्थकार-प्रभृतिकयोः अन्योन्य-सम्ब-

न्थस्य सूचकं 'कृतम्', 'संपा', 'व्याख्या' प्रभृति पदं तृतीयः अंशः भवति ।

३२२२ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से द्वितीय प्रकार का हो, तो अन्तरीण में क्रमशः तीन अंश होते हैं।

३२२२० वे तीन अंश निम्नलिखित हैं :—

१ पुस्तक की लघु-आख्या प्रथम अंश होती है;

२ दो सह-ग्रन्थकार, दो सह-व्याख्याकार, दो सह-सम्पादक और उसके सदृश किन्हीं अन्य दो के नाम द्वितीय अंश होता है;

२१ दोनों नामों का योजक पद यथास्थान लिखा जाय;

२२ व्यष्टि-नाम के होने पर उसका नामान्त्य-पद पर्याप्त माना जाय;

२३ नाम में एक से अधिक वाक्य होने पर पूर्ण-विराम के स्थान में अल्प विराम करके एक वाक्य बना लिया जाय;

३ आख्या और सह-ग्रन्थकार आदि के परस्पर सम्बन्ध के सूचक 'कृत', 'संपा.', 'व्याख्या.', आदि पद तृतीय अंश होता है।

३२२२० उदाहरण

१. १३२१ धारा के अन्तर्गत उदाहरण ५ के लिए निम्नलिखित सह-ग्रन्थकार-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

प्रभा वर्मा. सह-ग्रन्थ.

आदर्श पाक विज्ञान, रत्न कुमारी तथा प्रभा वर्मा कृत.

ढ३१ छ९

२. १२७ धारा के अन्तर्गत उदाहरण १ के लिए निम्नलिखित सह-संपादक-संलेख लिखना पड़ेगा:—

रामकुमार वर्मा. सहसंपा.

आधुनिक हिन्दी काव्य, धीरेन्द्र वर्मा तथा रामकुमार वर्मा संपा.

द—:१शं ढ० छ ५

३. १२७ धारा के अन्तर्गत उदाहरण ३ के लिए निम्नलिखित सह-भाषान्तर-कार—संलेख लिखना पड़ेगा:—

कन्हैयालाल. सहभाषा.

ईरान के सूफी कवि, बांके बिहारी तथा कन्हैयालाल भाषा.

द१६४:१ शं○△७३ १५२ च ९

३२२३ तृतीय-प्रकारक-शीर्षके अन्तरीणे अंशाः त्रयः ।

३२२३० यथा——

१ लघु-आख्या;

२ प्रधान-संलेख-शीर्षकम्;

२१ व्यष्टि-नामान्त्य-पदेन अलम्;

२२ एकाधिक-वाक्ये एकम्;

३ सम्बन्ध-सूचक पदम्

३२२३ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु तृतीय-प्रकारकं चेत् अन्तरीणे यथाक्रमं त्रयः अंशाः भवन्ति।

३२२३० ते त्रयः अंशाः निम्नलिखिताः भवन्ति ।

१ पुस्तकस्य लघुः आख्या प्रथमः अंशः भवति;

२ प्रधान-संलेखस्य शीर्षकं द्वितीयः अंशः भवति;

२१ व्यष्टि-नाम्नि सति तस्य नामान्त्य—पदेन अलम् ।

२२ नाम्नि एकाधिक-वाक्यमये, पूर्ण-विराम-स्थाने अल्प विरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम् ।

३ 'कृतम्' इति सम्बन्ध-सूचकं पदं तृतीयः अंशः भवति ।

३२२३ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से तृतीय प्रकार का हो, तो अन्तरीण में क्रमशः तीन अंश होते हैं।

३२२३० **वे तीन अंश निम्नलिखित हैं :—**

१ पुस्तक की लघु-आख्या प्रथम अंश होता है;

२ प्रधान-संलेख का शीर्षक द्वितीय अंश होता है;

२१ व्यष्टि नाम के शीर्षक होने पर उसका नामान्त्यपद पर्याप्त माना जाय;

२२ नाम में एक से अधिक वाक्य होने पर पूर्ण विराम के स्थान में अल्प विराम करके एक वाक्य बना लिया जाय;

३ 'कृत' यह सम्बन्ध सूचक पद तृतीय अंश होता है।

३२२३० उदाहरण

१. धारा १३२१ के अन्तर्गत उदाहरण ६ के लिए निम्नलिखित संशोधक-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

फिशर (फर्डिनेन्ड). संशो.

केमिकल टेकनॉलॉजी, वागनर कृत.

घ ख४

---

२. इस पुस्तक के लिए निम्नलिखित भाषान्तरकार तथा संपादक-निर्देशी-संलेख भी लिखना पड़ेगा:—

क्रुक्स (विलियम). भाषा. तथा संपा.

केमिकल टेकनॉलॉजी, वागनर कृत.

घ ख ४

---

३. धारा १३२१ के अन्तर्गत उदाहरण १० के लिए निम्नलिखित संपादक-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

व्यंकटरमण ऐयर (एस.). संपा.

वेदान्त दर्शन ब्रह्मामृतवर्षिणी-व्याख्या-सहित, रामानन्द सरस्वती कृत.

फ६६.५शं३ १५ग६

३२२४ चतुर्थ-प्रकारक-शीर्षके अन्तरीणे अंशाः चत्वारः।

३२२४० **यथा—**

१ पुस्तकमाला-समङ्क;

१० तत्स्थानापन्नम् अन्यद् वा;

२ प्रधान-संलेख-शीर्षकम्;

२१ व्यष्टि-नामान्त्य-पदेन अलम् ;

२२ एकाधिक-वाक्ये एकम् ;

३ पूर्णविरामः;

४ लघु-आख्या च;

४१ आख्या-प्रथम-पद-शीर्षकेन तत् ;

४२ नापि च पूर्णविरामः ।

३२२४ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु चतुर्थ-प्रकारकं चेत् अन्तरीणे यथाक्रमं चत्वारः अंशाः भवन्ति ।

३२२४० ते चत्वारः अंशाः निम्नलिखिताः भवन्ति ।

१ पुस्तकस्य मालायाः समङ्कः प्रथमः अंशः भवति;

१० माला-समङ्कस्य स्थाने स्थापितम् अन्यद् वा किमपि क्रमबोधकं माला-समङ्कस्य स्थाने लेख्यम्;

२ प्रधान-संलेखस्य शीर्षकं द्वितीयः अंशः भवति;

२१ व्यष्टि-नाम्नि शीर्षके सति तस्य नामान्त्य-पदेन अलम्;

२२ नाम्नि एकाधिक-वाक्यमये पूर्ण-विराम-स्थाने अल्प-विरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम्;

३ पूर्णविरामः तृतीयः अंशः भवति;

४ लघु-आख्या च चतुर्थः अंशः भवति;

४१ आख्यायाः प्रथमं पदं शीर्षकं चेत् तत् न लेख्यम् ।

४२ आख्यायाः प्रथमं पदं शीर्षकं चेत् पूर्णविरामः अपि न लेख्यः ।

३२२४ **शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से चतुर्थ प्रकार का हो, तो अन्तरीण में क्रमशः चार अंश होते हैं।**

३२२४० **वे चार अंश निम्नलिखित हैं :—**

१ पुस्तक का माला-समंक प्रथम अंश होता है;

१० माला-समंक के स्थान में स्थापित अथवा अन्य किसी भी क्रमबोधक को माला-समंक के स्थान में लिखा जाय;

२ प्रधान संलेख का शीर्षक द्वितीय अंश होता है;

२१ व्यष्टि-नाम के शीर्षक होने पर उसका नामान्त्य-पद पर्याप्त माना जाय;

२२ नाम में एक से अधिक वाक्य होने पर पूर्ण-विराम के स्थान में अल्प-विराम करके एक वाक्य बना लिया जाय;

३ द्विबिन्दु तृतीय अंश होता है; और

४ लघु-आख्या चतुर्थ अंश होता है;

४१ यदि आख्या का प्रथम पद शीर्षक हो तो वह न लिखा जाय;

४२ यदि आख्या का प्रथम पद शीर्षक हो तो द्विबिन्दु भी न लिखा जाय;

३२२४० उदाहरण.

१. धारा १४१४३ के अन्तर्गत उदाहरण ५ के लिये निम्नलिखित माला-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

जाम्लुङ शूबे.र्त.
१ शूवेर्त : आरित्मातिक उन्त आल्गेव
ऊ ११३ ग०

---

२. धारा १४१४३ के अन्तर्गत उदाहरण ६ के लिए निम्नलिखित माला-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

पटना विश्वविद्यालय, रामदीनसिंह रीडरशिप व्याख्यान.
१९३०-३१ उपाध्याय : हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास.
द—: ९ च ४

---

३. धारा १४१४३ के अन्तर्गत उदाहरण ९ के लिए निम्नलिखित माला-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

बुलेटिन फ्राम दि इन्स्टीट्यूट फॉर मेडिकल रिसर्च, फेडरेटेड मेके स्टेट्स.

१९३०, ३ लूथवेट : एक्सपरिमेन्टल ट्रापिकल टाइफस.

ड २५ : ४२४१ सं च०

---

४. धारा १४१४३ के अन्तर्गत उदाहरण १५ के लिए निम्नलिखित माला-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

ब्रॉडवे ओरिएन्टल लायब्रेरी.

३ श्यू : पोलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ कॉन्फ्यूसियनिज़्म.

वलं४१:क५ च २

---

५. धारा १४१४३ के अन्तर्गत उदाहरण ८ के लिए निम्नलिखित माला-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

भारतीय विद्या ग्रन्थावलि.

८ अल्लराज : रसरत्न प्रदीपिका.

द १५ : ९ शंज०० : १ छ ५

---

६. धारा १४१४३ के अन्तर्गत उदाहरण १२ के लिए निम्नलिखित माला-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

युनिवर्सिटी ऑफ इलिनॉय, स्टडीज इन लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर.

संपु. १२, अव. २-३ बण्डि : थियरी ऑफ इमेजिनेशन इन क्लासिकल एण्ड मेडीकल थॉट.

भ : ४३ लं ५ : छ० घ७

३२२४१ चतुर्थ-प्रकारक-सरूप-शीर्षक-संलेखाः एकत्र ।

३२२४१० प्रति-द्वितीयानुच्छेदं पृथग् अनुच्छेदः ।

३२२४१२ विच्छेदे अन्तरम्

३२२४१ येषां संलेखानाम् अग्र-अनुच्छेदे चतुर्थ-प्रकारकम् एकरूपम् एव शीर्षकं स्यात्, ते संलेखाः एकत्र लेख्याः ।

३२२४१० एकीकार्याणां संलेखानां विभिन्नाः द्वितीयाः अनुच्छेदाः एकीकृते संलेखे यथाक्रमं प्रति-अनुच्छेदं पृथग् अनुच्छेदं कृत्वा लेख्याः ।

३२२४१२ एकीकार्याणां संलेखानां माला-समङ्केषु अनुस्यूतत्वं न चेत्, अर्थात् क्रमिकत्वस्य विच्छेदः चेत्, युक्तं स्थानं रिक्तं त्याज्यम् ।

३२२४१ जिन संलेखों के अग्र-अनुच्छेद में चतुर्थ प्रकार वाला एक ही रूप का शीर्षक हो, वे संलेख एक ही में लिखे जायं ।

३२२४१० एक में लिखे जाने वाले संलेखों के विभिन्न द्वितीय अनुच्छेद, एकीकृत संलेख में क्रमशः प्रत्येक अनुच्छेद के लिए पृथक् अनुच्छेद बताते हुए लिखे जायं ।

३२२४१२ एक में लिखे जाने वाले संलेखों के माला-समङ्कों में अनुस्यतत्व न हो, अर्थात् क्रमिकत्व टूटताहो तो योग्य स्थान रिक्त छोड़ दिया जाय ।

३२२४१२ उदाहरण

धारा १४१४३ के अन्तर्गत १-४ उदाहरणों को निम्नलिखित रूप में एकीकृत कर देना चाहिए :—

भारतीय ग्रन्थालय संघ, हिन्दी ग्रन्थमाला.

१ रंगनाथन : ग्रन्थ अध्ययनार्थ हैं.	२	झ०
२ रंगनाथन तथा नागर : ग्रन्थालय प्रक्रिया.	२२	झ१
३ रंगनाथन तथा नागर : अनुवर्ग सूची कल्प.	२५५१५पंथ३४	झ२

यदि किसी एक ग्रन्थमाला की पुस्तकों को माला-निर्देशी-संलेख में ग्रन्थकारों के नामों के अनुसार अनुवर्ण-क्रम से व्यवस्थापित किया जाय तो माला के सतत रहने पर ३२२४ धारा में विहित माला-संलेखों का एकीकरण असंभव हो जायगा।

इसके विपरीत, धारा ३२२४१ के अनुसार, यदि किसी माला के संपुटों को समंक-क्रम के अनुसार व्यवस्थापित किया जाए तो एकीकरण संभव हो सकेगा और इस प्रकार कुछ मितव्ययिता भी सिद्ध हो सकेगी।

३२२५ पञ्चम-प्रकारक शीर्षके अन्तरीणं ३२२४-३२२४१ म धारावत्।

३२२५ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु पंचम-प्रकारकं चेत् तस्य उपकल्पने ३२२४-३२२४१ धारे अनुकार्ये।

३२२५ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से पंचम प्रकार का हो, तो उसके उपकल्पन में ३२२४-३२२४१ धाराओं का अनुकरण किया जाय।

३२२५ उदाहरण

१४२२००१ धारा के अन्तर्गत उदाहरण के लिए निम्नलिखि माला-निर्देशी-संलेख लिखने पड़ेंगे:—

---

१. सस्ता साहित्य मण्डल, सर्वोदय साहित्य माला.

७८ भट्ट : महाभारत के पात्र.

द१५:१इ२हं५ १५२च८

---

२. लोक साहित्य माला, सस्ता साहित्य मण्डल, सर्वोदय साहित्य माला.

२. भट्ट : महाभारत के पात्र.

द१५:१इ२हं५ १५२च८

धारा १४२२०२१ के अन्तर्गत उदाहरण के लिए ग्रन्थकार-निर्देशी-संलेख तो लिखना ही पड़ेगा, साथ ही साथ निम्नलिखित अतिरिक्त दो माला-निर्देशी-संलेख लिखने पड़ेंगे:—

बुलेटिन ऑफ दि युनाइटेड स्टेट्स, ब्यूरो ऑफ लेबर स्टेटिस्टिक्स.

५५८ मत्सुओका: लेबर कन्डिशन्स ऑफ विमेन एण्ड चिल्ड्रन इन जापान.

शर९ढ७:९१५:४२:थर२ च १

इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स एन्ड लेबर तथा कन्डिशन्स सीरीज ऑफ दि बुलेटिन ऑफ दि युनाइटेड स्टेट्स ब्यूरो ऑफ लेबर स्टेटिस्टिक्स.

१० मत्सुओका : लेबर कन्डिशन्स ऑफ विमेन एण्ड चिल्ड्रन इन जापान.

शर९ढ७:९१५:४२:थर२ च १

अधितन्त्र सम्बन्धी तथा उपर्युक्त प्रकार की अन्य मालाओं के बड़े लम्बे-लम्बे नाम होते हैं तथा उनके अन्तर्गत सैकड़ों प्रकाशन प्रकाशित होते हैं। ऐसे अवसरों पर मालापत्रकों के सम्पूर्ण संघात के स्थान में एक पत्रक बना कर लगा दिया जाय तो उससे महती मितव्ययिता होगी। संभव है कि उस माला के अन्तर्गत प्रकाशित किसी प्रकाशन में अथवा अन्य किसी प्रकाशन में उस माला के अन्तर्गत प्रकाशित सभी प्रकाशनों की तालिका दी हुई हो। ऐसी अवस्था में पाठक का ध्यान उस तालिका की ओर आकृष्ट किया जा सकता है। उस प्रकार का निर्देशन निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है :

बुलेटिन ऑफ दि युनाइटेड स्टेट्स ब्यूरो ऑफ लेबर स्टेटिस्टिक्स.

के पृ. पर तालिका द्रष्टव्य है.

[यहां पर कार्यालय के अनुयोग, पुस्तक-विक्रेता-सूची अथवा अन्य किसी पुस्तक का यथार्थ अनुसंधान देना चाहिये]

पुस्तक-निर्देशी-संलेख के अनेक प्रकार हैं। किन्तु उनमें से माला-निर्देशी-संलेख के विषय में ही कुछ मतभद दृष्टिगोचर होता है। अधितन्त्र-सम्बन्धी तथा इसी प्रकार की अन्य कुछ मालाएँ ऐसी होती हैं जिनके बड़े लम्बे-लम्बे नाम होते हैं तथा उनके अन्तर्गत सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। उनमें भी एक माला के अन्तर्गत दूसरी, दूसरी के अन्तर्गत तीसरी इस प्रकार लम्बी-सी माला-परम्परा

बनी रहती हैं। उन्हें लिखना तथा उनकी व्यवस्था करना बड़े-बड़े सूचीकारों के लिए भी टेढ़ी खीर हो जाता है। यह स्वाभाविक है कि उन्हें देखकर सूचीकार साहस खो बैठें।

साथ ही हमें यह भी विचारना है कि क्या माला-निर्देशी-संलेख से कोई लाभ है अथवा नहीं? विश्वविद्यालय तथा गवेषणा ग्रन्थालय और इसी प्रकार के ग्रन्थालय, जो गवेषकों की विशेष आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं, उनमें अनुभव द्वारा यह पाया गया है कि माला-निर्देशी-संलेख का बहुत कुछ उपयोग होता ही है। उनके द्वारा प्रत्येक पाठक को अपने ग्रन्थ पाने में तथा प्रत्येक ग्रन्थ को अपने पाठक के पाने में किस प्रकार सहायता प्राप्त होती है। इसकी चर्चा हमारे **ग्रंथालय शास्त्र-पंच सूत्री** (*Five laws of library science*)[२९] में दी गई है।

साथ ही वे संलेख ग्रन्थ-वरण तथा ग्रन्थ-आदेशन दोनों अत्यधिक सहायता पहुंचाते हैं।

कतिपय सूचीकार ही इस मर्म को पहचानते हैं। वे एक मध्यवर्ती मार्ग का आश्रय लेते हैं। वे सूचीकार पर ही इसके निर्णय का भार छोड़ देते हैं कि किसी विशिष्ट माला के लिए माला-निर्देशी-संलेख लिखा जाय अथवा नहीं।

मितव्ययिता का एक मार्ग ऊपर सुझाया गया है।

३२२६ षष्ठ-प्रकारक-शीर्षके अन्तरीणे अंशाः षट्।

३२२६० यथा—

१ उद्गृहीत-अधिसूचन- उल्लिखित-कृति-आख्या;

२ पूर्ण-विरामः;

३ प्रधान-संलेख-शीर्षकम् ;

३१ व्यष्टि-नामान्त्य-पदेन अलम्;

३२ एकाधिक-वाक्ये एकम्;

४ पूर्णविरामः;

---

२९. पृष्ठ ३०८.

४१ आख्या-प्रथम-पद-शीर्षके न तत्;
४२ नापि च पूर्णविरामः
५ उद्गृहीत-लघु-आख्या;
६ 'इति अंशः मुद्रितः', 'इति अंशः संपुटितः', इति-प्रयति-वर्णक-पदं च ।

३२२६ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु षष्ठ प्रकारकं चेत् अन्तरीणे यथाक्रमं षड् अंशाः भवन्ति ।

३२२६० ते षड् अंशाः निम्नलिखिताः भवन्ति :—

१ उद्गृहीत-अधिसूचने उल्लिखितायाः कृतेः आख्या प्रथमः अंशः भवति;
२ पूर्ण-विरामः द्वितीयः अंशः भवति;
३ प्रधान-संलेखस्य शीर्षकं तृतीयः अंशः भवति;
३१ व्यष्टि-नाम्नि शीर्षके सति तस्य नामान्त्य-पदेन अलम्;
३२ नाम्नि एकाधिक-वाक्यमये पूर्ण-विराम-स्थाने अल्प-विरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम्;
४ पूर्णविरामः चतुर्थः अंशः भवति;
४१ आख्यायाः प्रथमं पदं शीर्षकं चेत् पूर्णविरामः अपि न लेख्यः ;
५ उद्गृहीतस्य लघुः आख्या पंचमः अंशः भवति;
६ 'इति अंशः मुद्रितः', 'इति अंशः संपुटितः' इति प्रभृति वर्णकं पदं षष्ठः अंशः भवति ।

३२२६ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से षष्ठ प्रकार का हो, तो अन्तरीण में क्रमशः छः अंश होते हैं ।

३२२६० वे छः अंश निम्नलिखित होते हैं :—

१ उद्गृहीत-अधिसूचन में उल्लिखित कृति की आख्या प्रथम अंश होता है ;

२ पूर्ण-विराम दूसरा अंश होता है;

३ प्रधान-संलेख का शीर्षक तृतीय अंश होता है ;

३१ व्यष्टि-नाम के शीर्षक होने पर उसका नामान्त्य-पद पर्याप्त माना जाय;

३२ नाम में एक से अधिक वाक्य होने पर पूर्ण-विराम के स्थान में अल्प विराम करके एक वाक्य किया जाय ;

४ द्विबिन्दु चतुर्थ अंश होता है;

४१ आख्या का प्रथम-पद शीर्षक हो तो वह न लिखा जाय;

४२ आख्या का प्रथम पद शीर्षक हो तो द्विबिन्दु भी न लिखा जाय;

५ उद्गृहीत की लघु आख्या पंचम अंश होता है;

६ 'इस अंश में अंशतः मुद्रित', 'इस रूप में अंशतः संपुटित' आदि वर्णक पद षष्ठ अंश होता है ।

३२२६० <u>उदाहरण</u>

धारा १४३२०१ के अन्तर्गत उदाहरण २ के लिए निम्नलिखित उद्गृहीत-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

रंगनाथन (श्री, रा.).

ग्रन्थालय-शास्त्र-पंचसूत्री. पृ. २५६-२७१७

रंगनाथन : आदर्श ग्रन्थालय विधेयक के रूप में मुद्रित.

२: ह२पं.　　च १

३२२६१　　षष्ठ-प्रकारक-सरूप-शीर्षक-अन्तरीण-सरूप-प्रथम-अंश-संलेखाः एकत्र ।

३२२६१　　येषां संलेखानाम् अग्र-अनुच्छेदे षष्ठ-प्रकारकम् एक-रूपम् एव शीर्षकं स्यात् अन्तरीणो च प्रथमः अंशः एक-रूप एव स्यात् ते संलेखाः एकत्र लेख्याः ।

३२२६१ **जिन संलेखों के अग्रानुच्छेद में षष्ठ प्रकार वाला एक ही रूप का शीर्षक हो, और अंतरीण में प्रथम अंश एक रूप ही हो तो वे संलेख एक ही में लिखे जायं।**

३२२६१ उदाहरण

---

३. **रंगनाथन** (श्री. रा.).

ग्रन्थालय-शास्त्र-पंचसूत्री. पृ० २५६-२७१

रंगनाथन : आदर्श ग्रन्थालय विधेयक के रूप में मुद्रित.

२ : ह २ पं च १

अध्याय ३ विदेश में ग्रन्थालय आन्दोलन तथा विधानकरण के रूप में मुद्रित.

२ लं १ : थ २ च १

३२२७ सप्तम-प्रकारक-शीर्षके अंशौ द्वौ।

३२२७० यथा —

१ प्रधान-सलेख-शीर्षकम्;

११ व्यष्टि-नामान्त्य-पदेन अलम्;

१२ एकाधिक-वाक्ये एकम्;

२ 'कृतम्'—प्रभृति सम्बन्धं-सूचक-पद च।

३२२७ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु सप्तम-प्रकारकं चेत् अन्तरीणे यथाक्रमं द्वौ अंशौ भवतः।

३२२७० तौ द्वौ अंशौ निम्नलिखितौ भवतः :—

१ प्रधान-संलेखस्य शीर्षकं प्रथमः अंशः भवति;

११ व्यष्टि-नाम्नि शीर्षके सति तस्य नामान्त्य-पदेन अलम्;

१२ नाम्नि एकाधिक-वाक्यमये पूर्ण-विराम-स्थाने अल्प-विरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम्;

२ 'कृतम्' प्रभृति सम्बन्धस्य सूचकं पदं द्वितीयः अंशः भवति ।

३२२७ **शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से सप्तम प्रकार का हो, तो अन्तरीण में क्रमशः दो अंश होते हैं।**

३२२७० **वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—**

१ प्रधान संलेख का शीर्षक प्रथम अंश होता है;

११ व्यष्टि-नाम के शीर्षक होने पर उसका नामान्त्य-पद पर्याप्त माना जाय;

१२ नाम में एक से अधिक वाक्य होने पर पूर्ण विराम के स्थान में अल्प विराम करके एक वाक्य बना लिया जाए;

२ 'कृत' आदि सम्बन्ध सूचक पद द्वितीय अंश होता है।

३२२७० उदाहरण

१. १४२३१ धारा के अन्तर्गत उदाहरण की 'मेघदूत' काल्पनिक आख्या के लिए आख्या-निर्देशी-संलेख नहीं लिखा जायगा, कारण उसके लिए वर्ग-निर्देशी-संलेख लिखा जायगा।

२. जिस पुस्तक का आख्या-पत्र

"आगामी पांच वर्ष। राजनीतिक संधि सम्बन्धी। एक निबन्ध" यह हो,

उस पुस्तक की यथार्थ आख्या "आगामी पांच वर्ष" यही मानी जायेगी। उसके द्वारा उस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय व्यक्त नहीं होता। इस प्रकार उस आख्या को काल्पनिक ही मानना पड़ेगा। किन्तु उस परिस्थिति में भी उसके लिए आख्या-निर्देशी-संलेख नहीं लिखा जायेगा, कारण उसका प्रधान-संलेख ही आख्या-प्रथम-पद प्रकार का होगा।

३. धारा १३१३ के अन्तर्गत उदाहरण २ के लिए निम्नलिखित आख्या-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा:—

मिट्टी की ओर.

रामधारीसिंह दिनकर कृत.

द:१:९ढ९ छ६

धारा १४४० के अन्तर्गत उदाहरण के लिए दो अवान्तर आख्याओं के संवादी निम्नलिखित दो ग्रन्थकार-निर्देशी-संलेख लिखे जाएँगे :—

---

१. सत्यनारायण.

यूरोप के झकोरे में, आवारे की योरोप यात्रा इस आख्या से पूर्व प्रकाशित.

र८:५:थ३ छ ६

---

२. सत्यनारायण.

आवारे की योरोप यात्रा, योरोप के झकोरे में इस आख्या से अनन्तर प्रकाशित.

र८:५:थ३ छ ३

षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम प्रकार के निर्देशी संलेख अनुलय सेवा की दृष्टि से तो मूल्यवान हैं ही, साथ ही वे इसलिए भी आवश्यक हैं कि उनके द्वारा अनिष्ट प्रतिलिपि-क्रमण (Intended Duplication) से बचने में सहायता प्राप्त होती है।

३२२८ अष्टम-प्रकारक-शीर्षके अन्तरीणे अवान्तराख्या।

३२२८० वर्णकं च

३२२८०१ ११४४ - १४४१ धारामनु।

३२२८ शीर्षकं ३२१ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु अष्टम-प्रकारकं चेत् अन्तरीणे केवलम् अवान्तराख्या लेख्या।

३२२८० अवान्तराख्यायाः अनन्तरं योग्यानि वर्णकानि पदानि लेख्यानि।

३२२८०१ तानि योग्यानि वर्णकानि पदानि १४४ धारां १४४१ धारां च अनुसृत्य लेख्यानि।

३२२८ शीर्षक यदि ३२१ धारा में परिगणित प्रकारों में से अष्टम प्रकार का हो, तो अन्तरीण में केवल अवान्तराख्या लिखी जाय।

३२२८० अवान्तराख्या के अनन्तर योग्य वर्णक पदों को लिखा जाय।

३२२८०१ उन योग्य वर्णक पदों को १४४ धारा और १४४१ धारा का अनुसरण करके लिखा जाय।

३२२८०१ उदाहरण

धारा १४६० के अन्तर्गत उदाहरणों के लिए निम्नलिखित प्रकार के ग्रन्थकार निर्देशी-संलेख लिखे जायेंगे :—

१. **निकोलस** (बेवरली).
वर्डिक्ट ऑन इण्डिया. ल २ : १ : थ ५ छ ४
"नैमित्तिक ग्रन्थ के लिए द्रष्टव्य ल२ : १ : थ ५ छ ४ : ९"

२. **जोग** (एन. जी.).
जज ऑर जूडास ? ल २ : १ : थ ५ छ ४ : ९
"नैमित्तिक ग्रन्थ के लिए द्रष्टव्य ल २ : १ : थ ५ छ ४"

पत्रकों के निर्माण तथा धाराओं के व्यवहार—दोनों में ही, उपर्युक्त रीति के अवलम्बन से मितव्ययिता सिद्ध होगी तथा लाघव-न्याय को भी पर्याप्त संतोष होगा। पुस्तक-निर्देशी-संलेखों के मुद्रण के लिए पृथक पत्रकों का अक्षर-सज्जीकरण तथा मुद्रण पर्याप्त समय तथा द्रव्य की अपेक्षा रखता है। उसकी अपेक्षा अतिरिक्त प्रतियों का छाप लेना कहीं अधिक स्वल्पार्घ तथा मितव्ययकारी सिद्ध होगा। साथ ही यह भी लाभ है कि अन्तरीण तथा नैमित्तिक पुस्तक अधिसूचन सम्बन्धी धाराओं की आवश्यकता न रहेगी। शब्दान्तरों में यह कहा जा सकता है कि धाराएँ ३२२१, ३२२२ तथा ३२३ का लोप किया जा सकता है।

३२३ नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचनम्

नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचन

३२३ **नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचनं पुस्तक-निर्देशि-संलेखेऽपि।**

३२३ कस्यचन पुस्तकस्य प्रधान-संलेखे नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचनं चेत् तत् तस्य पुस्तकस्य प्रत्येकस्मिन् पुस्तक-निर्देशि-संलेखे अपि लेख्यम् ।

३२३ यदि किसी पुस्तक के प्रधान संलेख में नैमित्तिक-पुस्तक-अधिसूचन हो, तो वह उस पुस्तक के प्रत्येक पुस्तक-निर्देशी-संलेख में भी लिखा जाय ।

३३ सर्वार्थक-पत्रक-पद्धतिः

सर्वार्थक-पत्रक-पद्धति

३३ यन्त्र-प्रतिलिपिकृत-सूची-पत्रकत्वे प्रधान-संलेख-पत्रक-प्रतेः पुस्तक-निर्देशि-संलेख पत्रक-उपयोगः ।

३३० असौ सर्वार्थक-पत्रक-पद्धतिः ।

३३ मुद्रणेन अन्येन वा विधिना यन्त्रोपकरणेन सूची-पत्रकाणां प्रतिलिपिः कर्तुं पार्यते चेत् प्रधान-संलेखस्य पत्रकाणाम् एव, सम्बद्धानां पुस्तक-निर्देशि संलेखानां कृते उपयोगः कार्यः ।

३३० असौ रीतिः सर्वार्थक-पत्रक-पद्धतिः इति उच्यते ।

३३ यदि छपाई अथवा अन्य किसी विधि से यन्त्र की सहायता द्वारा सूचीपत्रकों की प्रतिलिपि की जा सकती हो, तो प्रधान संलेख के पत्रकों का ही सम्बद्ध पुस्तक-निर्देशी-संलेखों के लिए उपयोग किया जाय ।

३३० यह रीति सर्वार्थक-पत्रक-पद्धति कही जाती है ।

३३१ अग्रानुच्छेदस्योपरि शीर्षकम् ।

३३१० इयमेका रीतिः ।

३३१ मुद्रित—पूर्वस्य प्रधान-संलेखीयस्य अग्र-अनुच्छेदस्य उपरियोग्यं शीर्षकं लेख्यम्, तस्य च अग्र-अनुच्छेद-रूपेण उपयोगः कार्यः ।

३३१० सर्वार्थिक-पत्रक-पद्धत्यां प्रधान-संलेख-पत्रकस्य पुस्तक-संलेख-पत्रकत्व-रूपान्तरीकरणे इयम् एका रीतिः ज्ञेया ।

३३१ पहले से छपे हुए प्रधान संलेख के अग्रानुच्छेद के ऊपर योग्य शीर्षक लिखा जाय और उसका अग्रानुच्छेद के रूप में उपयोग किया जाय ।

३३१० सर्वार्थिक-पत्रक-पद्धति में प्रधान-संलेख पत्रक के पुस्तक-संलेख-पत्रक के रूप में रूपान्तरीकरण करने की यह एक रीति मानी जाय ।

३३२ अनुच्छेदान्तर-योग्य-शीर्षक-उचित-पदानाम् अधोरेखाङ्कनम् ।

३३२०१ अग्र-पदे नाद्ये पुनरपि ।

३३२०२ इयमपरा रीतिः ।

३३२१ द्वितीय-रीत्यां अधोरेखाङ्कितत्वं अग्र-अनुच्छेदत्वम् ।

३३२ द्वितीये, अन्यस्मिन् अनुच्छेदे वा विद्यमानानां योग्य-शीर्षकत्वाय उचितानां पदानाम् अधस्तात् रेखाङ्कनं कार्यम् ।

३३२०१ अग्रे लेखनाय उचितं पदम् अधोरेखाङ्कितानां पदानाम् आदौ न विद्यते चेत् तस्य पदस्य अधस्तात् पुनरपि अन्या रेखा कार्या ।

३३२०२ सर्वार्थक-पत्रक-पद्धत्यां प्रधान-संलेख-पत्रकस्य पुस्तक-संलेख-पत्रकत्व-रूपान्तरीकरणे इयम् अपरा रीतिः ज्ञेया ।

३३२१ द्वितीया रीतिः व्यवहृता चेत्, पुस्तक-निर्देशि-संलेखानां व्यवस्थापने अधो-रेखाङ्कितानि पदानि तथा कल्प्यानि यथा तानि मुद्रित-पूर्वस्य प्रधान-संलेखीयस्य अग्रानुच्छेदस्य उपरिलिखितः अग्रानुच्छेदः स्यात् ।

३३२ द्वितीय, अथवा अन्य अनुच्छेद में विद्यमान योग्य शीर्षक के लिए उचित पदों के नीचे रेखाङ्कन किया जाय ।

३३२०१ यदि पहले लिखे जाने के लिए उचित पद अधोरेखांकित पदों के आदि में न विद्यमान हो, तो उस पद के नीचे फिर और एक रेखा खींच दी जाय ।

३३२०२ सर्वार्थक-पत्रक-पद्धति में प्रधान-संलेख-पत्रक के पुस्तक-संलेख-पत्रक के रूप में रूपान्तरीकरण करने की यह अन्य रीति जानी जाय ।

३३२१ यदि द्वितीय रीति व्यवहार में लाई जाय तो पुस्तक-निर्देशी-संलेखों के व्यवस्थापन में अधोरेखांकित पद इस प्रकार माने जायं मानों वे पहले से छपे हुए प्रधान-संलेख के अग्रानुच्छेद के ऊपर लिखा हुआ अग्रानुच्छेद हो ।

अध्याय ४

पृथक्-पुस्तकम्

पृथक्-पुस्तक

नामान्तर-निर्देशि-संलेखः

नामान्तर-निर्देशि-संलेख

४ **नामान्तर-निर्देशि-संलेखः पञ्चधा।**

४००१ **यथा —**

१ माला-सम्पादक-संलेखः;

२ कल्पित-तथ्य-नाम-संलेखः;

३ सजाति-संलेखः;

४ अवान्तर-नाम-संलेखः;

५ पद-वैरूप्य-संलेखश्च ।

४०१ **विशिष्ट-नामान्तर-निर्देशि-संलेखः पुनर्न ।**

४ नामान्तर-निर्देशि-संलेख के पांच प्रकार होते हैं।

४००१ वे पांच प्रकार निम्नलिखित हैं :—

१ माला-सम्पादक-संलेख;

२ कल्पित-तथ्य-नाम-संलेख;

३ सजाति-संलेख;

४ अवान्तर-नाम-संलेख; और

५ पद-वैरूप्य-संलेख ।

४०१ केनचन पुस्तकेन अपेक्षित-विशिष्ट-नामान्तर-

निर्देशि-संलेखः अपरस्य पुस्तकस्य हेतोः पूर्वं लिखितः सूच्याम् आदौ एव विद्यते चेत् सः पुनरपि न लेख्यः ।

४०१ किसी पुस्तक में अपेक्षित विशिष्ट नामान्तर-निर्देशी-संलेख यदि अन्य किसी पुस्तक के कारण पहले से लिखा हुआ सूची में पहले से ही विद्यमान हो तो वह फिर दुबारा न लिखा जाय ।

४१ माला-सम्पादक-संलेखः

माला-सम्पादक-संलेख

४१ **माला-सम्पादक-संलेखे अनुच्छेदाः त्रयः ।**

४१० **यथा —**

१ शीर्षकम् (अग्रानुच्छेदः);

२ "द्रष्टव्यम्" इति देशक-पदम्;

३ द्रष्टव्य-शीर्षकं च ।

४१ माला-संपादक-संलेखे यथाक्रमं त्रयः अनुच्छेदाः भवन्ति ।

४१ माला-सम्पादक-संलेख में क्रमशः तीन अनुच्छेद होते हैं ।

४१० वे तीन अनुच्छेद निम्नलिखित हैं:—

१ शीर्षक (अग्रानुच्छेद);

२ "द्रष्टव्य" यह देशक-पद; और

३ द्रष्टव्य-शीर्षक ।

४११ **माला-सम्पादक-संलेखे माला अधिसूचन-सम्पादक-नामशीर्षकम् ।**

४११०	**नामनी वा।**
४१११	**शीर्षक-उपकल्पने १२६-१२७ धारोपधारा अनुकार्याः।**
४११२	**सह-सम्पादक-नाम्नोः प्रति-नाम-क्रमम् ।**

४११	प्रधान-संलेखीये माला-अधिसूचने संपादकस्य नाम विद्यते चेत् तत् माला-संपादक-संलेखस्य शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।
४११०	सह-सम्पादकयोः नामनी विद्येते चेत् तौ माला-संपादक-संलेखस्य शीर्षकम् इति स्वीकार्ये ।
४११२	सह-सम्पादकयोः नामनी चेत् तयोः उभयोः नाम्नोः प्रत्येकं क्रमं स्वीकृत्य एकैकः संलेखो लेख्यः ।

४११	प्रधान-संलेख के माला-अधिसूचन में यदि सम्पादक का नाम हो, तो उसे माला-सम्पादक-संलेख के शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जाय।
४११०	यदि दो सह-सम्पादक के नाम हों, तो उन्हें माला-सम्पादक-संलेख के शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जाय।
४१११	शीर्षक के उपकल्पन में १२६-१२७ धारा तथा उपधाराओं का अनुकरण किया जाय।
४११२	यदि दो सह-सम्पादकों के नाम हों तो उन दोनों नामों के प्रत्येक क्रम को स्वीकार करके एक-एक संलेख लिखा जाय।

४१३	**माला-नाम द्रष्टव्य-शीर्षकम्**
४१३१	**३२१४-३२१५ धारा-यथा-निर्देशम् ।**

४१३	मालायाः नाम द्रष्टव्य-शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।
४१३१	३२१४-३२१५ धारयोः निर्देशमनुसृत्य मालायाः नाम लेख्यम् ।

४१३ माला का नाम द्रष्टव्य शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जाय।

४१३१ ३२१४-३२१५ धाराओं के निर्देश का अनुसरण करके माला का नाम लिखा जाय।

४१३१ उदाहरण

१. मङ्गलदेव शास्त्री. संपा.

द्रष्टव्य

प्रिन्सेस ऑफ वेल्स, सरस्वती भवन ग्रंथमाला.

प्रधान-संलेख के लिए १४१४१३ धारा के अन्तर्गत उदाहरण १६ द्रष्टव्य है।

२. जिनविजय मुनि तथा पुसल्कर (अ. दा.). संपा.

द्रष्टव्य

भारतीय विद्या ग्रंथावलि.

३. पुसल्कर (अ. दा.) तथा जिनविजय मुनि. संपा.

द्रष्टव्य

भारतीय विद्या ग्रंथावलि.

प्रधान-संलेख के लिए १४१४१३ धारा के अन्तर्गत उदाहरण ८ द्रष्टव्य है।

४. केप्स (ई.) इदि. संपा.

द्रष्टव्य

लोब क्लासिकल लायब्रेरी.

प्रधान-संलेख के लिए १४१४१३ धारा के अन्तर्गत उदाहरण १० द्रष्टव्य है।

४२ कल्पित-तथ्य-नाम-संलेखाः

कल्पित-तथ्य-नाम-संलेख

४२ कल्पित-तथ्य-नाम-संलेखे अनुच्छेदाः त्रयः।

४२० यथा —

१ शीर्षकम् (अग्रानुच्छेदः);

२ 'द्रष्टव्यम्' इति देशक-पदम्;

३ द्रष्टव्य-शीर्षकं च ।

४२ कल्पित-तथ्य-नाम-संलेखे यथाक्रमं त्रयः अनुच्छेदाः भवन्ति ।

४२ कल्पित-तथ्य-नाम संलेख में क्रमशः तीन अनुच्छेद होते हैं ।

४२० वे तीन अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—

१ शीर्षक (अग्रानुच्छेद);

२ "द्रष्टव्य" यह देशक पद; और

३ द्रष्टव्य शीर्षक ।

४२१ प्रधान-संलेख-कल्पित-तथ्य-नाम-प्रति-व्यक्ति-कल्पित-तथ्य-नाम-संलेखः।

४२१ यस्याः व्यष्टेः कल्पितं नाम तथ्यं च नाम प्रधान-संलेखे स्यात् तादृशायाः प्रत्येकस्याः व्यष्टेः कृते एकैकः कल्पित-तथ्य-नाम-संलेखो लेख्यः ।

४२१ जिस व्यक्ति का कल्पित-नाम और तथ्य-नाम प्रधान-संलेख में हो उस प्रकार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक-एक कल्पित-तथ्य-नाम-संलेख लिखा जाय ।

४२११ कल्पित - नाम्नः प्रधान - संलेख-शीर्षकत्वे तथ्य-नाम-शीर्षकम् ।

४२११० १२१ धारोपधाराः अनुकार्याः।

४२११ कल्पित-नाम प्रधान - संलेखस्य शीर्षकं चेत् तथ्य-नाम कल्पित-तथ्य-नाम-संलेखस्य शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४२११० तत् शीर्षकं १२१ धारां तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम् ।

४२११ यदि कल्पित-नाम प्रधान-संलेख का शीर्षक हो तो तथ्य-नाम कल्पित-तथ्य-नाम-संलेख का शीर्षक स्वीकार किया जाय।

४२११० वह शीर्षक १२१ धारा और उसकी उपधाराओं का अनुसरण करके लिखा जाय।

४२१२ तथ्य-नाम्नः प्रधान-संलेख-शीर्षकत्वे कल्पित नाम शीर्षकम् ।

४२१२१ १२५ धारामनु ।

४२१२२ न तथ्य-नामांशः ।

४२१२ तथ्य-नाम प्रधान-संलेखस्य शीर्षकं चेत् कल्पित-नाम कल्पित-तथ्य-नाम-संलेखस्य शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४२१२१ तत् शीर्षकं १२५ धारामनुसृत्य लेख्यम् ।

४२१२२ १२५ धाराम् अनुसृत्य शीर्षक-लेखने तथ्य-नाम्नः सम्बद्धस्य अंशस्य लोपः कार्यः ।

४२१२ यदि तथ्य-नाम प्रधान-संलेख का शीर्षक हो तो कल्पित-नाम कल्पित-तथ्य-नाम संलेख का शीर्षक स्वीकार किया जाय ।

४२१२१ वह शीर्षक १२५ धारा का अनुसरण करके लिखा जाय।

४२१२२ १२५ धारा का अनुसरण करके शीर्षक लिखने में तथ्य-नाम से सम्बद्ध अंश का लोप किया जाय।

४२३१ तथ्य-नाम-शीर्षकत्वे कल्पित-नाम द्रष्टव्य शीर्षकम् ।

४२३२ **कल्पित-नाम-शीर्षकत्वे तथ्य-नाम द्रष्टव्य-शीर्षकम् ।**

४२३३ **४२११-४२१२ धारे अनुकार्ये ।**

४२३१ तथ्य-नाम शीर्षकं चेत् कल्पित-नाम द्रष्टव्य-शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४२३२ कल्पित-नाम शीर्षकं चेत् तथ्य-नाम द्रष्टव्य-शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४२३३ द्रष्टव्य-शीर्षकं ४२११ धारां ४२१२ धारां च अनुकृत्य लेख्यम् ।

४२३१ **यदि तथ्य-नाम शीर्षक हो, तो कल्पित-नाम द्रष्टव्य-शीर्षक स्वीकार किया जाय ।**

४२३२ **यदि कल्पित-नाम शीर्षक हो, तो तथ्य-नाम द्रष्टव्य-शीर्षक स्वीकार किया जाय ।**

४२३३ **द्रष्टव्य-शीर्षक ४२११ धारा और ४२१२ धारा का अनुसरण करके लिखा जाय ।**

४२३३ **उदाहरण**

१. **चतुर्वेदी** (माखनलाल).

द्रष्टव्य

एक भारतीय आत्मा.

---

२. **चाणक्य.** कल्पित.

द्रष्टव्य

नेहरू (जवाहरलाल).

---

३. **मिश्र** (गंगाशंकर).

द्रष्टव्य

एक किताबी कीड़ा. कल्पित.

---

४३ सजाति नाम-संलेखः

सजाति-नाम-संलेख

४३ **सजाति-नाम-संलेखे अनुच्छेदाः त्रयः ।**

४३० **यथा——**

१ सजाति-शीर्षकम्;

२ "द्रष्टव्यम्" इति देशक-पदम्;

३ द्रष्टव्य-शीर्षकं च ।

४३ सजाति-नाम-संलेखे यथाक्रमं त्रयः अनुच्छेदाः भवन्ति ।

४३ सजाति-नाम-संलेख में क्रमशः तीन अनुच्छेद होते हैं ।

४३० वे तीन अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—

१ सजाति-शीर्षक (अग्रानुच्छेद);

२ "द्रष्टव्य" यह देशक पद; तथा

३ द्रष्टव्य-शीर्षक ।

४३१ **विश्वविद्यालय-महाविद्यालय-विद्यालय-पुरातन-प्रदर्शन-समीक्षण-शाला-नियन्त्रणे-क्षण-शाला-ग्रन्थालय-नियन्त्रणेक्षणोद्यान-पशु-उपवन-प्रभृति-पदानां प्रत्येकं वीर्षकम् ।**

४३१ विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय, पुरातन-प्रदर्शन, समीक्षणशाला, नियन्त्रणेक्षणशाला, ग्रन्थालय, नियन्त्रणे-क्षणोद्यान, पशु-उपवन, आदि पदों में से प्रत्येक शीर्षक माना जाय ।

४३१ इस प्रकार का संलेख ऐच्छिक माना जा सकता है । मद्रास

विश्वविद्यालय ग्रन्थालय के अनुलयकर्तृगण का यह अनुभव है कि इस प्रकार के संलेख से पाठकों को सहायता पहुंचाने में अत्यधिक सरलता प्राप्त होती है।

४३३ निर्देश-संलेख-संस्था-नाम द्रष्टव्य-शीर्षकम्।

४३३ सम्बद्धे निर्देशि-संलेखे लिखितं संस्थायाः नाम द्रष्टव्य शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४३३ सम्बद्ध निर्देशी-संलेख में लिखा हुआ संस्था का नाम द्रष्टव्य-शीर्षक स्वीकार किया जाय ।

४३३१ प्रत्यवान्तर-नाम पृथक् संलेखः ।

४३३२ अवान्तर-नाम-द्रष्टव्य-शीर्षकम् ।

४३३३० यथा :—

१ 'निर्देशो यथा' इति पदे;

२ निर्देशि-संलेख-शीर्षकं च ।

४३३१ एकस्या एव कस्याश्चन विशिष्टायाः संस्थायाः अवान्तर-नामानि चेत् प्रत्येकम् अवान्तर-नाम स्वीकृत्य एकैकः पृथक् सजाति-संलेखो लेख्यः ।

४३३२ प्रत्येकम् अवान्तर-नाम द्रष्टव्य-शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४३३३ संस्थायाः अवान्तर-नाम द्रष्टव्य-शीर्षकं चेत् निम्नलिखितौ द्वौ अतिरिक्तौ अनुच्छेदौ यथाक्रमं लेख्यौ।

४३३३० तौ अतिरिक्तौ अनुच्छेदौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः —

१ 'निर्देशो यथा' इति देशक-पदे;

२ निर्देशि-संलेख-शीर्षकत्वाय व्यवहृतं संस्थायाः नाम्नः वास्तविकं रूपं च ।

४३३१ यदि किसी एक ही विशिष्ट संस्था के अवान्तर नाम हों तो प्रत्येक अवान्तर-नाम स्वीकार करके एक एक पृथक् सजाति संलेख लिखे जायं ।

४३३२ प्रत्येक अवान्तर-नाम द्रष्टव्य-शीर्षक स्वीकार किया जाय ।

४३३३ यदि संस्था के अवान्तर-नाम द्रष्टव्य-शीर्षक हों, तो दो अतिरिक्त अनुच्छेद क्रमशः लिखे जायं ।

४३३३० वे दो अतिरिक्त अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—

१ 'निर्देशित यथा' ये देशक पद ;

२ निर्देशी-संलेख-शीर्षक के लिए व्यवहृत संस्था के नाम का वास्तविक रूप ।

४३३३० उदाहरण

---

१. विश्वविद्यालय.

और द्रष्टव्य

युनिवर्सिटी ऑफ मद्रास.

---

२. विश्वविद्यालय.

और द्रष्टव्य

मद्रास युनिवर्सिटी.

निर्देशित यथा

युनिवर्सिटी ऑफ मद्रास.

---

४४ अवान्तर-नाम-संलेखः

अवान्तर-नाम-संलेख

४४ **अवान्तर-नाम-संलेखे अनुच्छेदाः त्रयः ।**

४४० **यथा —**

१ शीर्षकम् (अग्रानुच्छेदः) ;

२ 'द्रष्टव्यमन्यत्' इति 'द्रष्टव्यम्' इति वा देशक-पदे ;

३ द्रष्टव्य-शीर्षकम् च ।

४४ अवान्तर-नाम-संलेखे यथाक्रमं त्रयः अनुच्छेदाः भवन्ति ।

४४ अवान्तर-नाम-संलेख में क्रमशः तीन अनुच्छेद होते हैं ।

४४० वे तीन अनुच्छेद निम्नलिखित हैं :—

१ शीर्षक (अग्रानुच्छेद);

२ "और द्रष्टव्य", ये अथवा 'द्रष्टव्य' यह देशक पद;

३ द्रष्टव्य-शीर्षक ।

४४१ निर्देशि-संलेख - शीर्षक - अवान्तर - नाम शीर्षकम् ।

४४१० प्रति-अवान्तर-नाम-पृथक् संलेखः ।

४४१ निर्देशि-संलेखे शीर्षकत्वेन व्यवहृतानां व्यष्टि-समष्टि-पुस्तक-माला-प्रभृति-नाम्नां यथासंभवम् अवान्तर-नाम शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४४१० प्रत्येकं यथासंभवम् अवान्तर-नाम स्वीकृत्य पृथक् पृथक् संलेखो लेख्यः ।

४४१ निर्देशी-संलेख में शीर्षक के रूप से व्यवहृत व्यष्टि-समष्टि, पुस्तक, माला आदि के नामों के यथासंभव अवान्तर-नाम स्वीकार किए जायं ।

४४१० प्रत्येक यथासंभव अवान्तर-नाम स्वीकार करके उनके पृथक्-पृथक् संलेख लिखे जायं ।

४४११ प्रथम-तृतीयाध्याय-धाराः अनुकार्याः ।

४४११ शीर्षकस्य उपकल्पने प्रथमे तृतीये च अध्याये वर्तमानाः संगताः धाराः अनुकार्यत्वेन स्वीकार्याः ।

४४११ **शीर्षक के उपकल्पन में प्रथम और तृतीय अध्याय की संगत धाराओं को अनुकार्य रूप में ग्रहण की जायं।**

४४३ निर्देशि-संलेख-शीर्षकं द्रष्टव्य-शीर्षकम् ।

४४३ सम्बद्धे निर्देशि-संलेखे व्यवहृतं शीर्षकस्य वास्तविकं रूपं द्रष्टव्य-शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४४३ **सम्बद्ध-निर्देशी-संलेख में व्यवहृत शीर्षक का वास्तविक रूप द्रष्टव्य-शीर्षक स्वीकार किया जाय।**

४४३ नामान्तर-निर्देशी-संलेखों के लिए जिन अवान्तर नामों को शीर्षक बनाया जा सके उनकी पूर्ण-पूर्ण तालिका बनाना बड़ा कठिन है। व्यक्ति-विशेष का नाम अनेक कारणों से बदल सकता है। विवाह, धर्म-परिवर्तन, हिन्दू तथा अन्य कतिपय धर्मों में आश्रय का परिवर्तन आदि अनेक कारण हैं। कहीं-कहीं तो एक सनक सवार हो जाती है और उसी के कारण ग्रन्थकार अपने नाम को बदल डालते हैं।

राजनैतिक तथा अन्य अनेक कारणों से बहुधा स्थानों के नाम बदल जाया करते हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि स्थान का नाम कुछ और होता है और उसकी प्रसिद्धि किसी और नाम से रहती है।

संस्था तथा विषयों के नामों के सम्बन्ध में दुगनी कठिनाई होती है। साधारण रीति से तो उनके नाम बदला ही करते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं यह भी आवश्यक हो जाता है कि नाम के अवयवभूत शब्दों के क्रम का विपर्यास करना पड़े, जिससे कि कोई विशेष महत्त्वपूर्ण शब्द नाम के पूर्व में जाय, कारण वह संस्था अथवा विषय उसी स्मरणीय शब्द के द्वारा विख्यात रहता हो। कतिपय संस्थाओं के विषय में यह भी होता है कि उनका यथार्थ वैधानिक नाम या तो अत्यधिक लम्बा होता है अथवा अप्रसिद्ध होता है। ऐसे अवसरों पर इस प्रकार के अप्रयुक्त वैधानिक नाम को शीर्षक बना कर नामान्तर निर्देशी संलेख लिखा जाय तथा द्रष्टव्य शीर्षक के स्थान पर वह नाम लिखा जाय जो उन संस्थाओं द्वारा प्रकाशित ग्रंथों में वस्तुतः आख्या-पत्रों पर दिया हुआ हो। इस प्रकार बड़ी सुविधा होगी।

कतिपय मालाओं के भी अवान्तर नाम होते हैं।

नीचे कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं। उनमें से अधिकांश, अध्याय १ में दिये हुए प्रधान-संलेखों से तथा अध्याय ३ में दिये हुए निर्देशी-संलेखों से सम्बद्ध हैं। इनके द्वारा नामान्तर-निर्देशी-संलेखों के शीर्षकों के कतिपय प्रकार उदाहृत किये गये हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि नामान्तर-निर्देशी-संलेखों के कारण अनेक हैं तथा भविष्य में किसी भी समय और नये कारण उत्पन्न हो सकते हैं। नामान्तर-निर्देशी-संलेखों के शीर्षकों के रूप में व्यवहार्य अवान्तर नामों का वरण बहुत कुछ सूचीकार की वरणशील प्रतिभा पर निर्भर करता है। उसे ही यह विचारना है कि कौन नाम लाभप्रद हैं और कौन नहीं है। प्रतिभा ही एक भेदक तत्त्व है, जो सफल सूचीकार तथा शुष्क गतानुगतिक में अन्तर सिद्ध करा सकता है किन्तु यह स्पष्ट कर देना उचित है कि नामान्तर-निर्देशी-संलेखों का पौनःपुन्य साधारणतः अति न्यून होता है।

सुविधा के लिए नामान्तर-निर्देशी-संलेख के पत्रक गुलाबी रखे जा सकते हैं।

निम्नलिखित उदाहरणों में से कतिपय में तो देशक पद 'द्रष्टव्य' है और कतिपय अन्य में 'और द्रष्टव्य' है—यह स्पष्ट हो जायगा। यदि दोनों अवान्तर नाम निर्देशी-संलेखों के शीर्षक के रूप में व्यवहृत हों तो 'और द्रष्टव्य' यह देशक पद उपयोग में लाया जाय। यदि नामान्तर-निर्देशी-संलेख के शीर्षक के रूप में व्यवहृत नाम निर्देशी-संलेख के शीर्षक के रूप में कदापि व्यवहृत न हो तो 'द्रष्टव्य' यह देशक पद उपयोग में लाया जाय।

यहां यह स्पष्ट कर देना उचित है कि 'द्रष्टव्य' इस देशक पद को आवश्यकतानुसार "और द्रष्टव्य" में भी परिवर्तित किया जा सकता है।

उदाहरण

---

१. **काउच** (आर्थर क्विलर-).

द्रष्टव्य

क्विलर-काउच (आर्थर).

तथा

क्यू.

---

२. **क्विलर-काउच** (आर्थर).

और द्रष्टव्य

क्यू.

---

३. **क्विलर-काउच** (आर्थर थामस).

द्रष्टव्य

क्विलर-काउच (आर्थर).

तथा

क्यू.

उपर्युक्त तीन नामान्तर-निर्देशी-संलेख जिस ग्रन्थकार के हैं उसका पूर्ण नाम आर्थर थामस क्विलर-काउच है। किन्तु नामाद्य पद 'थामस' कदाचित् ही आख्या-पत्र पर दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त, कहीं-कहीं केवल 'क्यू' यह नामाग्राक्षर ही आख्या-पत्र पर उपलब्ध होता है। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि नामान्त्य-पद समस्त है। अतः समस्त नाम के उत्तरार्ध से पूर्ण नाम द्रष्टव्य बनाया जाय।

---

४. **बर्ड** (आइसाबेला मिस).

और द्रष्टव्य

बिशप (आइसाबेला-मिसेज़).

---

५. **सेलिसबरी** (अर्ल ऑफ).

द्रष्टव्य

होवर्ड (हेनरी).

---

६. **रोनाल्डशे** (अर्ल ऑफ).

और द्रष्टव्य

जेटलेंड (मार्क्विस ऑफ).

---

७. **जेटलेंड** (मार्क्विस ऑफ).

और द्रष्टव्य

रोनाल्डशे (अर्ल ऑफ).

अन्तिम दो नामान्तर-निर्देशी-संलेखों में से दोनों आवश्यक हैं, कारण ग्रन्थकार ने कतिपय पुस्तकें प्रथम नाम से लिखी हैं तथा कतिपय पुस्तकें द्वितीय नाम से लिखी हैं।

८. **पेटिसन** (ऐंड्रू सेथ प्रिंगल–).

और द्रष्टव्य

प्रिंगल-पेटिसन (एण्ड्रू सेथ).

९. **प्रिंगल-पेटिसन** (एण्ड्रू सेथ).

और द्रष्टव्य

शेथ (एण्ड्रू).

१०. **सेथ** (एण्ड्रू).

और द्रष्टव्य

प्रिंगल-पेटिसन (एण्ड्रू सेथ).

अन्तिम तीन संलेखों के लिए दो शब्द व्याख्या के रूप में लिखे जाने आवश्यक हैं। हिस्टरी ऑफ दि युनिवर्सिटी ऑफ एडिनबरा, १८८३-१९३३ से हमें यह ज्ञात होता है कि प्रोफेसर एण्ड्रू सेथ ने १८९८ में हेनिंग स्टेट पर अधिकार पाने के बाद प्रिंगल-पेटिसन यह नाम अपना लिया। उस तिथि के पूर्व उनके द्वारा लिखी हुई पुस्तकों में उनका नाम एण्ड्र सेथ इस प्रकार दिया हुआ है। किन्तु उसके अनन्तर की पुस्तकों में वह एण्ड्रू सेथ प्रिंगल-पेटिसन इस प्रकार दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त, जो नया नामान्त्य पद स्वीकार किया गया है वह समस्त है। अतः एक अतिरिक्त नामान्तर-निर्देशी-संलेख लिखना आवश्यक होता है।

११. **आनन्द मतेय.**

द्रष्टव्य

बेनेट (एलन).

इस उदाहरण में, मि० एलन बेटेन ने बौद्ध धर्म स्वीकार करने पर अनन्त मतेय यह नाम अपना लिया था।

१२. **दत्त** (नरेन्द्रनाथ).

द्रष्टव्य

विवेकानन्द.

इस उदाहरण में, नरेन्द्रनाथ दत्त ने संन्यासी बनने के बाद विवेकानन्द यह नाम स्वीकार कर लिया। अनन्तर आश्रम में वे स्वामी विवेकानन्द नाम से विख्यात थे जिसमें "स्वामी" यह मानार्थक उपपद है।

---

१३. **मार्क ट्वेन.**

द्रष्टव्य

ट्वेन (मार्क).

---

१४. **महाजन सभा, मद्रास.**

द्रष्टव्य

मद्रास महाजन सभा.

---

१५. **मद्रास युनिर्वासिटी.**

द्रष्टव्य

युनिर्वासिटी ऑफ मद्रास.

---

१६. **पटना युनिर्वासिटी, सुखराजराय रीडरशिप लेक्चर्स इन नेचुरल साइंस.**

द्रष्टव्य

सुखराजराय रीडरशिप लेक्चर्स इन नेचुरल साइंस.

यदि किसी निधि-परिचालित विश्वविद्यालय-व्याख्यान के लिए स्वतन्त्र नाम हो और वह स्वतन्त्र रूप से उस व्याख्यान का व्यक्ति साधन कर सके तो उसके लिए विश्वविद्यालय के नाम को शीर्षक का स्थान देकर एक नामान्तर-निर्देशी-संलेख लिखना वांछनीय है। यहाँ इसी का उदाहरण दिया गया है।

---

१७. **हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला.**

द्रष्टव्य

काशी संस्कृत सीरीज़.

---

१८. **दृश्य काव्य.**

द्रष्टव्य

नाटक.

---

४५ पद-वैरूप्यम्

पद-रूप-अन्तर

४५ पदवैरूप्य-संलेखे अनुच्छेदाः त्रयः ।

४५० यथा --

१ शीर्षकम् (अग्रानुछेदः)

२ 'प्रकृत-पद-द्रष्टव्य-रूपान्तरं यथा' इति देशक-पदे;

३ द्रष्टव्य-शीर्षकं च ।

४५ पद-वैरूप्य-संलेखे यथाक्रमं त्रयः अनुच्छेदाः भवन्ति ।

४५ पद-वैरूप्य संलेख में क्रमशः तीन अनुच्छेद हैं ।

४५० वे तीन अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—

१ शीर्षक (अग्रानुच्छेद);

२ 'प्रकृत-पद का द्रष्टव्य रूपान्तर यथा 'ये देशक पद; और

३ द्रष्टव्य-शीर्षक ।

४४१ व्यष्टि-विषय-नाम-रूपान्तरं शीर्षकम् ।

४५१ निर्देशि-संलेखे शीर्षकत्वेन व्यवहृतस्य व्यष्टि-नाम्नः विषयनाम्नः वा यथासंभवं प्रत्येकं रूपान्तरं शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४५१ निर्देशी-संलेख में शीर्षक के रूप से व्यवहृत व्यष्टि-नाम अथवा विषय-नाम का यथासंभव प्रत्येक रूपान्तर शीर्षक स्वीकार किया जाय ।

४५३ निर्देशि-संलेख-शीर्षकं द्रष्टव्य-शीर्षकम् ।

४५३ सम्बद्धे निर्देशि-संलेखे व्यवहृतं शीर्षकस्य वास्तविकं रूपं द्रष्टव्य-शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

४५३ सम्बद्ध-निर्देशी-संलेख में व्यवहृत शीर्षक का वास्तविक रूप द्रष्टव्य शीर्षक स्वीकार किया जाय ।

४५३ यहां यह ध्यान देने योग्य है कि देशक पदों में से प्रथम दो पद मात्राधिक लिपि में हों तथा जब लिखे जायें तब अधोरेखांकित हों तथा जब छपे हुए हों तब प्रवण-अक्षरों में हों। इसका उद्देश्य यह है कि इसी प्रकार के शीर्षक वाले अन्य संलेखों की अपेक्षा इस प्रकार के संलेख को पूर्ववर्तिता दी जाय। इस प्रकार की पूर्ववर्तिता आवश्यक है। कारण यदि ऐसा न किया गया तो पाठक इनसे वंचित रह जायेंगे, ऐसी आशंका है।

शब्दों के वैरुप्य होने के कई कारण हैं। एक लिपि से अथवा भाषा से दूसरी लिपि या भाषा में लिप्यन्तरकरण, वर्णानुपूर्वी के आधुनिक अथवा गतकाल रूपों के उपयोग विषयक मतवैषम्य, एक वचन अथवा बहुबचन रूपों के प्रयोग अथवा स्त्रीलिंग अथवा पुल्लिग रूप आदि तथा और भी कई कारण होते हैं।

धारा १२१२ की व्याख्या में हम यह देख ही चुके हैं कि लिप्यन्तरकरण में एकरूपता के अभाव के कारण कतिपय नामों की वर्णानुपूर्वी के विभिन्न रूप हो सकते हैं। सूचीकार की दृष्टि से जो अधिक महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि एक ही व्यक्ति का नाम विभिन्न पुस्तकों में विभिन्न वर्णानुपूर्वी में लिखित प्राप्त हो सकता है। इस्लामी संस्कृति-सम्बन्धी ग्रन्थों की सूचियों में मुहम्मद इस शीर्षक से आरम्भ होनेवाले संलेखों को देखने का जिसे अवसर प्राप्त हुआ हो ऐसे व्यक्ति को इस वैरूप्य की महत्ता अवश्यमेव स्पष्ट रूप से विदित होगी। पाठकों के समय को बचाने का तथा पाठक किसी भी संगत संलेख से वंचित न रह सकें, इस वस्तु को सिद्ध करने का एकमात्र यही मार्ग है कि विभिन्न विरूपों को शीर्षक बनाते हुए पर्याप्त संख्या में नामान्तर-निर्देशी-संलेख लिखे जायें।

उदाहरण

१.१ **विश्वेश्वर नाथ.**

प्रकृत पद के विरूप के लिए द्रष्टव्य

बिसेसर नाथ.

बिस्वेस्वर नाथ.

१.२ बिसेसर नाथ.

प्रकृत पद के विरूप के लिए द्रष्टव्य

विश्वेश्वर नाथ.

विस्वेस्वर नाथ.

१.३ बिस्वेस्वर नाथ.

प्रकृत पद के विरूप के लिए द्रष्टव्य

बिसेसर नाथ.

विश्वेश्वर नाथ.

२.१ बनर्जी.

प्रक्रुत पद के विरूप के लिए द्रष्टव्य

बेनर्जी.

बंगोपाध्याय.

बन्द्योपाध्याय.

वन्द्योपाध्याय.

२.२ बेनर्जी.

प्रक्रुत पद के विरूप के लिए द्रष्टव्य

बनर्जी.

बंगोपाध्याय.

बन्द्योपाध्याय.

वन्द्योपाध्याय.

२.३ बंगोपाध्याय.

प्रक्रुत पद के विरूप के लिए द्रष्टव्य

बन्द्योपाध्याय.

वन्द्योपाध्याय.

बनर्जी.

बेनर्जी.

२.४ बन्द्योपाध्याय.

प्रकृत पद के विरूप के लिए द्रष्टव्य

वन्द्योपाध्याय.

बनर्जी.

बेनर्जी.

बंगोपाध्याय.

२.५ वन्द्योपाध्याय.

प्रकृत पद के विरूप के लिए द्रष्टव्य

बनर्जी.

बेनर्जी.

बंगोपाध्याय.

बन्द्योपाध्याय.

अध्याय ५

अनेक-संपुटक-पृथक्-पुस्तकम्

अनेक-संपुटक-पृथक्-पुस्तक

५ अनेक-संपुटक-पृथक्-पुस्तकं द्विधा ।

५० यथा —

१ विशेष-आख्या-रहित-अवयव-संपुटक-प्रधान-संलेख-आख्यादि-अनुच्छेद-विशेषाधायक-वस्त्वन्तर-भेद-रहितम् ;

२ अन्यच्च ।

५ अनेक-संपुटक-पृथक्-पुस्तकं द्विविधं भवति ।

५० तौ द्वौ अंशौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः —

१ यस्य पुस्तकस्य अवयवभूतानां संपुटानां सामान्यायाः आख्यायाः इतरा काचन विशेषाख्या न भवति, प्रधान-संलेखस्य आख्यादि-अनुच्छेदे च अंशदायकेषु अन्येषु वस्तुषु किमपि भेद-जनकत्वं न भवति तादृशं पुस्तकं प्रथमः प्रकारः इति ज्ञेयम् ।

२ पूर्वोक्तात् इतरः अन्यः द्वितीयः प्रकारः इति ज्ञेयम् ।

५ अनेक-संपुटक-पुस्तक के दो प्रकार होते हैं ।

५० वे दो प्रकार ये हैं :—

१ जिन पुस्तकों में अवयवभूत संपुटों की सामान्य आख्या से भिन्न अन्य कोई विशेष आख्या नहीं होती और प्रधान-

संलेख के आख्यादि-अनुच्छेद में अंशदायक अन्य वस्तुओं में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं होती जो अन्तर उत्पन्न करे, वे पुस्तकें प्रथम प्रकार की मानी जायँ ।

२ पूर्वोक्त से भिन्न अन्य पुस्तकें द्वितीय प्रकार की मानी जायँ ।

५१ **प्रथम-प्रकारक-पुस्तक-सूचीकरणे-प्रस्तुत-धारोपधारा-निर्दिष्ट-विशेषोपहित-पृथक्-पुस्तक-सूचीकरण-विधिः प्रमाणम् ।**

५१ प्रथम-प्रकारकस्य पुस्तकस्य सूचीकरणे प्रस्तुतायाः धारायाः उपधारासु निर्दिष्टेन विशेषेण उपहितः पृथक्-पुस्तकस्य सूचीकरण-विधिः प्रमाणत्वेन स्वीकार्यः ।

५१ प्रथम-प्रकार की पुस्तकों के सूचीकरण में प्रस्तुतधारा की उपधाराओं में निर्दिष्ट व्यवस्था से अतिरिक्त पृथक्-पुस्तक के सूचीकरण की विधि प्रमाण मानी जाय ।

५११ **सकल-संपुट-प्रकाशितत्वे प्रधान-संलेख-आख्यादि-अनुच्छेदे अतिरिक्त-वाक्यम्।**

५११० **तत्र अंशौ द्वौ ।**

५११०० **यथा --**

१ पुस्तक-अवयव-संपुट-संकलित-संख्या ;

२ 'संपु' इति, आख्या-पत्र-भाषिक-संपुट-पर्यायो वा ।

५११ पुस्तकस्य सकलाः संपुटाः प्रकाशिताः चेत् प्रधान-संलेखस्य आख्यादि-अनुच्छेदे अतिरिक्तं वाक्यं लेख्यम् ।

५११० तस्मिन् अतिरिक्त-वाक्ये द्वौ अंशौ भवतः ।

५११ यदि पुस्तक के सब संपुट प्रकाशित हो चुके हों, तो प्रधान-संलेख के आख्यादि-अनुच्छेद में अतिरिक्त वाक्य लिखा जाय।

५११० उस अतिरिक्त वाक्य में दो अंश होते हैं ।

५११०० वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ पुस्तक के संपुटों की संकलित संख्या; और

२ 'संपु.' यह अथवा आख्या-पत्र की भाषा में संपुट का पर्याय।

५१११ अप्रकाशितत्वे अंशाः त्रयः ।

५१११० यथा—

१ 'संपु' इति तत्पर्यायो वा ;

२ तावत्प्रकाशित-संपुट-संकलित-संख्या ;

३ रेखिका च।

५१११०१ सीस-लेखनी।

५१११०२ इदम् अपूरिताङ्कनम् ।

५१११ पुस्तकस्य सकलाः संपुटाः न प्रकाशिताः चेत् अतिरिक्त-वाक्ये त्रयः अंशाः भवन्ति ।

५१११०१ इदम् अतिरिक्त-वाक्यं सीस-लेखन्या लेख्यम् ।

५१११ यदि पुस्तक के सब संपुट प्रकाशित न हुए हों तो अतिरिक्त वाक्य में तीन अंश होते हैं ।

५१११० वे तीन अंश निम्नलिखित होते हैं :—

१ 'संपु.' यह अथवा उसका पर्याय;

२ तब तक प्रकाशित संपुटों की संकलित संख्या; और

३ रेखिका ।

५१११०१ यह अतिरिक्त वाक्य पेन्सिल से लिखा जाय ।

५१११०२ यह अपूरितांकन कहा जाता है ।

५११२ **सकल-संपुट-प्राप्तौ मसी ।**

५११२ पुस्तकस्य सकलानां संपुटानां प्राप्तौ सत्यां सीस-लेखन्या लिखितस्य लेखस्य मसी-लेखनं कार्यम् ।

५११२ पुस्तक के सकल संपुटों की प्राप्ति हो जाने पर पेन्सिल से लिखे हुए लेख का स्याही द्वारा लेखन किया जाय ।

५११३ **ग्रन्थालय-अविद्यमान-सकल-मुद्रित-संपुटत्वे अपरवाक्यम् ।**

५११३० **ऋजु-कोष्ठके ।**

५११३०१ **तत्र अंशाः त्रयः ।**

५११३०१० **यथा —**

१ 'संपु' इति, आख्या-पत्र-भाषिक-संपुट-पर्यायो वा ;

२ ग्रन्थालय-अविद्यमान-संपुट-संकलित-संख्या ;

३ "ग्रन्थालये न" इति च ।

५११३ पुस्तकस्य सकलाःमुद्रिताः संपुटाः ग्रन्थालये न विद्यन्ते चेत् आख्यादि-अनुच्छेदे एकम् अपरं वाक्यं लेख्यम् ।

५११३० तत् अपरं वाक्यं ऋजु-कोष्ठके लेख्यम् ।

५११३०१ तस्मिन् अपर-वाक्ये त्रयः अंशाः भवन्ति ।

५११३ यदि पुस्तक के समस्त मुद्रित संपुट ग्रंथालय में विद्यमान न हों, तो आख्यादि-अनुच्छेद में एक अन्य वाक्य लिखा जाय ।

५११३० वह वाक्य ऋजु-कोष्ठक में लिखा जाय ।

५११३०१ उस में तीन अंश होते हैं ।

५११३०१० वे तीन अंश निम्नलिखित हैं :—

१ 'संपु.' अथवा आख्या-पत्र की भाषा में संपुट का पर्याय;
२ जितने संपुट ग्रन्थालय में विद्यमान न हों उनकी संख्या; और
३ "ग्रन्थालय में नहीं है" यह वाक्यांश ।

५१२ विषयान्तर-संलेखे संपुट-समङ्कः ।

५१२ विषयान्तर-संलेखे यत्र आवश्यकः चेत् तत्र संपुट-समङ्कः लेख्यः ।

५१२ विषयान्तर-संलेख में जहां आवश्यक हों वहां संपुट-समंक लिखा जाय ।

५१३ पुस्तक-निर्देशि-संलेखेऽपि अतिरिक्त-वाक्यम् ।

५१३ पूर्वोक्तम् अतिरिक्तं वाक्यं पुस्तक-निर्देशि-संलेखे अपि लेख्यम् ।

५२ द्वितीयः प्रकारः
द्वितीय प्रकार

५२ द्वितीय-प्रकारक-पुस्तक-सूचीकरणे प्रस्तुत-धारोपधारा-निर्दिष्ट-विशेषोपहित-प्रथम-प्रकारक-पुस्तक-सूचीकरण-विधिः प्रमाणम् ।

५२ द्वितीय-प्रकारकस्य पुस्तकस्य सूचीकरणे प्रस्तुतायाः धारायाः उपधारासु निर्दिष्टेन विशेषेण उपहितः प्रथम-प्रकारकस्य पुस्तकस्य सूचीकरण-विधिः प्रमाणम् ।

५२ द्वितीय प्रकार की पुस्तक के सूचीकरण में प्रस्तुत धारा की उपधाराओं में निर्दिष्ट व्यवस्था के अतिरिक्त प्रथम प्रकार की पुस्तकों के सूचीकरण की विधि प्रमाण मानी जाय।

५२१ **प्रधान-संलेख-आख्यादि-अनुच्छेदे अतिरिक्तानुच्छेदाः ,**

५२१० **आख्या-पत्रस्थ-अतिरिक्त-विशिष्ट-विवरणोपेत-प्रतिसंपुटम् अनुच्छेदः ।**

५२१ प्रधान-संलेखस्य आख्यादि-अनुच्छेदे अतिरिक्ताः अनुच्छेदाः लेख्याः ।

५२१० यस्य संपुटस्य आख्या-पत्रे अतिरिक्तं विशिष्टं विवरणं भवति तादृशाय प्रत्येकस्मै संपुटाय एकैकः अनुच्छेदः लेख्यः ।

५२१ प्रधान-संलेख के आख्यादि-अनुच्छेद में अतिरिक्त अनुच्छेद लिखे जायं ।

५२१० जिस संपुट के आख्या-पत्र में अतिरिक्त विशिष्ट विवरण हो उस प्रकार के प्रत्येक संपुट के लिए एक एक अनुच्छेद लिखा जाय ।

५२२ **अनुच्छेदे अंशाः नव ।**

५२२० **यथा —**

१ 'संपु' इति, आख्या-पत्र-भाषिक-संपुट-पर्यायो वा ;

२ संपुट-समङ्कः ;

३ पूर्ण-विरामः ।

४ संपुट-विशेष-आख्यादिः ;

५ सति संभवे-संपुट-विशिष्ट-ग्रन्थकार-नाम, ग्रंथकार-द्वय-नामनी वा ;
६ कृतम् इति ;
७ सति संभवे विशिष्ट-सहकार-नाम;
८ पूर्ण-विरामः ;
९ आवश्यकत्वे वृत्तकोष्ठके विशेष-सूचकम् अधिसूचनं ।

५२२ पूर्वोक्त अनुच्छेद में नौ अंश होते हैं ।
५२२० वे अंश निम्नलिखित हैं :—
१ 'संपु.' यह अथवा आख्या-पत्र की भाषा में संपुट का पर्याय;
२ संपुट-समंक;
३ पूर्ण-विराम;
४ संपुट के विशेष आख्यादि;
५ यदि हो तो, संपुट के विशिष्ट ग्रन्थकार का नाम अथवा दो ग्रन्थकारों के नाम;
६ 'कृत' यह पद;
७ यदि हो तो विशिष्ट सहकार का नाम;
८ पूर्ण विराम;
९ यदि आवश्यक हो, तो वृत्त-कोष्ठक में विशेष-सूचक अधिसूचन ।

५२२१ असाधारण-संपुट-अनुच्छेदे संवादि-अंशाः अनुपुस्तकम् ।

५२२१ संपुटानाम् अङ्कनम् असाधारणम् अर्थात् विषमं चेत् संपुट-सम्बद्धानाम् अनुच्छेदानाम् संवादिनः

५२२१ यदि संपुटों का अंकन असामान्य हो, तो संपुट से सम्बद्ध

अनुच्छेदों के संवादी अंश पुस्तक में निर्दिष्ट क्रम को अनुसरण करके लिखे जायें।

५२२२ **एकरूप-विशिष्ट-आख्या-उपेत-संघातीय-एकाधिक-अ-सर्व-संपुटानाम् एकः अनुच्छेदः।**

५२२२० **सकल-संपुट-संकलित-समङ्कः।**

५२२२ अंशाः पुस्तके निर्दिष्टं विवरणम् अनुसृत्य लेख्याः। कस्मिंश्चित् संघाते द्वयोः अधिकानां, न तु सर्वेषां, संपुटानाम् एकरूपा विशिष्टा च आख्या चेत्, तदा तेषां प्रधान-संलेखस्य अतिरिक्ते अनुच्छेदे तादृशानां सर्वेषां संपुटानां कृते एक एव अनुच्छेदः लेख्यः।

५२२२० सकलानां संपुटानां संकलितः समङ्कः 'संपु' इत्यस्मात् परं लेख्यः।

५२२२ यदि किसी संघात में केवल दो से अधिक संपुटों की, सबकी नहीं, एकरूप और विशिष्ट आख्या हो तो उनके प्रधान-संलेख के अतिरिक्त अनुच्छेद में इस प्रकार के सब संपुटों के लिए एक ही अनुच्छेद लिखा जाय।

५२२२० ऐसे सब संपुटों के समंक 'संपु.' इसके आगे लिखे जायँ।

५२३ **विशिष्ट-आख्यादि-अनुच्छेद-संगत-प्रतिविवरणानुरूपं पुस्तक-निर्देशि-संलेखः।**

५२३ प्रधान-संलेखे उल्लिखितानां विभिन्नानां संपुटानां विशिष्टेषु आख्यादि-अनुच्छेदेषु वर्तमानं संगतं प्रत्येकं विवरणम् अनुसृत्य एकैकः पुस्तक-निर्देशि संलेखो लेख्यः।

५२३ प्रधान-संलेख में उल्लिखित विभिन्न संपुटों के विशिष्ट आख्यादि-अनुच्छेदों में वर्तमान प्रत्येक संगत विवरण का एक एक पुस्तक-निर्देशी-संलेख लिखा जाय ।

५३ क्रामक-समङ्कः

क्रामक-समङ्क

५३ **अनेक-संपुटक-पुस्तक-क्रामक-समङ्के सामान्य-वर्ग-समङ्क सकल-संपुट-क्रमागत-पुस्तक-समङ्काः ।**

५३० **प्रकाश्यमान-संपुटक-पुस्तक-समङ्कात् परं रेखिका ।**

५३ अनेक-संपुटक-पृथक्-पुस्तकस्य क्रामक-समङ्के तेषां संपुटानां सामान्यः वर्ग-समङ्कः सकलानां संपुटानां क्रमागताः पुस्तक-समङ्काः च भवन्ति ।

५३० सर्वेषां संपुटानां प्रकाशनं समाप्तं न चेत्, अर्थात् प्रकाशनं प्रचलत् स्यात् तदा अन्तिमात् पुस्तक-समङ्कात् परं रेखिका लेख्या ।

५३ अनेक-संपुटक पृथक् पुस्तक के क्रामक-समंक में उन संपुटों के सामान्य वर्ग-समंक और सब संपुटों के क्रमागत पुस्तक-समंक होते हैं ।

५३० यदि सब संपुटों का प्रकाशन समाप्त न हुआ हो, अर्थात् प्रकाशन प्रचलित हो, तो सबसे अन्तिम पुस्तक-समंक से आगे रेखिका लिखी जाय ।

५३२ **कतिपय-संपुट-मात्र-विषयान्तरत्वे-तत्संपुट-मात्र-पुस्तक-समङ्कः ।**

५३२ संघातस्य सर्वेषामेव संपुटानां विषयान्तरत्वं न चेत्, अपितु कतिपयानामेव संपुटानां चेत्, तदा तेषां संपुटानां संवादि-विषयान्तर-संलेखेषु विषयान्तर-संपुट-मात्रस्य पुस्तक-समङ्कः लेख्यः ।

५३२ **यदि संघात के सभी संपुट विषयान्तर-युक्त न हों, बल्कि ऐसे संपुट कुछ ही हों, तो उन संपुटों के संवादी विषयान्तर-संलेखों में केवल विषयान्तर-संपुट का पुस्तक-समंक लिखा जाय ।**

५३७ कक्षा-चिह्नं यथाप्राप्त-संपुट-पुस्तक-समङ्के ।

५३७ संघातस्य कतिपयानामेव, न तु सर्वेषां, संपुटानाम् अल्पाकारत्वं, महाकारत्वं, सुरक्षणीयत्वं वा चेत् तदा अधोरेखाङ्कनम्, उपरिरेखाङ्कनम् , उभयतो रेखाङ्कनं वा संवादिनः संपुटस्य एव पुस्तक-समङ्के कार्यम् ।

५३७ **यदि संघात के सभी नहीं, अपितु कुछ ही संपुट अल्पाकार, महाकार, अथवा सुरक्षणीय हों, तो अधो-रेखांकन, उपरि-रेखांकन और उभयतो-रेखांकन उन्हीं संपुटों के ही पुस्तक-समंकों में किए जायं ।**

५३७ **उदाहरण**

१. ढ १५७ : ३ ढ ६१ शं १५२ छ ८.१–.८

ठाकुर (रवीन्द्रनाथ).

रवीन्द्र साहित्य, धन्यकुमार जैन भाषा. ८ संपु.

५१२९५-५१३०२

२. ल २ : २५ शं ढ ६९ वं छ ८.१-.२, .४, .१०-.११—

त्रिपाठी (कमलापति) इदि. संपा.

गान्धी जी. संपु. १-२, ४, १०-११–.

संपु. १-२. श्रद्धांजलियां

संपु. ४. कवियों की श्रद्धांजलियाँ.

संपु. १०-११. अहिंसा.

(गान्धी जी, १-२, ४, १०-११).

५५१६६-५५१७०

प्रस्तुत उदाहरण के संपुटों का प्रकाशन अब भी चालू है। अतः अन्तिम पुस्तक-समङ्क के आगे रेखिका दी गई है। यहाँ आख्यादि अनुच्छेद में लिखा हुआ संवादी भाग पेन्सिल से लिखा जाय।

यह स्पष्ट ही है कि प्रत्येक संपुट का प्रतिपाद्य-विषयक विस्तृत विवरण पाठकों को अवश्य ही लाभ पहुंचायगा।

---

३. द १५ : १ इ २ १५२ छ ८.१-.१०

हिन्दी. प्रथम पद.

हिन्दी महाभारत. १० संपु.

संपु. १. आदिपर्व. पृ. १-५१०.

संपु. २. सभापर्व-वनपर्व. पृ.५११-९९८.

संपु. ३. वनपर्व-उद्योगपर्व. पृ. ९९९-१५१०.

संपु. ४. उद्योगपर्व-भीष्मपर्व. पृ. १५११-२०१४.

संपु. ५. भीष्मपर्व-द्रोणपर्व. पृ. २०१५-२५०८.

संपु. ६. द्रोणपर्व-कर्णपर्व. पृ. २५०८-३००६.

संपु. ७. शल्यपर्व-शान्तिपर्व. पृ. ३००७-३६०४

संपु. ८. शान्तिपर्व-अनुशासनपर्व. पृ. ३६०५-४०९२

संपु. ९. अनुशासनपर्व-स्वर्गारोहणपर्व. पृ. ४०९३-४४८०

संपु. १०. परिशिष्टांक : हिन्दी महाभारत की अनुक्रमणिका. (इस संपुट के लल्ली प्रसाद पाण्डेय संपादक हैं).

५२६०१-५२६१०

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि दशम संपुट के आख्या-पत्र पर संपादक का नाम दिया हुआ है। इसका सूचन संलेख में यथोचित अधिसूचन द्वारा कर दिया गया है। लल्ली प्रसाद पांडेय इस शीर्षक से एक संपादक-निर्देशी-संलेख लिखना पड़ेगा।

अध्याय ६

६ संगत-पुस्तकम्

६ संगत पुस्तक

६१ सुसंगत-पुस्तकम्

६१ सुसंगत पुस्तक

६१ सुसङ्गत-पुस्तक-सूचीकरणे प्रस्तुत-धारोपधारा-निर्दिष्ट-विशेषोपहित-पृथक्-पुस्तक-सूचीकरण-विधिः प्रमाणम् ।

६१० अंशकार-नाम प्रधान-संलेखे उपेक्षितव्यम् ।

६१०१ न निर्देशि-संलेखे ।

६१ सुसंगत-पुस्तकस्य सूचीकरणे प्रस्तुतायाः धारायाः उपधारासु निर्दिष्टेन विशेषेण उपहितः पृथक्-पुस्तकस्य सूचीकरण-विधिः प्रमाणत्वेन स्वीकार्यः ।

६१० अवयव-आत्मक-अंशानाम् अंशकारस्य नाम प्रधान संलेखस्य शीर्षके न लेख्यम् ।

६१०१ परं ६१३ धारायां तस्याः उपधारासु च निर्दिष्टं विधिमनुसृत्य लेख्यानां निर्देशि-संलेखानां विषये अंशकार-नाम न उपेक्षितव्यम् ।

६१ सुसंगत-पुस्तक के सूचीकरण में प्रस्तुत धारा की उपधाराओं में निर्दिष्ट व्यवस्था के अतिरिक्त पृथक्-पुस्तक के सूचीकरण की विधि प्रमाण मानी जाय ।

६१०　**अवयव-आत्मक अंशों के अंशकारों के नाम प्रधान-संलेख में न लिखे जायँ ।**

६१०१　**किन्तु ६१३ धारा में तथा उसकी उपधाराओं में निर्दिष्ट विधि का अनुसरण करके लिखे जाने वाले निर्देशी-संलेखों में अंशकार के नाम की उपेक्षा न की जाय ।**

६१०१　उदाहरण

१. जिस पुस्तक का आवरण-पृष्ठ, उपाख्या-पत्र तथा आख्या-पत्र निम्न-लिखित है—

"पुस्तकालय। लेखक। रंगनाथन। राहुल सांकृत्यायन। आनन्द कौसल्यायन। रामवृक्ष बेनीपुरी। जगन्नाथ मिश्र। बी. एन्. बनर्जी। ए. के. ओहदेदार, मुरारिलाल नागर। राय मथुराप्रसाद। राजाराम शास्त्री।

"बिहार-पुस्तकालय संघ के तत्त्वावधान में :—। पुस्तकालय। संपादक। राय मथुराप्रसाद। रामदयाल पांडेय। भोलानाथ "विमल"

[प्रस्तुत पुस्तक में १७ विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित २० निबन्ध हैं।]

उसका प्रधान-संलेख निम्नलिखित होगा:—

---

२ हं　७ छ ७

राय मथुराप्रसाद इदि. संपा.

पुस्तकालय.

४६४११

२.　ल २ : २५ शं ढ ६९ : ९O श ढ २४ हं ७　　छ ८

गांधीवाद. प्रथमपद.

गांधीवाद, समाजवाद : एक तुलनात्मक अध्ययन.

५९९१२

यहां आख्या-पत्र पर सामान्य मुद्रांकन के अतिरिक्त और कोई सूचना नहीं है।

३.　म ४ छ २ : थ २१ झं　　छ ५

राजाराम शास्त्री इदि. संपा.

काशी विद्यापीठ, रजतजयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ.

५७०७६

---

६१२ **प्रत्यंशं विषयान्तर-संलेखः ।**

६१२ प्रत्येकेन अंशेन अपेक्षिताः सर्वेऽपि विषयान्तर-संलेखाः लेख्याः, अर्थात् प्रत्येकः अंशलेखः पृथक् स्वतन्त्रतया च विषयान्तर-संलेखस्य पात्रं भवति ।

६१२ **प्रत्येक अंश के लिए आवश्यक सभी विषयान्तर-संलेख लिखे जायं, अर्थात् प्रत्येक अंश-लेख पृथक् और स्वतन्त्र रूप से विषयान्तर-संलेख का अधिकारी होता है ।**

६१२ उदाहरणः—

अंशकार-निर्देशी-संलेख का केवल एक उदाहरण दिया जाता है:—

रंगनाथन (श्री. रा.).
ग्रंथालय संचालन.
निर्दिश्यमान का अवयव

राय मथुराप्रसाद, इदि. संपा. : पुस्तकालय. २ हं ७   छ ७

---

६१३ **प्रत्यंशं निर्देशि-संलेखः च ।**

६१३१ **ज्ञान-कोश-स्मारक-पुस्तकयोः न ।**

६१३ प्रत्येकेन अंशेन अपेक्षिताः सर्वेऽपि निर्देश-संलेखाः लेख्याः, अर्थात् प्रत्येकः अंशलेखः पृथक् स्वतन्त्रतया च निर्देशि-संलेखस्य पात्रं भवति ।

६१३१ ज्ञान-कोशस्य स्मारक-पुस्तकस्य च विषये तु निर्देशि-संलेखो न लेख्यः ।

६१३ **प्रत्येक अंश के लिए आवश्यक सभी निर्देशी-संलेख लिखे जायं, अर्थात् प्रत्येक अंश-लेख पृथक् और स्वतन्त्र रूप से निर्देशी-संलेख का अधिकारी होता है ।**

६१३१ ज्ञान-कोश तथा स्मारक-पुस्तक के विषय में निर्देशी-संलेख न लिखा जाय ।

६१३२ अंश-निर्देशि-संलेखे अनुच्छेदाः चत्वारः ।

६१३२० यथा —

१ शीर्षकम् (अग्रानुच्छेदः)

२ अन्तरीणम् ;

३ "निर्दिश्यमानस्य अवयवः", इति देशक-पदे ;

४ पुस्तक-शीर्षकम् ;

४१ व्यष्टि-नामान्त्य-पदेनालम् ;

४२ पूर्णविरामः ;

४३ लघु-आख्या ;

४४ पूर्ण-विरामः ;

४५ क्रामक-समङ्कः च ।

६१३२०१ अयम् अंश-लेख-निर्देशि-संलेखः ।

६१३२ सुसंगत-पुस्तकस्य अंशलेखीये पुस्तक-निर्देशि-संलेखे चत्वारः अनुच्छेदाः यथाक्रमं भवन्ति ।

६१३२० ते अनुच्छेदाः यथाक्रमं निम्ननिर्दिष्टाः भवन्ति—

१ शीर्षकम् (अग्रानुच्छेदः);

२ अन्तरीणम्;

३ 'निर्दिश्यमानस्य अवयवः', इति देशक-पदे;

४ पुस्तक शीर्षकम्;

४१ व्यष्टि-नाम्नि सति तस्य नामान्त्य-पदेन अलम्;

४२ पूर्णविरामः ;

४३ पुस्तकस्य लघुः आख्या;
४४ पूर्ण-विरामः ;
४५ पुस्तकस्य क्रामक-समङ्कः च ।

६१३२०१ अयं पूर्वोक्तः सुसंगत-पुस्तकीयस्य अंशलेखस्य निर्देशि संलेखः 'अंश-लेख-निर्देशि-संलेखः' इति उच्यते ।

६१३२ **सुसंगत-पुस्तक के अंश-लेख-सम्बन्धी पुस्तक-निर्देशी-संलेख में चार अनुच्छेद होते हैं ।**

६१३२० **वे अनुच्छेद निम्नलिखित हैं :—**

१ शीर्षक (अग्रानुच्छेद);
२ अन्तरीण;
३ "निर्दिश्यमान का अवयव", ये देशक-पद;
४ पुस्तक का शीर्षक;
४१ व्यष्टि-नाम होने पर उसका नामान्त्य-पद पर्याप्त माना जाय;
४२ द्विबिन्दु;
४३ पुस्तक की लघु-आख्या;
४४ पूर्ण-विराम; और
४५ पुस्तक का क्रामक-समंक ।

६१३२०१ **यह पूर्वोक्त सुसंगत-पुस्तक-सम्बन्धी अंश-लेख का निर्देशी-संलेख 'अंश-लेख-निर्देशी-संलेख' कहा जाता है ।**

६१३२१ शीर्षकम् अंशलेखीयम् ।

६१३२१०१ ३२१ धारोपधारा-यथा-निर्देशम् ।

६१३२१ अंशलेखस्य शीर्षकम् एव अंश-लेख-निर्देशि-संलेखस्य शीर्षकम् इति स्वीकार्यम् ।

६१३२१०१ तत् शीर्षकम् ३२१ धारां तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम् ।

६१३२१ अंश-लेख के शीर्षक को ही अंश-लेख-निर्देशी-संलेख के शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जाय ।

६१३२१०१ वह शीर्षक ३२१ धारा और उसकी उपधारा का अनुसरण करके लिखा जाय ।

६१३२२ अन्तरीण-उपकल्पने ३२२ धारोपधाराः प्रमाणम् ।

६१३२२ अंशलेख-निर्देशि-संलेखस्य अन्तरीणं ३२२ धारां तदीयाम् उपधारां च अनुसृत्य लेख्यम् ।

६१३२२ अंश-लेख-निर्देशी-संलेख का अन्तरीण ३२२ धारा और उसकी उपधाराओं का अनुसरण करके लिखा जाय ।

६१३२४१ पुस्तक-शीर्षकं प्रधान-संलेखीयम् ।

६१३२४१० निम्नोक्तस्तु विशेषः ।

६१३२४११ यथा —

१ व्यष्टि-नामान्त्य-पदेनालम् ;

२ एकाधिक-वाक्ये एकम् ;

३ आख्या-प्रथम-पद-शीर्षके न तत् ;

४ नापि च पूर्णविरामः ;

६१३२४१ सुसंगत-पुस्तकस्य अंश-लेखीये अंश-लेख-निर्देशि-संलेखे अन्तरीण-भागे लेख्यं शीर्षकं तस्य पुस्तकस्य प्रधान-संलेखे यत् स्यात् तदेव लेख्यम् ।

६१३२४१० पूर्वोक्तस्य शीर्षकस्य उपकल्पने निम्नोक्तः विशेषः स्वीकार्यः ।

६१३२४११ अयं विशेषः ।

१ व्यष्टि-नाम्नि शीर्षके सति तस्य नामान्त्य-पदेन अलम्;
२ शीर्षके एकस्मात् अधिकं वाक्यं चेत्, पूर्ण-विराम-स्थाने अल्प-विरामं कृत्वा एकं वाक्यं कार्यम्;
३ आख्यायाः प्रथमं पदं शीर्षकं चेत् तत् न लेख्यम्;
४ आख्यायाः प्रथमं पदं शीर्षकं चेत् पूर्णविरामः अपि न लेख्यः ।

६१३२४१ **सुसंगत-पुस्तक के अंश-लेख-निर्देशी-संलेख के अन्तरीण भाग में लिखा जाने वाला शीर्षक वही हो जो कि उस पुस्तक के प्रधान-संलेख का है ।**

६१३२४१० **पूर्वोक्त शीर्षक के उपकल्पन म नीचे कहा हुआ विशेष स्वीकार किया जाय ।**

६१३२४११ **विशेष यह है :—**

१ यदि व्यष्टि-नाम शीर्षक हो तो उसका नामान्त्य-पद पर्याप्त माना जाय ।
२ यदि एक से अधिक वाक्य हों, तो पूर्ण विराम के स्थान में अल्प-विराम करके एक वाक्य कर लिया जाय;
३ यदि आख्या का प्रथम-पद शीर्षक हो, तो वह न लिखा जाय;
और
४ द्विबिन्दु भी न लिखा जाय ।

६१३२४५ पुस्तक-क्रामक-समङ्कः निर्देशि-समङ्कः ।

६१३२४५ सुसङ्गत-पुस्तकस्य क्रामक-समङ्कः एव तस्य पुस्तकस्य अंश-लेख-निर्देशि-संलेखस्य निर्देशि-समङ्कः इति स्वीकार्यः ।

६१३२४५ **सुसंगत-पुस्तक का क्रामक-समंक ही उस पुस्तक के अंश-लेख-निर्देशी-संलेख का निर्देशी-समंक स्वीकार किया जाय ।**

६१३२४५ इस प्रकार के संलेख को ग्रंथकार-विश्लेषक कहा जाता है। उनकी आवश्यकता को सिद्ध करने वाली संगत-पुस्तकों का प्रचार अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार के संलेख पाठकों को तथा अनुलय-कर्तृगण को पर्याप्त सहायता पहुंचाते हैं। किंतु वे ग्रंथालय-शासन के सूत्रों के ही बीच आपसी गृह-कलह उत्पन्न करते हैं। उस लड़ाई का कराने वाला होता है लाघव-न्याय। लड़ाई का निपटारा समझौते में जाकर होता है। वह समझौता यही है कि जो पुस्तकें प्रकाशित ग्रंथ-सूचियों में विश्लेषित की जा चुकी हों, उनके लिए इस प्रकार के संलेख न लिखे जायँ।"[30]

६२१ विसङ्गत-पुस्तकम्

विसङ्गत पुस्तक

६२१ विसङ्गत-पुस्तक-प्रधान-संलेखः प्रथम-अवयव-कृतेरिव।

६२१० प्रत्यनन्तर-कृति अतिरिक्तानुच्छेदाः।

६२१०० तृतीय-चतुर्थ-अनुच्छेदात् परम् अन्तर्निविष्टाः।

६२१०१ अग्रानुच्छेद-क्रामक-समङ्कात् परं "सङ्गत-पुस्तकम्" इति वर्णकम्।

६२१ विसङ्गत-पुस्तकस्य प्रधानः संलेखः तथा लेख्यः यथा सः प्रथमायाः अवयव-रूपायाः कृतेः इव स्यात्।

६२१० विसङ्गत-पुस्तकस्य प्रधान-संलेखे प्रत्येकस्यै अनन्तरायै कृतये अतिरिक्तः अनुच्छेदः लेख्यः।

६२१०० ते अतिरिक्तानुच्छेदाः तृतीयात् आख्यादि-अनुच्छेदात् चतुर्थात् अधिसूचन-अनुच्छेदात् वा परम्,

---

३० रंगनाथन (श्री. रा.): ग्रंथालय सूची-सिद्धांत. १९३८. (मद्रास ग्रंथालय संघ, प्रकाशन माला, ७) अध्याय ३१.

पंचमात् परिग्रहण-समङ्कात्मक-अनुच्छेदात् च पूर्वम् अन्तर्निवेश्याः ।

६२१ विसंगत-पुस्तक का प्रधान-संलेख इस प्रकार लिखा जाय मानों वह प्रथम अवयवरूप कृति के लिए हो ।

६२१० विसंगत-पुस्तक के प्रधान-संलेख में प्रत्येक अनन्तर कृति के लिए अतिरिक्त अनुच्छेद लिखा जाय ।

६२१०० वे अतिरिक्त अनुच्छेद, तृतीय आख्यादि-अनुच्छेद से अथवा चतुर्थ अधिसूचन-अनुच्छेद से आगे तथा पंचम परिग्रहण समाँकात्मक अनुच्छेद से पूर्व अर्थात् उन दोनों के बीच लिखे जायं ।

६२१०१ अग्रानुच्छेद के क्रामक-समंक से आगे "संगत-पुस्तक" यह वर्णक लगाया जाय ।

६२१२ द्वितीय-अवयव-कृति-अनुच्छेदे अंशाः सप्त ।

६२१२० यथा —

१ "२"इत्यङ्कः ;

२ शीर्षकोचित-पदानि ;

३ पूर्णविराम :

४ आख्यादि : ;

५ पूर्ण-विरामः ;

६ ६२१४ धारोपहितम् अधिसूचनम्;

७ अनुच्छेदान्त्य-रेखा-दक्षिणान्ते क्रामक-समङ्कः; च ।

६२१२१ १ धारोपधारानुसारम् ।

६२१२ द्वितीयायाः अवयवात्मिकायाः कृतेः कृते लिख्य-मानस्य लेखस्य अनुच्छेदे यथाक्रमं सप्त अंशाः भवन्ति ।

६२१२१ अनुच्छेदस्य विभिन्नानाम् अंशानाम् उपकल्पने प्रथमा धारा तदीयाः उपधाराः च अनुसर्तव्याः ।

६२१२ द्वितीय अवयवरूप कृति के लिए लिखे जाने वाले लेख के अनुच्छेद में क्रमशः सात अंश होते हैं :—

६२१२० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ "२" यह अंक;
२ शीर्षक के लिए उचित पद;
३ द्विबिन्दु;
४ आख्यादि;
५ पूर्ण-विराम;
६ ६२१४ धारा के अपवाद से युक्त अधिसूचन, यदि आवश्यक हो; तथा
७ क्रामक-समंक, जो अनुच्छेद के अन्त की रेखा के दाहिनी ओर अन्त में लिखा जाय ।

६२१२१ अनुच्छेद के विभिन्न अंशों के उपकल्पन में प्रथम धारा और उसकी उपधाराएं अनुसरण की जानी चाहिएं ।

६२१३ तृतीयाद्यवयव-कृति-संलेखानुच्छेदः द्वितीयवत्

६२१३० युक्तानुक्रम-समङ्कः ।

६२१३ तृतीयस्याः तदुत्तरायाः च अवयवात्मिकायाः कृतेः संलेखानुच्छेदः द्वितीयावयव-कृति-सदृश एव लेख्यः ।

६२१३० तृतीयस्याः तदुत्तरायाः च अवयवात्मिकायाः कृतेः संलेखानुच्छेदे द्वितीय-अवयव-कृति-विषयकस्य "२" इत्यङ्कस्य स्थाने यथोचितः क्रम-समङ्कः लेख्यः ।

६२१३ तृतीय और तदुत्तर अवयवरूप कृति का संलेखानुच्छेद द्वितीय अवयवकृति के सदृश ही लिखा जाय ।

६२१३० तृतीय तथा उसके अनन्तर की अवयवात्मक कृति के संलेखानुच्छेद में द्वितीय-अवयव-कृति सम्बन्धी "२" इस अंक के स्थान में यथोचित क्रम-समंक लिखा जाय।

६२१४ एक-मालान्तर्वर्ति-सकलावयव-कृतीनाम् एकं माला-अधिसूचनम् ।

६२१४१ सर्वानुक्रम-समङ्काः यथाक्रमम् ।

६२१४ सकलाः अपि अवयवात्मिकाः कृतयः एकस्याम् एव मालायां प्रकाशिताः स्युः चेत्, प्रत्यवयव-कृति-अनुच्छेदं पृथक्पृथक् माला-अधिसूचनानि न लेख्यानि अपितु सर्वासाम् कृतीनाम् अन्त्यानुच्छेतात्मकम् एकमेव माला-अधिसूचनं लेख्यम् ।

६२१४१ माला-अधिसूचन-अनुच्छेदस्य अनुक्रम-समङ्कात्मके भागे सर्वे अपि अनुक्रम-समङ्काः यथाक्रमं लेख्याः ।

६२१४ **यदि सभी अवयवरूप कृति एक ही माला में प्रकाशित हों, तब प्रत्येक अवयव-कृति-अनुच्छेद के लिए पृथक्-पृथक् माला-अधिसूचन न लिखा जाय, अपितु सभी कृतियों के अन्त्यानुच्छेद के रूप में एक ही माला-अधिसूचन लिखा जाय।**

६२१४१ **माला-अधिसूचन-अनुच्छेद के अनुक्रम-समंकात्मक भाग में सभी अनुक्रम-समंक यथाक्रम लिखे जायं।**

६२१४१ **उदाहरण**

प २ : ४१९६ शं १ च ७ संगत पुस्तक

अनन्तदेव.

भक्तिनिर्णय, अनन्त शास्त्री फड़के संपा.

२. आश्रमस्वामी : नाममाहात्म्य अनन्त शास्त्री फडके संपा.

प २ : ४१४६ शं १ च ७

(प्रिंसेस ऑफ वेल्स, सरस्वती भवन ग्रंथमाला, मंगल देव शास्त्री संपा. ७२ अ, ब).

६०६०

---

६२२ विसङ्गत-पुस्तक-विषयान्तर-संलेखो द्विधा।

६२२० यथा :—

१ विशिष्टः ;

२ साधारणश्च ।

६२२ विसंगत-पुस्तक के अन्तर्विषयि-संलेख दो प्रकार के हैं।

६२२० वे दो प्रकार निम्नलिखित हैं :—

१ विशिष्ट; और

२ साधारण ।

६२२१ प्रथमेतर-प्रत्यवयव-कृति-क्रामक-समङ्कस्य विशिष्ट-विषयान्तर-संलेखः।

६२२११ विशिष्ट-विषयान्तर-संलेखे अनुच्छेदाः षट् ।

६२२११० यथा —

१ विषयान्तर-अवयव-कृति-क्रामक-समङ्कः (अग्रानुच्छेदः) ;

२ शीर्षकम् ;

३ आख्या ;

४ निर्दिश्यमानस्य भागः २ इत्यनुसंपुटितम् निर्दिश्यमानस्य भागः २ इत्यनुमुद्रितम्-प्रभृति-वर्णक-पदानि;

५ प्रधान-संलेख-अग्रानुच्छेद-क्रामक-समङ्कः ;

६ २ धारामनुशीर्षकम् ;
६१ लघु-आख्या ;
६२ पूर्ण-विरामः च ।

६२२१ प्रथमायाः कृतेः इतरस्याः प्रत्येकस्याः कृतेः क्रामक-समङ्कस्य एकैकः विशिष्ट-विषयान्तर-संलेखो लेख्यः

६२२११ विशिष्ट-विषयान्तर-संलेखे यथाक्रमं षट् अनुच्छेदाः भवन्ति ।

६२२११० ते षट् अनुच्छेदाः निम्ननिर्दिष्टाः भवन्ति ।

१ विषयान्तर-रूपायाः अवयवात्मिकायाः कृतेः क्रामक-समङ्कः (अग्रानुच्छेदः) प्रथमः अनुच्छेदः भवति;
२ तस्याः शीर्षकं द्वितीयः अनुच्छेदः भवति;
३ तस्याः आख्या तृतीयः अनुच्छेदः भवति;
४ 'निर्दिश्यमानस्य भागः २ इत्यनुसंपुटितम्' 'निर्दिश्यमानस्य भागः २ इत्यनुमुद्रितम्, प्रभृतानि वर्णकानि यथोचितानि पदानि चतुर्थः अनुच्छेदः भवति;
५ प्रधान-संलेखीयस्य अग्रानुच्छेदस्य क्रामक-समङ्कः पंचमः अनुच्छेदः भवति;
६ २ धाराम् अनुसृत्य लेख्यं प्रधान-संलेखस्य शीर्षकं;
६१ प्रथमावयव कृतेः लघु-आख्या;
६२ पूर्ण विरामः च षष्ठः अनुच्छेदः भवति ।

६२२१ प्रथम कृति से अन्य प्रत्येक कृति के क्रामक-समंक के लिए एक-एक विशिष्ट विषयान्तर-संलेख लिखा जाय ।

६२२११ विशिष्ट-विषयान्तर संलेख में क्रमशः छः अनुच्छेद होते हैं।

६२२११० वे अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—

१ विषयान्तर-रूप अवयवात्मक कृति का क्रामक-समंक (अग्रानुच्छेद) प्रथम अनुच्छेद होता है ;

२ उसका शीर्षक द्वितीय अनुच्छेद होता है;

३ उसकी आख्या तृतीय अनुच्छेद होता है;

४ 'निर्दिश्यमान के भाग २ रूप में अनुसंपुटित' 'निर्दिश्यमान के भाग २ रूप में अनुमुद्रित'––आदि वर्णक यथोचित पद चतुर्थ अनुच्छेद होता है ;

५ प्रधान-संलेख के अग्रानुच्छेद का क्रामक-समंक पंचम अनुच्छेद होता है;

६ २ धारा का अनुसरण करके लिखा हुआ प्रधान संलेख का शीर्षक;

६१ प्रथम अवयव-कृति की लघु-आख्या; तथा

६२ पूर्ण-विराम छठा अनुच्छेद होता है।

६२२११० उदाहरण

प २ : ४१४६ शं १ च ७
आश्रमस्वामी.
नाममाहात्म्य.
निर्दिश्यमान के भाग २ रूप में अनुमुद्रित

प २ : ४१९६ शं १ च ७
अनन्तदेव : भक्तिनिर्णय.

प्रधान-संलेख के लिए धारा ६२१४१ के अन्तर्गत उदाहरण द्रष्टव्य है।

६२२२ प्रति-अवयव-कृति-प्रति-विषयान्तरं साधारण-विषयान्तर-संलेखः।

६२२२१ साधारण-विषयान्तर-संलेख-लेखने प्रस्तुत-धारोपधारा-निर्दिष्ट विशेषोपहिता २ धारा प्रमाणम्।

६२२२११ यथा –

१ क्रामक-समंक-शीर्षक-आख्याः प्रथमावयव-कृतिकाः;

२ अनुसन्धेय-भागोऽपि

३ क्रामक-समंकात् परं 'सङ्गत-पुस्तकम्' इति ।

६२२२ प्रत्येकस्याः अवयवात्मिकायाः कृतेः प्रत्येकम् अपेक्षितं विषयान्तरम् अधिकृत्य एकैकः विषयान्तर-संलेखो लेख्यः ।

६२२२१ साधारणस्य विषयान्तर-संलेखस्य लेखने प्रस्तुतायाः धारायाः उपधारायां निर्दिष्टेन विशेषेण उपहिता २ धारा प्रमाणत्वेन स्वीकार्या ।

६२२२११ सः विशेषः अयं भवति—

१ क्रामक-समङ्कः, शीर्षकम्, आख्या च प्रथमायाः अवयवात्मिकायाः कृतेः एव स्वीकार्यम् ;

२ न केवलम् अनुसन्धेय-पृष्ठानाम्, अपितु अनुसन्धेयस्य भागस्य, तदीयानां पृष्ठानां च उल्लेखः कार्यः;

३ क्रामक-समङ्कात् परम् 'सङ्गत-पुस्तकम्' इति वर्णकं पदं लेख्यम् ।

६२२२ प्रत्येक अवयवात्मक कृति के प्रत्येक अपेक्षित विषयान्तर के लिए एक-एक विषयान्तर-संलेख लिखा जाय ।

६२२२१ साधारण, विषयान्तर-संलेख के लेखन के लिए प्रस्तुत धारा की उपधारा में निर्दिष्ट अतिरिक्त व्यवस्था से युक्त २ धारा प्रमाण मानी जाय ।

६२२२११ वह विशेष यह है ।

१ क्रामक-समंक, शीर्षक, और आख्या, प्रथम अवयवात्मक कृति के ही स्वीकार किए जायं;

२ न केवल अनुसन्धेय पृष्ठों का, अपितु अनुसन्धेय भाग का और उनके पृष्ठों का उल्लेख किया जाय;

३ क्रामक-समंक से आगे 'संगत-पुस्तक' यह वर्णक-पद लिखा जाय।

६२३ ३ धारोपधाराः अनु प्रत्यवयवकृति निर्देशि-संलेखाः।

६२३२ पुस्तक-निर्देशि-संलेखे तु विशेषः।

६२३२१ अतिरिक्तानुच्छेदौ।

६२३२१० यथा —

१ ६२२११० धारा-निर्दिष्ट-वर्णक-पदानि;

२ प्रथमावयव-कृति-निर्देश-समंकः च;

६२३ प्रत्येकाम् अवयवात्मिकां कृतिम् अधिकृत्य सर्वेऽपि यथोचिताः संलेखाः ३ धारां तदीयाः उपधाराश्च अनुसृत्य लेख्याः।

६२३२१ पुस्तक-निर्देशि-संलेखे द्वितीयानुच्छेदात् परम् अतिरिक्तौ द्वौ अनुच्छेदौ लेख्यौ।

६२३ प्रत्येक अवयवरूप कृति के लिए सभी यथोचित संलेख ३ धारा तथा उसकी उपधारा का अनुसरण करके लिखे जायं।

६२३२ पुस्तक-निर्देशि-संलेख में तो विशेष होता है।

६२३२१ पुस्तक-निर्देशि-संलेख में द्वितीय अनुच्छेद से आगे दो अतिरिक्त अनुच्छेद लिखे जायं।

६२३२१० वे दो अतिरिक्त अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—

१ ६२२११० धारा में निर्दिष्ट वर्णक पद; और

२ प्रथम अवयवात्मक कृति का निर्देशि-समंक।

६२३२१० उदाहरण

आश्रमस्वामी.

नाममाहात्म्य.

निर्दिश्यमान के भाग २ रूप में अनुमुद्रित

प २:४१९६ शं १ च७

प्रधान-संलेख के लिए धारा ६२१४१ के अन्तर्गत उदाहरण द्रष्टव्य है।

६२४ प्रत्यवयव-कृति नामान्तर-निर्देशि-संलेखाः।
६२४० ४ धारोपधाराः अनु।

६२४ प्रत्येकाम् अवयवात्मिकां कृतिम् अधिकृत्य सर्वेऽपि यथोचिताः नामान्तर-निर्देशि-संलेखाः लेख्याः।

६२४० नामान्तर-निर्देशि-संलेखानां लेखने ४ धारा तदुपधाराश्च अनुसर्तव्याः।

६२४ प्रत्येक अवयव रूप कृति के लिए सभी यथोचित नामान्तर-निर्देशी-संलेख लिखे जायं।

६२४० नामान्तर-निर्देशी-संलेखों के लिखने में ४ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुसरण करना चाहिए।

अध्याय ७

सामयिक-प्रकाशनम्

सामयिक-प्रकाशन

७१ सरलः प्रकारः

सरल प्रकार

"सामयिक-प्रकाशन", "समुच्चित" तथा "आवर्तित" इन पदों के लक्षण अध्याय ०८ में दिए जा चुके हैं। सामयिक-प्रकाशनों की अव्यवस्थाएं इतनी अधिक हैं कि उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनमें बहुत शीघ्र परिवर्तन आते रहते हैं। कभी उनका प्रकाशक बदला, तो कभी उनका नाम। कभी उनकी सामयिकता में परिवर्त्तन आया, तो कभी उनके आकार तथा पृष्ठों के क्रम में। कभी वे बन्द हो कर पुनः चालू हो जाते हैं, तो कभी सदैव के लिए बन्द हो जाते हैं। सुविधा के लिए प्रकृत अध्याय में सामयिक-प्रकाशन के सरल प्रकार की ही चर्चा की गई है। यहां 'सरल' से तात्पर्य उन प्रकाशनों से है जो किसी प्रकार की अव्यवस्था उपस्थित न करते हों। अगले अध्याय में उस विशिष्ट व्यवस्था की चर्चा की जायेगी जो जटिल प्रकार के सामयिक प्रकाशनों के लिए अपेक्षित है। यहां 'जटिल' से तात्पर्य उन प्रकाशनों से है जो विभिन्न प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न करते हों।

प्रधान-संलेखः

प्रधान संलेख

७१ सरल-सामयिक-प्रधान-संलेखे अनुच्छेदाः चत्वारः।

७१० यथा —

१ वर्ग-समंकः (अग्रानुच्छेदः) ;

२ आख्यादिः ;

३ माला-अधिसूचनं ;

४ संपुट-अवधि-अधिसूचनं च ।

७१ सरल-सामयिकस्य प्रधान-संलेखे यथाक्रमं चत्वारः अनुच्छेदाः भवन्ति ।

७१० ते अनुच्छेदाः निम्नोक्ताः भवन्ति—

१ वर्ग-समङ्कः (अग्रानुच्छेदः) प्रथमः अनुच्छेदः भवति;

२ आख्या तदुपगतम् अन्यत् च द्वितीयः अनुच्छेदः भवति;

३ माला-अधिसूचनं, यदि चेत्, तृतीयः अनुच्छेदः भवति;

४ संपुट-अवधि-अधिसूचनं चतुर्थः अनुच्छेदः भवति ।

७१ **सरल सामयिक के प्रधान संलेख में क्रमशः चार अनुच्छेद होते हैं।**

७१० **वे अनुच्छेद निम्नलिखित हैं :—**

१ वर्ग-समंक (अग्रानुच्छेद) प्रथम अनुच्छेद होता है;

२ आख्या तथा उसके साथ आने वाली अन्य वस्तुएं द्वितीय अनुच्छेद होता है;

३ माला-अधिसूचन, यदि हो, तो तृतीय अनुच्छेद होता है ।

४ संपुट-अवधि-अधिसूचन चतुर्थ अनुच्छद होता है ।

७११ **वर्ग-समंकः आख्या-पत्र-पृष्ठात् ।**

७११ वर्ग-समङ्कः आख्या-पत्रस्य पृष्ठात् ग्राह्यः ।

७११ **वर्ग-समंक आख्या-पत्र के पृष्ठ भाग से लिया जाय ।**

७११ पुस्तक के प्रधान-संलेख के अग्रानुच्छेद में क्रामक-समंक दिया जाता है। यह धारा ११ से स्पष्ट है। किन्तु सामयिक प्रकाशन के प्रधान-संलेख के अग्रानुच्छेद में केवल वर्ग-समंक ही दिया जाता है। इसका कारण यह है कि सामयिक प्रकाशन का प्रधान-पत्रक किसी एक संपुट मात्र के लिए नहीं होता, प्रत्युत उस सामयिक प्रकाशन के समस्त संपुटों के लिए होता है। देखिए धारा ७१२।

७१२ आख्यादि-अनुच्छेदे अंशाः षट्।

७१२० यथा —

१ उपपद-मानपद-इतर-विशिष्ट-लिपि-प्रथम-पद-पुरःसरम् आख्या-प्रतिलिपिः ;

२ आख्या-नान्तर्गत-समष्टि-ग्रन्थकार-प्रवर्तक-समष्टि-अन्यतर-सत्वे वृत्तकोष्ठके पृथग्-वाक्यतया तन्नाम, नाम्नोरुभयम्-नाम्नां प्रथमम्; इदि इति परम् ;

३ 'संपु' इति, आख्या-पत्र-भाषिक-तत्पर्यायो वा ;

४ ग्रन्थालयीय-संपुट-संख्या, समावेशाङ्कने;

५ पूर्ण-विरामः ;

६ संवादि-संवत्सराः, समावेशांकने।

७१२० ते षट् अंशाः यथाक्रमं निम्नलिखिताः भवन्ति !

१ आख्यायाः प्रथम-पदम् उपपदात्मकं मानपदात्मकं वा चेत् तस्य लोप-पुरःसरम्, प्रथम पदस्य च विशिष्ट लिप्यां लेखन-पुरःसरम् आख्यायाः प्रतिलिपिः प्रथमः अंशः भवति;

२ समष्टिः ग्रन्थकर्त्री चेत्, सामयिक प्रकाशनं समष्टि-

प्रवर्तितं वा चेत्, तत्-समष्टि नाम च आख्यायां न अन्तर्गतं चेत् वृत्तकोष्ठके पृथग् वाक्यरूपेण तन्नाम, समष्टि-द्वय-ग्रन्थकर्तृत्वे च तयोरुभयोर्नामिनी, द्वया-धिक-समष्टि-ग्रन्थकर्तृत्वे च प्रथम-समष्टि-नाम ततः परं च 'इदि' इति अयं द्वितीयः अंशः भवति;

३ 'संपु' इति, आख्या-पत्र-भाषायां तत्पर्यायो वा तृतीयः अंशः भवति;

४ समावेशाङ्कने लिखिता, ग्रन्थालये विद्यमानानां संपुटानां सङ्कलिता संख्या चतुर्थः अंश भवति;

५ पूर्णविरामः पंचमः अंशः भवति;

६ समावेशाङ्कने लिखिताः ग्रन्थालये विद्यमानानां संपुटानां संवादिनः संवत्सराः षष्ठः भवति ।

७१२ आख्यादि-अनुच्छेद में छः अंश होते हैं ।

७१२० वे छः अंश निम्नलिखित हैं :—

१ यदि आख्या का प्रथम-पद उपपद अथवा मानपद हो, तो उसका लोप करते हुए तथा प्रथम-पद को विशिष्ट लिपि में लिखते हुए, आख्या की प्रतिलिपि प्रथम अंश होता है;

२ यदि समष्टि ग्रन्थकर्त्री हो, अथवा सामयिक-प्रकाशन समष्टि-प्रवर्तित हो तथा उस समष्टि का नाम आख्या में समाविष्ट न हो, तो वृत्त-कोष्ठक में, पृथक् वाक्य के रूप में लिखा हुआ, उस समष्टि का नाम, दो समष्टियां ग्रन्थकर्त्री हों, तो दोनों का नाम, दो से अधिक समष्टियां ग्रन्थकर्त्री हों, तो प्रथम समष्टि का नाम तथा उसके आगे 'इदि.' यह द्वितीय अंश होता है ;

३ 'संपु.' अथवा आख्या-पत्र की भाषा में उसका पर्याय तृतीय अंश होता है;

४ समावेशांकन में लिखी हुई, ग्रन्थालय में विद्यमान संपुटों की संकलित संख्या चतुर्थ अंश होता है;

५ पूर्ण-विराम पांचवां अंश होता है;
६ समावेशांकन में लिखे हुए, ग्रन्थालय में विद्यमान संपुटों के संवादी संवत्सर छठा अंश होता है।

७१३० "संपुट के संवत्सर" से अभिप्राय उस संवत्सर से है जो संपुट के द्वारा अधिकृत हो। यह संभव है कि वह प्रकाशन का वर्ष न हो। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि संपुट के अधिकार-पात्र तथा प्रकाशन सम्बन्धी दोनों वर्ष एक ही हों।

उदाहरणार्थ, देखिए धारा ७२१० के अन्तर्गत उदाहरण २।

७१२४　अनुप्रकाशन-गृह्यमाण-अन्त्य-संपुट-वर्षयोः सीस-लेखनी।
७१२४०१　इदम् "ग्रन्थालय-अपूरितांकनम्"।
७१२४०२　अवरुद्धे मसी।
७१२४०३　इदम् "ग्रन्थालय-पूरितांकनम्"।

७१२४　सामयिक-प्रकाशनम् अनुप्रकाशनम् यथाकालं ग्रन्थालये गृह्यमाणं चेत्, सति संभवे अन्त्य-संपुटस्य अन्त्य-वर्षस्य च समङ्कः सीस-लेखन्या लेख्यः।

७१२४०२　प्रचलत्प्रकाशनं सामयिक-प्रकाशनं ग्रन्थालये अवरुद्धं चेत्, सति संभवे अन्त्य-संपुटस्य अन्त्य-वर्षस्य च सीस-लेखन्या लिखितः समङ्कः मस्या लेख्यः।

७१२४　यदि सामयिक प्रकाशन, प्रकाशन के साथ ही यथासमय ग्रन्थालय में ग्रहण किया जाता हो तो, संभव होने पर अन्त्य-संपुट और अन्त्य-वर्ष का समंक सीस-लेखनी से लिखा जाय।

७१२४०१　यह "ग्रन्थालय-अपूरितांकन" कहा जाता ह।

७१२४०२　यदि सामयिक-प्रकाशन का प्रकाशन चलता हो किन्तु

ग्रन्थालय में उसका ग्रहण अवरुद्ध हो, तो संभव होने पर अन्त्य-संपुट और अन्त्य-वर्ष का सीस लेखनी से लिखा हुआ समंक मसी से लिखा जाय ।

७१२४०३ यह "ग्रन्थालय-पूरितांकन" कहा जाता है ।

७१२४०१ सर्वान्तिम संपुट-समंक तथा सर्वान्तिम वर्ष-समंक पेन्सिल से लिखा जाय। इस विधि का उद्देश्य यह है कि उस के बाद के संपुट ज्यों ही पूर्ण हो जायं तथा परिगृहीत कर लिए जायं त्यों ही उन समंकों को मिटा कर उनके स्थान में उनके अनुपद समंक सरलता से लिखे जा सकें । साधारणत: ग्रन्थालयों की प्रथा यह है कि इन समंकों को पेन्सिल द्वारा भी न लिखा जाय, प्रत्युत उन स्थानों को शून्य ही छोड़ दिया जाय । हम भली भांति जानते हैं कि सामयिक-प्रकाशन अपनी अनियमितताओं के लिए पर्याप्त रूप से प्रसिद्ध हैं । फिर भी यदि हम कल्पना कर बैठें कि सर्वान्तिम पूर्ण संपुट के वर्ष तथा समंक का अनुमान लगाया जा सकता है तो यह भारी भूल होगी । कारण, यह सरल नहीं है । प्रस्तुत धारा में विहित सामान्य सी इस युक्ति के द्वारा अनुलय कर्तृगण तथा पाठक दोनों को पर्याप्त सुविधा प्राप्त होती है । यह हमारे अनुभव से सिद्ध है ।

७१३ माला-अधिसूचनम् १४१ धारोपधारा-यथानिर्देशम् ।

७१३० तत् वृत्तकोष्ठके ।

७१३१ सर्व-संपुट-माला-समंका : ।

७१३२ संघात-प्रथम-संपुट-मालानान्तर्गतत्वे मालान्तर्गत-संघात-सर्व-पूर्व-संपुट-वर्ष-अन्यतर-समंकः तन्माला-समंकादधः ।

७१३३ संपुटान्तर-माला-बहिर्भावे तदुत्तर-मालान्तर्गत-संपुट-वर्ष-अन्यतर-समंकः तन्माला-समंकात् अधः

७१३४ एवमग्रेऽपि ।

७१३ माला-अधिसूचनं विद्यते चेत्, तत् १४१ धारां तदीयाः उपधाराः च अनुसृत्य लेख्यम् ।

७१३१ सामयिक-प्रकाशनस्य सर्वेषां संपुटानां माला-समङ्काः यथाक्रमम् अन्ते लेख्याः ।

७१३२ संघातस्य प्रथमः संपुटः मालायाः अन्तर्गतः न चेत्, संघातस्य सर्वेभ्यः पूर्वः यः संपुटः मालायाः अन्तर्गतः स्यात् तस्य संपुटस्य समङ्कः, तदभावे वा वर्ष-समङ्कः, तस्य संपुटस्य माला-समङ्कस्य अधस्तात् विभाजक-तया लेख्यः ।

७१३३ संघातस्य प्रथमेतरः कोऽपि संपुटः मालायाः वहिर्भवति चेत्, तदव्यवहितोत्तरः यः संपुटः मालायाः अन्तर्गतः स्यात् तस्य संपुटस्य समङ्कः तदभावे वा वर्ष-समङ्कः तस्य संपुटस्य माला-समङ्कस्य अधस्तात् विभाजकतया लेख्यः ।

७१३ **यदि माला-अधिसूचन विद्यमान हो, तो वह १४१ धारा और उसकी उपधाराओं का अनुसरण करके लिखा जाय ।**

७१३० **यह वृत्त-कोष्ठक में लिखा जाय ।**

७१३१ **सामयिक-प्रकाशन के सभी संपुटों के माला समंक क्रमशः अन्त में लिखे जायं ।**

७१३२ **यदि संघात का प्रथम संपुट माला के अन्तर्गत न हो, तो संघात का सबसे पहला जो संपुट माला के अन्तर्गत हो उस संपुट का समंक अथवा उसके अभाव में वर्ष-समंक उस संपुट के माला-समंक के नीचे विभाजक रूप में लिखा जाय ।**

७१३३ **यदि संघात का प्रथम से अन्य कोई संपुट माला के बाहर हो जाय, तो उसके ठीक ही बाद का जो संपुट माला के अन्तर्गत हो उस संपुट का समंक अथवा उसके अभाव में वर्ष-समंक उस संपुट के माला-समंक के नीचे विभाजक रूप में लिखा जाय ।**

७१३४ ऐसे ही आगे भी किया जाय ।

७१४०० संपुटावधि-अधिसूचने एक-संपुट-प्रकाशन-पूर्णता-समय अन्तर-उल्लेखः ।

७१४००१ ऋजुकोष्ठके ।

७१४००२ तत् द्विधा ।

७१४००३ एक-वर्ष-एकैकाधिक-संपुट-प्रकाशितत्वे प्रथमम् ।

७१४००४ वर्षाधिक-समय-प्रकाशित एक-संपुटत्वे द्वितीयम् ।

७१४०० संपुट-अवधि-अधिसूचने एकस्य संपुटस्य प्रकाशने पूर्णतायां च यावान् समयः अपेक्ष्यते तस्य उल्लेखः कार्यः ।

७१४००१ संपुटावधि-अधिसूचनम् ऋजुकोष्ठके लेख्यम् ।

७१४००३ एकस्मिन् वर्षे एकः अधिक-संख्याकाः वा संपुटाः प्रकाश्यन्ते चेत् प्रथमः प्रकारः भवति ।

७१४००४ एकस्य संपुटस्य प्रकाशने एकस्मात् वर्षात् अधिकः समयः अपेक्ष्यते चेत् द्वितीयः प्रकारः भवति ।

७१४०० संपुट - अवधि अधिसूचन में एक संपुट के प्रकाशन में और पूरे होने में जितना समय लगता हो उसका उल्लेख किया जाय ।

७१४००१ संपुटावधि-अधिसूचन ऋजु-कोष्ठक में लिखा जाय ।

७१४००२ उसके दो प्रकार हैं ।

७१४००३ यदि एक वर्ष में एक या एक से अधिक संख्या के संपुट प्रकाशित हों, तो वह प्रथम प्रकार होता है ।

७१४००४ यदि एक संपुट के प्रकाशन में एक वर्ष से अधिक समय लगता हो, तो वह द्वितीय प्रकार होता है ।

७१४०१ प्रथमे अंशाः पंच ।

७१४०१० यथा —

१ प्रतिवर्ष-प्रकाशित-संपुट-संख्या ;
२ "संपु प्रतिवर्षम्" इति पदे ;
३ पूर्ण-विरामः ;
४ प्रकाशनारम्भ-संवत्सरः ;
५ रेखिका च ।

७१४०११ प्रथमे प्रकारे पंच अंशाः भवन्ति ।

७१४०१ प्रथम प्रकार में पांच अंश हैं ।
७१४०१० वे अंश निम्नलिखित होते हैं :—
१ प्रति वर्ष प्रकाशित होने वाले संपुटों की संख्या;
२ "संपु प्रतिवर्ष" ये पद;
३ पूर्ण विराम;
४ प्रकाशन के आरम्भ का संवत्सर; और
५ रेखिका ।

७१४०१२ एकाधिक-खण्ड-संपुटित-संपुटत्वे द्वितीयोत्तरमतिरिक्तांशा ।

७१४०१३ यथा —

३ अर्ध-विरामः ;
४ एक-संपुट-पृथक्-संपुटित-खण्ड-संख्या ;
५ "खण्डे (खण्डानि वा) प्रति संपुटम्" इति ;

७१४०१२ एकः संपुटः एकस्मात् अधिकेषु खण्डेषु संपुटितः चेत्,

द्वितीयात् अंशात् उत्तरम् निम्ननिर्दिष्टाः त्रयः अतिरिक्ताः अंशाः लेख्याः ।

७१४०१२ यदि एक संपुट एक से अधिक खण्डों में संपुटित हो, तो द्वितीय अंश से आगे निम्नलिखित तीन अतिरिक्त अंश लिखे जायं ।

७१४०१३ वे तीन अंश हैं :—

३ अर्ध-विराम;

४ एक संपुट के पृथक् संपुटित खण्डों की संख्या;

५ "खण्ड प्रति-संपुट" यह ।

७१४०२ **द्वितीये अंशाः षट् ।**

७१४०२१ **यथा —**

१ " १ संपु प्रति" इति ;

२ वर्ष-संख्या ;

३ "वर्षम्" इति ;

४ पूर्ण-विरामः ;

५ प्रकाशनारम्भ-संवत्सरः च;

६ रेखिका च ।

७१४०२ दूसरे प्रकार में ६ अंश होते हैं ।

७१४०२१ वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ "१ संपु प्रति" यह;

२ वर्ष की संख्या;

३ "वर्ष" यह;

४ पूर्ण-विराम;

५ प्रकाशन के आरम्भ का संवत्सर; और

६ रेखिका ।

७१४०२२ एकाधिक-खण्ड-संपुटित-संपुटत्वे तृतीयोत्तरमतिरिक्तांशाः ।

७१४०२२ द्वितीये प्रकारे, एकः संपुटः एकस्मात् अधिकेषु खण्डेषु संपुटितः चेत् ७१४०१२ धारा-निर्दिष्टाः अतिरिक्ताः त्रयः अंशाः तृतीयात् अंशात् उत्तरं लेख्याः ।

७१४०२२ द्वितीय प्रकार में, यदि एक संपुट एक से अधिक खण्डों में संपुटित हो, तो ७१४०१३ धारा में निर्दिष्ट अतिरिक्त ३ अंश तृतीय अंश के पश्चात् लिखे जायं ।

७१४०३ निरवधिक-प्रकाशने "निरवधिकम्" इति आरम्भे ।

७१४०३ सामयिक-प्रकाशनस्य प्रकाशने निरविधके सति अधिसूचनस्य आरम्भे 'निरवधिकम्' इति लेख्यम् ।

७१४०३ यदि सामयिक प्रकाशन का प्रकाशन निरवधिक हो, तो अधिसूचन के आरम्भ 'निरवधिक' यह लिखा जाय ।

७१४१ प्रचलत्प्रकाशनत्वे रेखिकान्ते नान्यत् ।

७१४१० इदम् "प्रकाशन-अपूरितांकनम्"

७१४२ विरत-प्रकाशनत्वे अन्त्य-प्रकाशित-संपुट-संवत्सरः ।

७१४२० इदम् "प्रकाशन-पूरितांकनम्"

७१४१ सामयिक प्रकाशनस्य प्रकाशनं प्रचलत् चेत्, ग्रन्थालये तत् गृह्यते चेत् न वा गृह्यते चेत्, ७१४०१-

७१४०२ धारयोः निर्दिष्टायाः रेखिकायाः अन्ते अन्यत् किमपि न लेख्यम् ।

७१४१० इदम् समङ्कनम् "प्रकाशन-अपूरिताङ्कनम्" इति उच्यते ।

७१४२ सामयिक प्रकाशनस्य प्रकाशनं विरतं चेत् ७१४००१ ७१४००२ धारयोः निर्दिष्टायाः रेखिकायाः परम् अन्त्यस्य प्रकाशितस्य संपुटस्य संवत्सरः लेख्यः ।

७१४२० इदम् अङ्कनम् "प्रकाशन-पूरिता-अङ्कनम्" इति उच्यते ।

७१४१ सामयिक प्रकाशन का प्रकाशन यदि प्रचलित हो तो ग्रन्थालय में चाहे वह लिया जाता हो अथवा नहीं, ७१४०१-७१४०२ धाराओं में निर्दिष्ट रेखिका के अन्त में अन्य कुछ भी न लिखा जाय ।

७१४१० यह अंकन "प्रकाशन-अपूरितांकन" कहा जाता है ।

७१४२ सामयिक प्रकाशन का प्रकाशन यदि विरत हो तो ७१४१०-७१४०२ धाराओं में निर्दिष्ट रेखिका के पश्चात अन्त्य-प्रकाशित संपुट का संवत्सर लिखा जाय ।

७१४२० यह अंकन "प्रकाशन-पूरितांकन" कहा जाता है ।

७१४२० कभी कभी ऐसा होता है कि संपुट-अवधि-अधिसूचन के लिए सामयिक-प्रकाशन के बाह्य साधनों की सहायता लेनी पड़ती है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अन्तरंग प्रमाण पर्याप्त नहीं होते और बहिरंग प्रमाणों का आश्रय लेना पड़ता है । यही कारण है कि इसे ऋजु-कोष्ठकों में लिखने का विधान किया गया है । यह संभव है कि कतिपय सामयिक-प्रकाशनों के आरम्भ होने के संवत्सर का ज्ञान ही न हो पाये । किन्तु सूचीकार का यह कर्त्तव्य है कि प्रत्येक संभव ग्रन्थ-सूची-विषयक स्रोतों में से उस जानकारी को प्राप्त करें, तथा जब तक उस जानकारी को प्राप्त न कर ले तब तक चैन न ले । उसे चाहिए कि किसी न किसी प्रकार अपने लक्ष्य की प्राप्ति अवश्यमेव करे । अहिन्दी प्रकाशनों के लिए लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस द्वारा प्रकाशित गाइड टु दी केटलागिंग ऑफ

सीरियल पब्लिकेशन्स ऑफ सोसाइटीज एण्ड इन्स्टीटयूशन्स के "ग्रन्थ सूची-विषयक सुझाव" शीर्षक वाले अध्याय में सूचीकार के लिए उन क्षेत्रों का मानचित्र प्रस्तुत किया गया है जहां उसे अवश्य खोज करनी चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कार्य में उसे अत्यधिक समय लगाना पड़े। इसका अर्थ यह नहीं होता कि जब तक वांछित जानकारी नहीं प्राप्त हो जाती तब तक के लिए सूचिकरण के कार्य को स्थगित रखा जाय तथा सामयिक प्रकाशन को सूचीकार के असमाहित ढेर में व्यर्थ पड़े रहने दिया जाय। इस प्रकार की प्रणाली तो ग्रन्थालय-शास्त्र के सभी सूत्रों की निर्मम हत्या सिद्ध होगी। इसके विपरीत, उचित तो यह है कि प्रकाशन को जनता के उपयोग के लिए मुक्त कर दिया जाय, चाहे सूचीपत्रक में ऋजु-कोष्ठकों के मध्य का भाग रिक्त ही क्यों न रहे। यही मार्ग सर्वोत्तम है। इस प्रकार के अपूर्ण पत्रकों की एक तालिका बना कर रखनी चाहिए, जिससे वे कहीं विस्मृति के गर्भ में न समा जायँ। जब कभी और ज्यों ही आवश्यक जानकारी प्राप्त हो जाय त्यों ही रिक्त स्थानों को भरते रहना चाहिए।

उदाहरण

अवधेयः—प्रस्तुत अध्याय के उदाहरणों में, धारा ७१३१ के अनुसार पेन्सिल द्वारा लिखे जाने वाले समंक विभिन्न मुद्राक्षरों में दिए गये हैं।

१. ४७३:थ०२फं

यिअर बुक (कार्निजी इन्स्टिटयूशन आफ वाशिंगटन). संपु. १–३१. १९०२–१९३२.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९०२—].

इस संलेख का तात्पर्य यह है कि ग्रन्थालय में प्रस्तुत आवर्तित का अविच्छिन्न संघात है तथा वह ग्रन्थालय में प्रचलित भी है।

---

२. ५०२:२:थ२१

माधुरी. संपु. १–३१. १९३१–१९४७.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९२१– १९४७].

यहां प्रस्तुत संलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस आवर्तित का प्रकाशन तथा ग्रन्थालय में आना दोनों बंद हैं।

३. २ढं२:थ४६

ग्रन्थालय (भारतीय ग्रन्थालय संघ). संपु. १. १६४६।५०.
[१ संपु. प्रति २ वर्ष. १६४६।१६५०—].

यहां प्रस्तुत संलेख से यह अभिप्राय है कि ग्रन्थालय में प्रकृत आवर्तित का केवल एक ही संपुट है, किन्तु उसका प्रकाशन चालू है। प्रस्तुत उदाहरण में संलेख "ग्रन्थालय के लिए बन्द" है, किन्तु "प्रकाशन के लिए बंद नहीं" है।

४. ल२ढं२:थ४८

राजकमल वर्ष-बोध. १६४८, १६५०–१९५१.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १६४८—].

इस संलेख का तात्पर्य यह है कि ग्रन्थालय में प्रस्तुत आवर्तित के बीच का एक संपुट नहीं है, किन्तु वह ग्रन्थालय में अब भी चालू है।

५. जढं३:ढ८७

एनाल्स ऑफ बॉटनी. संपु. १—४७. १८८७—१९३३.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८८७—].

इस संलेख का तात्पर्य यह है कि सामयिक ग्रन्थालय में चालू है तथा उसमें सारे सम्पुट विद्यमान हैं।

६. म४छं२:ढ४१थं

केलेण्डर (प्रेसिडेन्सी कॉलेज, मद्रास, सिटी.). १६२६/१६२७—१९३३/१९३४
[१ संपु. प्रतिवर्ष.].

प्रस्तुत उदाहरण में, आवर्तित के विभिन्न संपुट क्रमागत रुप से समंकित नहीं हैं। 'संपुट का वर्ष' ही केवल एक वस्तु है जो संपुटों में एक से दूसरे का भेदक माना जा सकता है। यही अवस्था उदाहरण ४ में भी प्राप्त है। आवर्तित के प्रकाशन-आरम्भ-संवत्सर की जानकारी नहीं है, अतः ऋजु-कोष्ठकों का अन्तर्वर्ती तदुद्दिष्ट स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है। ज्यों ही वह जानकारी प्राप्त हो जाय, त्यों ही उस स्थान को भर देना चाहिए।

७. २:७छं२:थ१५थं

वार्षिक रिपोर्ट (मारवाड़ी पुस्तकालय, देहली). संपु. १—३४. १९१५/१६—१९४८/४९.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९१५।१६—].

प्रस्तुत उदाहरण में तथा उदाहरण (६) में यह बात ध्यान देने योग्य है कि "संपुट का वर्ष" सामान्य प्रचलित (गणितीय) संवत्सर नहीं है, अपितु एक कृत्रिम वर्ष है जो दो गणितीय वर्षों में व्याप्त है। किन्तु उदाहरण ३ में उसी प्रकार का समंकन दो पूर्ण गणितीय वर्षों का बोध कराता है।

८. ह४३८सं७ढं

इण्डियन लॉ रिपोर्टस, रंगून सीरीज इदि. (बर्मा. हाइकोर्ट). संपु. १—११. १९२३—१९३३.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९२३—].

७२ विषयान्तर-संलेखः

विषयान्तर-संलेख

७२ सामयिक-प्रकाशनस्य विषयान्तर-संलेखो न।

७२० पृथक्-पुस्तकोपम-एक-कृतिक-स्मारक-विशिष्ट-संपुटयोस्तु भवति।

७२० यस्मिन् संपुटे केवलम् एका एव कृतिः भवति, येन च सः संपुटः पृथक्-पुस्तकस्य इव व्यवहारस्य पात्रं भवति, तादृशस्य संपुटस्य कृते, यः च संपुटः स्मारक-संपुटः इति प्रथमतः एव निर्धारितो भवति, अथवा अन्येन केनापि रूपेण विशिष्टः संपुटः इति व्यवहार-पात्रं भवति तादृशस्य संपुटस्य कृते, विषयान्तर-संलेखो लेख्यः।

७२ सामयिक-प्रकाशन के लिए विषयान्तर-संलेख नहीं होता।

७२० जिस संपुट में केवल एक ही कृति होती है, जिससे कि वह संपुट पृथक् पुस्तक की तरह के व्यवहार का पात्र होता है उस प्रकार के संपुट के लिए, और जो संपुट स्मारक-संपुट के रूप में पहले से ही निर्धारित होता है अथवा अन्य किसी भी रूप से विशिष्ट संपुट के व्यवहार का पात्र होता है, उस प्रकार के संपुट के लिए विषयान्तर-संलेख लिखा जाय।

७२१ विषयान्तर-संलेखे अनुच्छेदाः चत्वारः।

७२१० यथा --

१ स्वतन्त्र-कृति-वद् वर्गीकरण-वर्ग-समङ्कः (अग्रानुच्छेदः)

२ "<u>द्रष्टव्यमन्यत्</u>" देशक-पदे;

३ सामयिक प्रकाशन-वर्ग-समङ्कः;

४ आख्या, पूर्ण-विरामः, 'संपु' इति पदम्, संपुट-समङ्क-संवत्सरयोः अन्यतरद् उभयं वा इति च।

७२१ सामयिक-प्रकाशनस्य विषयान्तर-संलेखे यथाक्रमं चत्वारः अनुच्छेदाः भवन्ति।

७२१० ते चत्वारः अनुच्छेदाः निम्ननिर्दिष्टाः भवन्ति।

१ विषयान्तर-संपुटः स्वतन्त्र-कृतिः इव वर्गीकृतः चेत् तस्य यः वर्ग-समङ्कः स्यात् सः वर्ग-समङ्कः अग्रानुच्छेदः भवति;

२ "<u>द्रष्टव्यमन्यत्</u>" इति देशक-पदे द्वितीयः अनुच्छेदः भवति;

३ सामयिक-प्रकाशनस्य वर्ग-समङ्कः तृतीयः अनुच्छेदः भवति;

४ सामयिक-प्रकाशनस्य आख्या, पूर्ण-विरामः, 'संपु' इति, संपुट-समङ्कः-संवत्सरयोः अन्यतरत् उभयं वा इति च चतुर्थः अनुच्छेदः भवति ।

७२१ **सामयिक-प्रकाशन के विषयान्तर-संलेख में क्रमशः चार अनुच्छेद होते हैं ।**

७२१० **वे चार अनुच्छेद निम्नलिखित हैं :—**

१ विषयान्तर-संपुट यदि स्वतन्त्र कृति की तरह वर्गीकृत किया जाय, तो उसका जो वर्ग-समंक हो वह वर्ग-समंक अग्रानुच्छेद होता है;

२ 'और द्रष्टव्य' ये देशक-पद द्वितीय अनुच्छेद होता है;

३ सामयिक-प्रकाशन का वर्ग-समंक तृतीय अनुच्छेद होता है;

४ सामयिक-प्रकाशन की आख्या, संपुट समंक तथा संवत्सर इन दोनों में से एक अथवा दोनों यह चतुर्थ अनुच्छेद होता है ।

७२१० उदाहरण

१. द१५२:१झ३२:११

और द्रष्टव्य

प२ढं२:थ२६

कल्याण. संपु. १७. १९४२.

इस संलेख से यह प्रकट है कि कल्याण के संपु. १७ में तुलसीदास कृत रामचरितमानस नामक एक ही कृति विद्यमान है ।

२. ऊझंथ०८

और द्रष्टव्य

ऊढं२:थ०८

बुलेटिन ऑफ दि कलकटा मेथमेटिकल सोसायटी. संपु. २०. १९२८.

प्रस्तुत संपुट का आख्या-पत्र निम्नलिखित है:—

"कमेमोरेशन वाल्यूम । ऑन दि अकेजन आफ दि । ट्वेण्टियथ एनिवर्सरी । ऑफ दि फाउन्डेशन ऑफ । दि कलकटा मेथमेटिकल सोसायटी । इन १६२८ । बुलेटिन । वॉल्. २०."

यहां यह भी स्पष्ट कर देना उचित है कि यह संपुट वस्तुतः १६३० में प्रकाशित हुआ था । यही वस्तु मुद्रणांकन द्वारा व्यक्त की गई है । किन्तु "संपुट का वर्ष" १६२८ है ।

---

३. ढट३११

और दृष्टव्य

प२ढं२:थ२६

कल्याण. संपु. २०. १६४५.

इस संलेख से यह स्पष्ट है कि कल्याण का संपु. २० गौ-अंक था ।

७३ निर्देशि-संलेखः

निर्देशि-संलेख

७३ सामयिक-प्रकाशनस्य वर्ग-निर्देशि-संलेखः

७३००१ न निर्देशि-संलेखान्तरम् ।

७३००२ ७३०१-७३०२ धारे ऽपवादौ ।

७३००३ वर्ग-निर्देशि-संलेख-लेखने ३१ धारानुकरणम् ।

७३००१ सामयिक - प्रकाशनस्य अन्यः कोऽपि निर्देशि-संलेखः न लेख्यः ।

७३००२ सामयिक-प्रकाशनस्य निर्देशि-संलेख-लेखने ७३००१ धारा ७३००२ धारा च अपवाद-रूपे स्वीकार्ये ।

७३००३ सामयिक-प्रकाशनस्य वर्ग-निर्देशि-संलेख-लेखने तृतीयाध्यायस्य ३१ धारायाः अनुकरणं कार्यम् ।

७३ सामयिक-प्रकाशन का केवल वर्ग-निर्देशी-संलेख ही लिखा जाय।

७३००१ सामयिक-प्रकाशन का अन्य कोई भी निर्देशी-संलेख न लिखा जाय।

७३००२ सामयिक-प्रकाशन के निर्देशी-संलेख लिखने में ७३०१ धारा और ७३०२ धारा अपवादरूप में स्वीकार की जायं।

७३००३ सामयिक-प्रकाशन के वर्ग-निर्देशी-संलेख के लिखने में तृतीय अध्याय की ३१ धारा का अनुकरण किया जाय।

७३०१ अधितन्त्र-कर्तृक-वार्षिकादि-विवरण-सामयिक-प्रकाशनस्य न निर्देशि-संलेखः।

७३०१ यत् सामयिक-प्रकाशनम् अधितन्त्र-कर्तृकं वार्षिकम् अन्यत् वा विवरणं स्यात् तस्य सामयिक-प्रकाशनस्य कृते कोऽपि निर्देशि-संलेखो न लेख्यः।

७३०१ जो सामयिक-प्रकाशन अधितन्त्र-कर्तृक वार्षिक अथवा दूसरा विवरण हो उस के लिए कोई भी निर्देशी-संलेख न लिखा जाय।

७३०२ अधितन्त्रेतर-समष्टि-कर्तृक-वार्षिकादि-विवरण-सामयिक प्रकाशनस्य विशिष्ट-वर्ग-निर्देशि-संलेखः।

७३०२ यत् सामयिक-प्रकाशनम् अधितन्त्र-कर्तृकं न स्यात्, अपितु समष्टयन्तर-कर्तृकं वार्षिकम् अन्यद् वा विवरणं स्यात् तस्य कृते विशिष्ट-वर्ग-निर्देशि-संलेख एव लेख्यः, अन्यः कोऽपि निर्देशि-संलेखो न लेख्यः।

७३०२ जो सामयिक-प्रकाशन अधितन्त्र-कर्तृक न हो अपितु अन्य

समष्टि-कर्तृक वार्षिक अथवा अन्य विवरण हो उसके लिए विशिष्ट-वर्ग-निर्देशी-संलेख ही लिखा जाय, अन्य कोई भी निर्देशी-संलेख न लिखा जाय।

७३१ **सामयिक-प्रकाशन-वर्ग-निर्देशि-संलेखे अधस्तनानाम् अन्यतमं शीर्षकम्।**

७३१० **सामयिक-प्रकाशन-अपेक्षित-प्रति-प्रकारम् एकः।**

७३१०० **यथा —**

१ आख्या-प्रथम-पदम्;

२ अवान्तरनाम-प्रथम-पदानि वा;

३ समष्टि-ग्रन्थकार-प्रवर्तक-समष्टि-अन्यतर-नाम;

४ अवान्तरनाम वा;

७३१० विशिष्टेन सामयिक-प्रकाशनेन अपेक्षितं प्रत्येकं प्रकारम् आश्रित्य एकैकः संलेखो लेख्यः।

७३१०० सामयिक-प्रकाशनस्य वर्ग-निर्देशि-संलेखस्य शीर्षकाणां चत्वारः प्रकाराः भवन्ति।

१ सामयिक-प्रकाशनस्य आख्यायाः प्रथमं पदं प्रथमः प्रकारः भवति ;

२ सामयिक-प्रकाशनं नामान्तरेण अपि प्रसिद्धं चेत् तेषाम् अवान्तर नाम्नां प्रथम-पदानि द्वितीयः प्रकारः भवति;

३ समष्टि-ग्रन्थकारस्य प्रवर्तक-समष्टेः वा नाम तृतीयः प्रकारः भवति;

४ समष्टि-ग्रन्थकारः प्रवर्तक-समष्टिः वा नामान्तरेण अपि प्रसिद्धा चेत् तानि नामानि चतुर्थः प्रकारः भवति ।

७३१ सामयिक-प्रकाशन के वर्ग-निर्देशी-संलेख में निम्नोक्त में से कोई एक शीर्षक के रूप में स्वीकार किया जाय ।

७३१० विशिष्ट-सामयिक-प्रकाशन के द्वारा अपेक्षित प्रत्येक प्रकार के लिए एक-एक संलेख लिखा जाय ।

७३१०० सामयिक-प्रकाशन के वर्ग-निर्देशी-संलेख के शीर्षकों के निम्न चार प्रकार होते हैं :—

१ सामयिक-प्रकाशन की आख्या का प्रथम पद प्रथम प्रकार होता है;

२ यदि सामयिक-प्रकाशन अन्य नामों से भी प्रसिद्ध हो, तो उन अवान्तर-नामों के प्रथम पद द्वितीय प्रकार होता है;

३ समष्टि-ग्रन्थकार का अथवा प्रवर्तक-समिष्ट का नाम ततीय प्रकार होता है;

४ समष्टि-ग्रन्थकार अथवा प्रवर्तक-समष्टि अन्य नामों से भी प्रसिद्ध हो, तो वे अवान्तर-नाम चतुर्थ प्रकार होता है ।

७३२ अनुशीर्षक-स्वरूपं द्वितीयानुच्छेदः ।

७३२१ प्रथम-द्वितीय-अन्यतर-प्रकारक-शीर्षकं अंशौ द्वौ ।

७३२१० यथा —

१ सामयिक-प्रकाशन-नाम, नाम-तात्त्विकांश रूप-तत्समपदान्यपि च;

२ सामयिक-प्रकाशन-वर्ग-समंकात्मक-निर्देशि-समंकः च ।.

७३२१०१ पृथक् वाक्ये ।

७३२ द्वितीयानुच्छेदः शीर्षकस्य स्वरूपम् अनुभिद्यते ।

७३२१ सामयिक-प्रकाशनस्य वर्ग-निर्देशि-संलेखस्य शीर्षकं प्रथम-प्रकारकं द्वितीय-प्रकारकं वा चेत् द्वितीयानुच्छेदे द्वौ अंशौ भवतः ।

७३२१०१ पूर्वोक्तौ द्वौ अनुच्छेदौ पृथक् वाक्ये ज्ञेये ।

७३२ द्वितीयानुच्छेद शीर्षक के स्वरूप के अनुसार भिन्न होता है ।

७३२१ सामयिक-प्रकाशन के वर्ग-निर्देशी-संलेख का शीर्षक यदि प्रथम अथवा द्वितीय प्रकार का हो तो द्वितीय अनुच्छेद में दो अंश होते हैं ।

७३२१० वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ सामयिक-प्रकाशन का नाम; और नाम के तात्त्विक-अंश-स्वरूप तथा तत्सम पद; और

२ सामयिक-प्रकाशन के वर्ग-समंक-रूप निर्देशी-समंक ।

७३२१०१ पूर्वोक्त दोनों अनुच्छेद पृथक् वाक्य माने जायं ।

७३२३ तृतीय-चतुर्थ-अन्यतर-प्रकारक-शीर्षके द्वितीयानुच्छेदे अंशौ द्वौ ।

७३२३० यथा —

१ सामयिक-प्रकाशन-आख्या;

२ सामयिक-प्रकाशन-वर्ग-निर्देशि-समंकः च ।

७३२३०१ पृथक् वाक्ये

७३२३ सामयिक-प्रकाशन-वर्ग-निर्देशि-संलेखस्य शीर्षकं तृतीय-प्रकारकं चतुर्थ-प्रकारकं वा चेत् द्वितीयानुच्छेदे द्वौ अंशौ भवतः ।

७३२३०१ पूर्वोक्तौ द्वौ अनुच्छेदौ पृथक् वाक्ये ज्ञेये ।

७३२३ **यदि सामयिक-प्रकाशन के वर्ग-निर्देशी-संलेख का शीर्षक तृतीय अथवा चतुर्थ प्रकार का हो, तो द्वितीय अनुच्छेद में दो अंश होते हैं।**

७३२३० **वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—**

१ सामयिक-प्रकाशन की आख्या; और

२ सामयिक प्रकाशन के वर्ग-समंक रूप निर्देशी समंक।

७३२३०१ **पूर्वोक्त दोनों अनुच्छेद पृथक् वाक्य माने जायं।**

७३२३०१ **उदाहरण**

१. त्साइश्रिफ्त डेर दॉइचॅं मॉर्गेन्लेन्दिशेन गजेल्शाफ्त के लिए निम्नलिखित निर्देशी-संलेख लिखे जायंगे :—

दॉइचॅं मॉर्गेन्लेन्दिशेन गजेलशाफ्त.

त्साइश्रिफ्त. ५O४:५५:ढ४५

तथा

त्साइश्रिफ्त. प्रथमपद.

त्साइश्रिफ्त डेर दॉइचॅं मॉर्गेन्लेन्दिशेन गजेल्शाफ्त. ५O४:५५:ढ४५

तथा

जेड्. प्रथमपद.

जेड. डी. एम्. जी. ५O४:५५:ढ४५

कारण, एशियाई विद्यार्थी उसे इसी संक्षिप्त नाम से जानते हैं।

२. नीचे हम जर्नल आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी के प्रधान-पत्रक को प्रस्तुत कर रहे हैं। उस में ग्रन्थालय में उपलब्ध संपुटों के विषय की सूचना नहीं दी हुई है तथा अधिसूचन भी नहीं है।

ऊढं२:थ०७

जर्नल ऑफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी.

इस समुच्चित के लिए निम्नलिखित निर्देशी संलेख लिखे जायंगे :—

इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी.
जर्नल. ऊढं२:थ०७

तथा

जर्नल. प्रथमपद.
जर्नल ऑफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी.
ऊढं२:थ०७

३. भारतीय ग्रन्थालय संघ.
ग्रन्थालय. २ढं२:थ४६

ग्रन्थालय. प्रथमपद.
ग्रन्थालय (भारतीय ग्रन्थालय संघ). २ ढं२थ४६

प्रधान-संलेख के लिए धारा ७१४२० के अन्तर्गत उदाहरण ३ द्रष्टव्य है।

४. यूर्नाल् फयुर दी रैन उन्न आन्गवान्न माथेमातिक् के लिए निम्नलिखित निर्देशी संलेख लिखे जाएंगे :—

यूर्नाल्. प्रथमपद.
यूर्नाल फयुर दी रैन उन्न आन्गवान्न माथेमानिक्. ऊ ढं ५५: ढ २६

तथा

क्रेल्ल'स्. प्रथमपद.
क्रेल्ल'स् जर्नल. ऊ ढं५५: ढ२६

क्योंकि, यह द्वितीय नाम से प्रसिद्ध है।

५. एनाल्स. प्रथमपद.
एनाल्स ऑफ बॉटनी. ज ढं३ढ८७

प्रधान-संलेख के लिए धारा ७१४२० के अन्तर्गत उदाहरण ५ द्रष्टव्य है।

६. प्रेसिडेन्सी कालेज. मद्रास. सिटी.
केलेण्डर. म४छं२:ढ४१थं

प्रधान-संलेख के लिए धारा ७१४२० के अन्तर्गत उदाहरण ६ द्रष्टव्य है।

७. **मारवाड़ी** पुस्तकालय, देहली.
वार्षिक रिपोर्ट. २:७छं२:थ१५थं

तथा

वार्षिक. प्रथमपद.
वार्षिक रिपोर्ट (मारवाड़ी पुस्तकालय,), देहली.
२:७ छं२: थ१५ थं

प्रधान-संलेख के लिए धारा ७१४२० के अन्तर्गत उदाहरण ७ द्रष्टव्य है।

८. **बर्मा. हाइकोर्ट.**
इण्डियन लॉ रिपोर्ट्स, रंगून सीरीज्.
ह्४३८सं७ढं

तथा

इण्डियन. प्रथमपद.
इण्डियन लॉ रिपोर्ट्स, रंगून सीरीज्.
ह्४३८सं७ढं

तथा

रंगून. प्रथमपद.
रंगून लॉ रिपोर्ट्स. ह्४३८सं७ढं

तथा

बर्मा. प्रथमपद.
बर्मा लॉ रिपोर्ट्स. ह्४३८सं७ढं

प्रधान-संलेख के लिए धारा ७१४२० के अन्तर्गत उदाहरण ८ द्रष्टव्य है।

७४ नामान्तर-निर्देशि-संलेखः

नामान्तर-निर्देशि-संलेख

७४ सामयिक-प्रकाशनस्य सजाति-नाम-संलेखः

७४०१ ४३ धारानुकरणम् ।

७४०२ **निर्दिश्यमानस्तु विशेषः ।**

७४०२१ **आख्या-प्रथम-पद-द्रष्टव्य-शीर्षकत्वे सामयिक-प्रकाशन-पूर्णाख्या अतिरिक्तानुच्छेदः ।**

७४०२२ **समष्टि-नाम-द्रष्टव्य-शीर्षकत्वे सामयिक-प्रकाशन-प्रधान-संलेखीय-आख्या अतिरिक्तानुच्छेदः ।**

७४ सामयिक-प्रकाशनस्य नामान्तर-निर्देशि-संलेखेषु केवलं तृतीय प्रकारकः एव अर्थात् सजाति-नाम-संलेखः एव लेख्यः ।

७४०१ नामान्तर-निर्देशि-संलेखलेखने चतुर्थाध्यायस्य ४३ धारायाः अनुकरणं कार्यम् ।

७४०२ नामान्तर-निर्देशि-संलेखस्य लेखने निम्ननिर्दिष्टेन विशेषेण उपहिता ४३ धारा अनुसर्तव्या ।

७४०२१ आख्यायाः प्रथमं पदं द्रष्टव्य-शीर्षकं चेत् सामयिक-प्रकाशनस्य पूर्णा आख्या अतिरिक्तानुच्छेद-रूपेण लेख्या ।

७४०२२ समष्टि-नाम द्रष्टव्य-शीर्षकं चेत् सामयिक-प्रकाशनस्य प्रधान-संलेखे या आख्या भवति सा तथैव अतिरिक्तानुच्छेद-रूपेण लेख्या ।

७४ **सामयिक प्रकाशन के लिए नामान्तर-निर्देशी-संलेखों में से केवल सजाति-नाम-संलेख ही अर्थात् तृतीय प्रकार का संलेख ही लिखा जाय ।**

७४०१ **नामान्तर-निर्देशी-संलेख के लिखने में चतुर्थ अध्याय की ४३ धारा का अनुकरण किया जाय ।**

७४०२ **नामान्तर-निर्देशी-संलेख के लिखने में निम्ननिर्दिष्ट विशेष से युक्त ४३ धारा का अनुसरण करना चाहिए ।**

७४०२१ यदि आख्या का प्रथम-पद द्रष्टव्य-शीर्षक हो, तो सामयिक-प्रकाशन की पूर्ण आख्या अतिरिक्तानुच्छेद के रूप में लिखी जाय।

७४०२२ यदि समष्टि का नाम द्रष्टव्य - शीर्षक हो, तो सामयिक-प्रकाशन के प्रधान-संलेख में जो आख्या हो उसे वैसे ही अतिरिक्त-अनुच्छेद के रूप में लिखा जाय।

७४१ "समुच्चितम्" इति सजाति-शीर्षकम्।

७४१० "आवर्तितम्" इति वा।

७४११ सामयिक-प्रकाशन-सजाति-नाम-संलेखे वर्ग-समंकोऽपि।

७४११० वर्ग-समंकः वर्ग-निर्देशि-संलेखीय-वर्ग-समंक-स्थान-शैली यथा निर्देशम्।

७४१ सजाति-नाम-संलेखस्य "समुच्चितम्" इति सजाति शीर्षकं स्वीकार्यम्।

७४१० सजाति-नाम-संलेखस्य "आवर्तितम्" इति वा सजाति-शीर्षकम् इति स्वीकार्यम्।

७४११ सामयिक-प्रकाशनस्य सजाति-नाम-संलेखे वर्ग-समङ्कः अपि लेख्यः।

७४११० सामयिक-प्रकाशनस्य सजाति-नाम-संलेखे लेख्यः वर्ग-समङ्कः तस्मिन्नेव स्थाने, तस्यामेव च शैल्यां लेख्यः यस्मिन् यस्यां च वर्ग-निर्देशि-संलेखे वर्ग-समङ्कः लिख्यते।

७४१ सजाति-नाम-संलेख का "समुच्चित" यह सजाति-शीर्षक स्वीकार किया जाय।

७४१० सजाति-नाम संलेख का "आवर्तित" यह सजाति शीर्षक स्वीकार किया जाय।

७४११ **सामयिक-प्रकाशन के सजाति-नाम-संलेख में लिखा जाने वाला वर्ग-समंक उसी स्थान में और उसी शैली में लिखा जाय जिस स्थान और शैली में वर्ग-निर्देशी-संलेख में वर्ग-समंक लिखा जाता है।**

७४१० "समुच्चित" तथा "आवर्तित" इन परिभाषाओं के लक्षण के लिए अध्याय ०८ द्रष्टव्य है। साधारणतया वर्ग-समङ्क में 'ढं' का होना समुच्चितत्त्व को सूचित करती है। अन्य प्रकाशन सामान्यतः आवर्तित माने जा सकते हैं।

उदाहरण

१. धारा ७३२३०१ के अन्तर्गत उदाहरण १ में दिए हुए सामयिक-प्रकाशन के लिए निम्नलिखित नामान्तर-निर्देशी-संलेख लिखे जायेंगे :—

१. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

दाइचॅ मॉर्गेन्लेन्दिशॅ गज़ेल्शाफ्त.

त्साइश्रिफ्त. ५०४:५५:ढ४५

तथा

२. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

त्साइश्रिफ्त. प्रथमपद.

त्साइश्रिफ्त देर दाइचन मॉर्गेन्लेन्दिशेन.

गज़ेल्शाफ्त. ५०४:५५: ढ ४५

तथा

३. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

जेड. प्रथमपद.

जेड. डी. एम. जी. ५०४ :५५: ढ ४५

२. धारा ७३२३०१ के अन्तर्गत उदाहरण २ में दिए हुए सामयिक-प्रकाशन के लिए निम्नलिखित नामान्तर निर्देशी-संलेख लिखे जायेंगे :—

१. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी.

जर्नल. ऊढं२:थ०७

तथा

२. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

जर्नल. प्रथमपद.

जर्नल ऑफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी.

ऊढं२:थ०७

३. धारा ७३२३०१ के अन्तर्गत उदाहरण ४ के रूप में दिए हुए सामयिक प्रकाशन के लिए निम्नलिखित नामान्तर निर्देशी-संलेख लिखे जायेंगे :—

१. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

यूर्नाल प्रथमपद.

यूर्नाल फ्युर दी रैन उन्न आन्गवान्त माथेमातिक्. उढं५५: ढ २६

तथा

२. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

क्रेल्ल'स्. प्रथमपद.

क्रेल्ल'स् जर्नल. उढं५५:ढ२६

४. धारा ७३२३०१ के अन्तर्गत उदाहरण ८ के रूप में दिए हुए सामयिक-प्रकाशन के लिए निम्नलिखित नामान्तर निर्देशी-संलेख लिखे जायंगे :—

१. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

बर्मा. हाइकोर्ट.

इण्डियन लॉ रिपोर्ट्स, रंगून सीरीज्.

ह्४३८सं७ढं

तथा

२. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

इण्डियन. प्रथमपद.

इण्डियन लॉ रिपोर्ट्स, रंगून सीरीज्.

ह४३८सं७ढं

३. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

रंगून. प्रथमपद.

रंगून लॉ रिपोर्ट्स. ह४३८सं७ढं

४. **समुच्चित.**

और द्रष्टव्य

बर्मा. प्रथमपद.

बर्मा लॉ रिपोर्ट्स. ह४३८सं७ढं

५. धारा ७३२३०१ के अन्तर्गत उदाहरण ३ में दिए गए सामयिक-प्रकाशन के लिए निम्नलिखित नामान्तर-निर्देशी-संलेख लिखा जाएगा :—

समुच्चित.

और दृष्टव्य

ग्रन्थालय. प्रथमपद.

ग्रन्थालय (भारतीय ग्रन्थालय संघ). २ढं२:थ४६

६. धारा ७३२३०१ के अन्तर्गत उदाहरण ६ में दिये हुये सामयिक-प्रकाशन के लिए निम्नलिखित नामान्तक-निर्देशी-संलेख लिखा जायगा :—

आवर्तित.

और द्रष्टव्य

प्रेसिडेन्सी कॉलेज. मद्रास. सिटी.

केलेण्डर. म४छं२:ढ४१थं

७५ समूहक-निर्देशी

समूहक-निर्देशी

७४ **सामयिक-प्रकाशन-समूहक-निर्देश्यात्मक-संपुटस्य प्रधान-संलेखः ।**

१५७ **तत्र अनुच्छेदाः त्रयः ।**

७५२ **यथोचित-पूर्वधाराः प्रमाणम् ।**

७५३ **अनुच्छेदाः यथा --**

१ क्रामक-समंकः (अग्रानुच्छेदः) ;

२ सामयिक-प्रकाशन-प्रधान-संलेखवत् आख्यादिः;

३ निर्देशि-स्वरूप-व्याप्ति-सूचक-आख्या-पत्र-उद्ग्रहणम् ।

७५ सामयिक-प्रकाशनस्य यः संपुटः तस्य समूहक-निर्देशी स्यात् तस्य कृते केवलं प्रधान-संलेख एव लेख्यः ।

७५१ सामयिक-प्रकाशन-समूहक-निर्देशि-संलेखस्य प्रधान संलेखे यथाक्रमं त्रयः अनुच्छेदाः भवन्ति ।

७५२ निम्ननिर्दिष्टानाम् अनुच्छेदानाम् उपकल्पने लेखने च तेषां यथोचिताः पूर्व-निर्दिष्टाः धाराः प्रमाणत्वेन स्वीकार्याः ।

७५३ ते अनुच्छेदाः निम्नलिखिताः भवन्ति—

१ क्रामक-समङ्कः (अग्रानुच्छेदः) प्रथमः अनुच्छेदः भवति;

२ यस्य सामयिक-प्रकाशनस्य निर्देशी भवति तस्य सामयिक-प्रकाशनस्य प्रधान-संलेखवत् लिखितः आख्यादिः द्वितीयानुच्छेदः भवति;

३ आख्या-पत्रस्य तावतः अंशस्य उद्ग्रहणं,येन निर्देशिनः स्वरूपं व्याप्तिश्च सूच्यते सः अंशः च तृतीयानुच्छेदः भवति ।

७५ सामयिक-प्रकाशन का जो संपुट उसका समूहक-निर्देशी हो उसके लिए केवल प्रधान-संलेख ही लिखा जाय।

७५१ सामयिक-प्रकाशन के समूहक-निर्देशी-संलेख के प्रधान-संलेख में क्रमशः तीन अनुच्छेद होते हैं।

७५२ निम्ननिर्दिष्ट अनुच्छेद के उपकल्पन और लेखन में उनकी यथोचित पूर्व-निर्दिष्ट-धाराएं प्रमाण रूप से स्वीकार की जायं ।

७५३ वे अनुच्छेद निम्नलिखित होते हैं :—

१ क्रामक-समंक (अग्रानुच्छेद) प्रथम अनुच्छेद होता है;

२ जिस सामयिक-प्रकाशन का निर्देशी हो उस सामयिक-प्रकाशन का आख्यादि सामयिक प्रकाशन के प्रधान-संलेख की भांति लिखा हुआ, द्वितीय अनुच्छेद होता है;

३ आख्या-पत्र के उतने अंश का उद्ग्रहण जिससे निर्देशी के स्वरूप और व्याप्ति का सूचन हो वह अंश तृतीय अनुच्छेद होता है।

७५३ उदाहरण

जढं३ढ८७इं ख१

एनाल्स आफ बाटनी.

इण्डेक्स टु वा. १—१०; (१८८७—१८९६).

---

७६ प्रधान-पत्रक-पृष्ठम्

प्रधान-पत्रक-पृष्ठ

७६१ **सामयिक-प्रकाशन-प्रधान-पत्रक-पृष्ठस्य दक्षिणार्धे अंशाः त्रयः ।**

७६१० यथा ––

१ निर्देशि-संलेख-शीर्षकाणि;

२ नामान्तर-निर्देशि-संलेख-शीर्षकाणि;

३ विषयान्तर-वर्ग-समंक-संवादि-संपुट-समंक-संवत्सरौ च।

७६१ सामयिक - प्रकाशनस्य यत् प्रधान-पत्रकं स्यात् तस्य पत्रकस्य पृष्ठस्य दक्षिणार्धे यथाक्रमं निम्ननिर्दिष्टाः त्रयः अंशाः भवन्ति ।

७६१ सामयिक-प्रकाशन का जो प्रधान-पत्रक हो उस पत्रक के पृष्ठ के दक्षिणार्ध में क्रमशः निम्ननिर्दिष्ट तीन अंश होते हैं।

७६१० वे तीन अंश निम्नलिखित होते हैं:––

१ निर्देशी-संलेख का शीर्षक प्रथम अंश होता है;

२ नामान्तर-निर्देशी-संलेख के शीर्षक द्वितीय अंश होता है;

३ विषयान्तर-समंक, संवादी संपुट का समंक और संवत्सर तृतीय अंश होता है।

७६२ वामार्धे अंशाः चत्वारः।

७६२० यथा ––

प्रति-संपुट-संवत्सर-पुस्तक-परिग्रहण-समंकाः।

७६२०१ पृथक् वाक्यम्

७६२०२ यथासंभवं समावेशांकनम्।

७६२ वामार्धे यथाक्रमं निम्ननिर्दिष्टाः चत्वारः अंशाः भवन्ति ।

७६२० ते अंशाः निम्नलिखिताः भवन्ति—

प्रत्येकस्य संपुटस्य समङ्कः, संवत्सरः, पुस्तक-समङ्कः परिग्रहण-समङ्कः च ।

७६२०१ प्रत्येकः अंशः पृथक् वाक्यम् इति ज्ञेयः ।

७६२ नामार्ध में क्रमशः निम्नलिखित चार अंश होते हैं ।

७६२० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

प्रत्येक संपुट का समंक, संवत्सर, पुस्तक-समंक और परिग्रहणसमंक ।

७६२०१ प्रत्येक अंश पृथक् वाक्य माना जाय ।

७६२०२ यथासंभव समावेशांकन स्वीकार किया जाय ।

अध्याय ८

सामयिक-प्रकाशनम्

सामयिक-प्रकाशन

जटिल-प्रकाराः

जटिल-प्रकार

८ सामयिक-प्रकाशन-मूल-जटिलताः अष्टादश।

८० यथा —

११ संपुट-अवधि-अन्तरम्;

१२ नवमाला-प्रथममाला-द्वितीयमाला-प्रभृति-नाम-भृद्-एकाधिक-कक्षा-संपुट-समंकनम्;

१३ एकाधिक-कक्षा-संपुट-सह-समंकनम्;

२१ कदाचित्-संपुट-अप्रकाशनम्,संपुट-समंकन-प्रचलनं च;

२२ अप्रकाशनादि-हेतुक-संपुट-समंकन-प्रचलन-विच्छेद-नियमहीनत्व-अन्यतरत्वम्;

२३ एकाधिक-संपुट-एकत्व-प्रकाशन-संपुटितत्व. नियमहीनत्व अन्यतरत्वम्;

३१ आख्या-अन्तरम्, संपुट-पूर्व-समंकन-प्रचलनं च;

३२ आख्या-अन्तरम्, संपुट-पूर्व-समंकन-अंतरं च;

४१ एकीभूत-प्रकाशन-अन्यतम-आख्यायाम्
एकाधिक-सामयिक-प्रकाशन-एकीभावः
संपुट तदीय-पूर्व-समंकन-प्रचलनं च;

४२ एकीभूत-प्रकाशन-अन्यतम-आख्यायाम्
एकाधिक-सामयिक-प्रकाशन-एकीभावः
संपुट-पूर्व-समंकन-अंतरं च;

४३ एकीभूत-प्रकाशन-अन्यतम-वर्ग-समंक-नव-
आख्यायाम् एकाधिक-सामयिक-प्रकाशन-
एकीभावः;

४४ वर्ग-समंक-अन्तर-युक्त-नवाख्यायाम् एका-
धिक-सामयिक-प्रकाशन-एकीभावः;

५१ एक-सामयिक-प्रकाशन-अनेकीभावः,
तदन्यतम-मूलवर्ग-समंक-स्वीकारश्च;

५२ एकाधिक-सामयिक-प्रकाशन-अनेकीभावः,
मूलवर्ग-समंक-परित्यागश्च;

६१ पृथक्-पृष्ठांकन-आख्यापत्र-रहित-एकात्मक-
पुस्तक-अन्यतर अनुगतत्वम्;

६२ पृथक्-पृष्ठांकन-आख्या-पत्र-सहित-एकात्मक
पुस्तक-अन्यतर-अनुगतत्वम्;

६३ पृथक्-पृष्ठांकन-आख्या-पत्र-सहित-स्वतंत्र-
सामयिक-प्रकाशनत्व-उचित-अनुगत-अति-
रिक्त-अन्यतर-संपुट-कक्षा-युक्तत्वम्;

६४ ६२-६३ प्रकारक-अनुगतानां प्रधान-सामयिक-प्रकाशन-समूहक-निर्देशि-समाविष्टत्वं च;

८० ताः अष्टादश जटिलताः निम्नलिखिताः भवन्ति—

११ यत्र संपुटानां प्रकाशनस्य अवधेः अन्तरं भवति सः प्रकारः ११ प्रकारः भवति;

१२ यत्र 'नवमाला' इति 'प्रथममाला' इति 'द्वितीयमाला' इति वा तत्सदृशं वा नाम धारयत्याम् एकाधिकायां कक्षायां संपुटानां समङ्कनं भवति सः प्रकारः १२ प्रकारः भवति;

१३ यत्र संपुटानां एकाधिक-कक्षायां सहैव समङ्कनं भवति सः प्रकारः १३ प्रकारः भवति;

२१ यत्र कदाचित् संपुटस्य अप्रकाशनम् अथ च संपुटानां पूर्वं समङ्कनस्य प्रचलनं भवति सः प्रकारः २१ प्रकारः भवति ;

२२ यत्र संपुटस्य अप्रकाशनेन अन्येन वा हेतुना संपुटानां समङ्कनं विच्छिन्नम् अन्येन वा प्रकारेण नियमहीनं भवति सः प्रकारः २२ प्रकारः भवति;

२३ यत्र एकाधिकानां संपुटानाम् एकत्वेन प्रकाशनं संपुटनं वा भवति सः प्रकारः २३ प्रकारः भवति;

३१ यत्र आख्यायै उपयुक्तस्य नाम्नः अन्तरं (परिवर्तनम्) भवति संपुटानां च पूर्वसमङ्कनं प्रचलति सः ३१ प्रकारः भवति;

३२ यत्र आख्यायै उपयुक्तस्य नाम्नः अन्तरं (परिवर्तनम्) भवति, संपुटानां च पूर्वसमङ्कनस्य अपि अन्तरं च भवति सः प्रकारः ३२ प्रकारः भवति;

४१ यत्र एकाधिकानि सामयिक-प्रकाशनानि एकी-भवन्ति एकीभाव-विषयाणां च तेषाम् एकस्य कस्यचित् आख्यायामेव तेषामेकीभावः भवति, संपुटानां समङ्कने च तया आख्यया विशिष्टस्य सामयिक-प्रकाशनस्य पूर्व-समङ्कनं प्रचलति सः प्रकारः ४१ प्रकारः भवति;

४२ यत्र एकाधिकानि सामयिक-प्रकाशनानि एकी-भवन्ति, एकीभाव–विषयाणां च तेषामेकस्य कस्य-चित् आख्यायामेव तेषामेकीभावः भवति, संपुटानां समङ्कने च तया आख्यया विशिष्टस्य सामयिक-प्रकाशनस्य पूर्वसमङ्कनस्य अपि अन्तरं भवति सः प्रकार ४२ प्रकारः भवति;

४३ यत्र एकाधिकानि सामयिक-प्रकाशनानि एकीभवंति, एकीभूय च तानि एकां कांचन नवीनाम् एव आख्यां स्वीकुर्वन्ति, तया च आख्यया, एकीभूतानां साम-यिक-प्रकाशनानाम् एकस्य कस्यचन वर्ग-समङ्कः स्वीक्रियते सः प्रकारः ४३ प्रकारः भवति;

४४ यत्र एकाधिकानि सामयिक-प्रकाशनानि एकी-भवन्ति, एकीभूय च तानि एकां कांचन नवीनाम् एव आख्यां स्वीकुर्वन्ति, तया च आख्यया, एकीभूतानां सामयिक-प्रकाशनानां मूल-वर्ग-समङ्कस्य सर्वथा परित्यागः च क्रियते सः प्रकारः ४४ प्रकारः भवति।

५१ यत्र एकमेव सामयिक-प्रकाशनं विच्छेदम् आपद्य अनेकधा भवति, विच्छिन्नानां च तेषाम् एकं किंचित् मूल-वर्ग-समङ्कं स्वीकरोति सः प्रकारः ५१ प्रकारः भवति;

५२ यत्र एकमेव सामयिक-प्रकाशनं विच्छेदम् आपद्य अनेकधा भवति, मूल-वर्ग-समङ्कस्य च सर्वथा परित्यागः क्रियते सः प्रकारः ५२ प्रकारः भवति;

६१ यत्र पृथक् पृष्ठाङ्कनम् आख्या-पत्रं च विनैव एकात्मकानि पुस्तकानि वा अनुगतानि भवन्ति सः प्रकारः ६१ प्रकारः भवति;

६२ यत्र पृथक् पृष्ठाङ्कनम् आख्यापत्रेण च सह एकात्मकानि पुस्तकानि वा अनुगतानि भवन्ति सः प्रकारः ६२ प्रकारः भवति;

६३ यत्र पृथक् पृष्ठाङ्कनेन आख्यापत्रेण च सहितानां, स्वतन्त्रतया पृथक् स्वेनैव सामयिक-प्रकाशनत्वार्हाणाम्, अनुगतानाम् अतिरिक्ताणां च संपुटानां कक्षा भवति सः प्रकारः ६३ प्रकारः भवति;

६४ यत्र ६२ प्रकारकाणि ६३ प्रकारकाणि च अनुगतानि प्रधान-सामयिक-प्रकाशनस्य समूहक-निर्देशिनि समाविष्टानि भवन्ति सः प्रकारः ६४ प्रकारः भवति।

८ **सामयिक प्रकाशनों की मूल जटिलताएं अठारह प्रकार की होती हैं।**

८० **वे अठारह प्रकार निम्नलिखित हैं :—**

११ जहां संपुटों के प्रकाशन की अवधि में अन्तर होता है, वह प्रकार ११ होता है;

१२ जहां 'नव माला' 'प्रथम माला' अथवा 'द्वितीय माला', अथवा उसके समान नाम धारण करने वाली एक से अधिक कक्षाओं में संपुटों का समंकन होता है, वह प्रकार १२ होता है;

१३ जहां संपुटों का एक से अधिक कक्षाओं में साथ ही समंकन होता है, वह प्रकार १३ होता है;

२१ जहां बीच में ही कहीं संपुट का अप्रकाशन और साथ ही संपुटों

के पूर्व-समंकन का प्रचलन चालू होता है, वह प्रकार २१ होता है;

२२ जहां संपुट का अप्रकाशन से अथवा अन्य हेतु से संपुटों का समंकन विच्छिन्न अथवा नियमहीन होता है, वह २२ प्रकार होता है;

२३ जहां एक से अधिक संपुटों का एक रूप में प्रकाशन अथवा संपुटन होता है, वह प्रकार २३ होता है;

३१ जहां आख्या के लिए उपयुक्त नाम में परिवर्तन हो और संपुटों का पूर्व-समंकन चालू रक्खा जाय, वह प्रकार ३१ होता है;

३२ जहां आख्या के लिए उपयुक्त नाम में परिवर्तन हो और संपुटों के मूल-समंकन में भी अन्तर हो, वह ३२ प्रकार होता है;

४१ जहां एक से अधिक सामयिक-प्रकाशन एक होने वाले उन सबमें से किसी एक की आख्या में ही एक हो जायं और संपुटों के समंकन में उस आख्या से विशिष्ट सामयिक-प्रकाशन का पूर्व-समंकन ही चालू रहे, वह प्रकार ४१ होता है;

४२ जहां एक से अधिक सामयिक-प्रकाशन एक होने वाले उन सब में से किसी एक की आख्या में ही एक हो जायं और संपुटों के समंकन में उस आख्या से विशिष्ट सामयिक-प्रकाशन के पूर्व-समंकन में भी अन्तर हो, वह ४२ प्रकार होता है;

४३ जहां एक से अधिक सामयिक-प्रकाशन एक हो जायं और उन एकीभूत सामयिक-प्रकाशनों के द्वारा कोई एक नवीन ही आख्या स्वीकार कर ली जाय और उस आख्या द्वारा एकीभूत सामयिक-प्रकाशनों में से किसी एक का वर्ग-समंक स्वीकार किया जाय, वह प्रकार ४३ होता है;

४४ जहां एक से अधिक सामयिक-प्रकाशन एक हो जाय उनके द्वारा कोई एक नवीन ही आख्या स्वीकार कर ली जाय और

उस आख्या द्वारा एकीभूत सामयिक-प्रकाशनों के मूलभूत-वर्ग-समंक का सर्वथा परित्याग किया जाय, वह प्रकार ४४ होता है।

५१ जहां एक ही सामयिक-प्रकाशन विच्छेद प्राप्त करके अनेक हो जाय और उन विच्छिन्नों में से कोई एक मूल-वर्ग-समंक को ही स्वीकार करले, वह प्रकार ५१ होता है;

५२ जहां एक ही सामयिक-प्रकाशन विच्छेद प्राप्त करके अनेक हो जाय और मूल-वर्ग-समंक का सर्वथा परित्याग किया जाय, वह प्रकार ५२ होता है;

६१ जहां पृथक् पृष्ठांकन और आख्या-पत्र के बिना ही एकात्मक अथवा पुस्तक-अनुगत हों, वह प्रकार ६१ होता है;

६२ जहां पृथक् पृष्ठांकन और आख्या-पत्र से युक्त एकात्मक अथवा पुस्तक अनुगत हो, वह प्रकार ६२ प्रकार होता है;

६३ जहां पृथक् पृष्ठांकन और आख्या पत्र से युक्त, जिन्हें स्वतन्त्र रूप से पृथक् सामयिक-प्रकाशन ही माना जाय, ऐसे अनुगत और अतिरिक्त संपुटों की कक्षा होती है, वह प्रकार ६३ होता है;

६४ जहां ६२ के और ६३ प्रकार के अनुगत प्रधान सामयिक-प्रकाशन के समूहक-निर्देशी में समाविष्ट होते हैं, वह प्रकार ६४ होता है;

८० गणितज्ञों की तरह सर्वप्रथम हम केवल इन मूल जटिलताओं में से प्रत्येक की पृथक्-पृथक चर्चा करेंगे, अर्थात् जहां इन जटिलताओं में से प्रत्येक स्वतन्त्र होंगीं तथा अन्य किसी भिन्न प्रकार की जटिलता से मिश्रित न होंगी। साथ ही उन जटिलताओं के सुलझाने की तथा उनके सुलझाने के उपायों पर विचार करेंगे।

८१ संपुटांकन विशेषताः

संपुटांकन की विशेषता

८११ **८ धारा-११ प्रकारक-जटिलतायां प्रति-संपुट-अवधिकं पृथक् प्रधान-पत्रकम्।**

८१११ तानि-सन्तत-पत्रक-संघाताः ।

८११२ अन्त्य-इतर-पत्रकेषु प्रकाशन-पूरित-समंकनम् ।

८११ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु ११ प्रकारका जटिलता-स्यात् तत्र संपुटानां प्रत्येकम् अवधिम् अधिकृत्य पृथक् प्रधान-पत्रकं लेख्यम् ।

८१११ पूर्वोक्त-प्रकारके प्रत्येकस्मिन् पत्रके वर्ग-समङ्कः एक एव स्यादिति तानि सर्वाणि अपि पत्रकाणि ०३८१ धारानुसारं सन्तत-पत्रक-संघातः इति उच्यते ।

८११२ अन्त्यात् पत्रकात् इतरेषु सर्वेषु पत्रकेषु समङ्कनम् ७१५२ धारानुसारम् 'प्रकाशन-पूरित-समङ्कनम्' इति उच्यते ।

८११ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ११ प्रकार की जटिलता हो वहां संपुटों की प्रत्येक अवधि को लेकर पृथक् प्रधान-पत्रक लिखा जाय ।

८१११ पूर्वोक्त प्रकार के प्रत्येक पत्रक में वर्ग-समंक एक ही होगा, अतः वे सभी पत्रक ०३८१ धारा के अनुसार सन्तत-पत्रक-संघात माने जायं ।

८११२ अन्त्य-पत्रक से अन्य दूसरे सभी पत्रकों में समंकन ७१५२ धारा के अनुसार प्रकाशन-पूरित-समंकन कहा जाता है ।

८११२ इस अध्याय की धारा ८९३ के अन्तर्गत उदाहरण २.२ २.३, ३.१२ तथा ३.१३ द्रष्टव्य हैं ।

८१२ ८ धारा-१२ प्रकारक-जटिलतायां प्रतिकक्षां पृथक्-प्रधान पत्रकम् ।

८१२० आख्या 'संपु' अन्तराले माला-नाम ।

८१२०१ **पृथक् वाक्यम् ।**

८१२१ **तानि सन्तत-पत्रक-संघातः ।**

८१२२ **अन्त्य-इतर-पत्रकेषु-प्रकाशन-पूरित-समङ्कनम् ।**

८१२ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु १२ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र संपुटानां प्रत्येकां कक्षाम् अधिकृत्य पृथक् प्रधान-पत्रकं लेख्यम् ।

८१२० आख्यायाः 'संपु' इत्यस्य च अन्तराले मालायाः नाम लेख्यम् ।

८१२०१ तत् मालायाः नाम पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

८१२१ पूर्वोक्त-प्रकारके प्रत्येकस्मिन् पत्रके वर्ग-समङ्कः एक एव स्यादिति तानि सर्वाणि अपि पत्रकाणि ०३८१ धारानुसारं सन्तत-पत्रक-संघातः इति उच्यते ।

८१२२ अन्त्यात् पत्रकात् इतरेषु सर्वेषु पत्रकेषु समङ्कनम् ७१५२ धारानुसारं 'प्रकाशन-पूरित-समङ्कनम्' इति उच्यते ।

८१२ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से १२ प्रकार की जटिलता हो वहां संपुटों की प्रत्येक कक्षा के लिए पृथक्-प्रधान-पत्रक लिखा जाय ।

८१२० आख्या तथा 'संपु.' इन दोनों के बीच माला का नाम लिखा जाय ।

८१२०१ वह माला का नाम पृथक् वाक्य माना जाय ।

८१२१ पूर्वोक्त प्रकार के प्रत्येक पत्रक में वर्ग-समंक एक ही होगा अतः वे सभी पत्रक ०३८१ धारा के अनुसार सन्तत-पत्रक-संघात कहे जाते हैं ।

८१२२ अन्त्य-पत्रक से अन्य सभी पत्रकों में समंकन ७१५२ धारा के अनुसार 'प्रकाशन-पूरित-समंकन' कहा जाता है ।

८१२२ इस अध्याय की धारा ८९३ के अन्तर्गत उदाहरण ३.३ तथा ३.१२ द्रष्टव्य हैं।

८१३ ८ धारा १३ प्रकारक-जटिलतायां ८१२ धारोपधाराः प्रमाणम्।

८१३० निर्दिश्यमानस्तु विशेषः।

८१३०१ अवान्तर-कक्षा-संपुट-समंकनम् अपि।

८१३०२ वृत्त-कोष्ठके।

८१३०३ प्रकृताध्यायान्त्य-उदाहरणवत्।

८१३ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु १३ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र ८१२ धारा तदुपधाराः च अनुसर्तव्याः।

८१३०१ यत्र यत्र संपुटानां समङ्कनं स्यात् तत्र तत्र अवान्तर-कक्षायाः संपुटानां समङ्कनमपि ततः परं लेख्यम्।

८१३०२ तत् वृत्त-कोष्ठके लेख्यम्।

८१३०३ प्रकृतस्य अध्यायस्य अन्तिमे उदाहरणे यथालिखितमस्ति तथैव संपुट-समङ्कनं लेख्यम्।

८१३ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से १३ प्रकार की जटिलता हो, वहां ८१२ धारा और उसकी उपधाराओं का अनुसरण किया जाय।

८१३० नीचे दिया हुआ विशेष ध्यान में रखा जाय।

८१३०१ जहां-जहां संपुटों का समंकन हो वहां अवान्तर कक्षा के संपुटों का समंकन भी उसके आगे लिखा जाय।

८१३०२ वह वृत्त-कोष्ठक में लिखा जाय।

८१३०३ प्रकृत अध्याय के अन्तिम उदाहरण में जैसे लिखा हुआ है वैसे ही संपुट-समंकन लिखा जाय।

८१३ किस कक्षा को वृत्त कोष्ठकों में लिखा जाय यह प्रश्न तो प्रत्येक स्थल की विशेषताओं के आधार पर सुलझाया जा सकेगा अर्थात् सामयिक प्रकाशन में ही जिस कक्षा को जिस प्रकार की प्रधानता अथवा गौणता दी हो उसी के आधार पर निर्णय किया जायेगा ।

८२ व्याहृत-प्रकाशनम्
व्याहृत-प्रकाशन

८२१ ८ धारा-२१ प्रकारक-जटिलतायाम् अतिरिक्त-अधिसूचनम् ।

८२१० वृत्त-कोष्ठके ।

८२११ तत्रांशौ द्वौ ।

८२११० यथा —

१ अप्रकाशित-संपुट-संवत्सरः;

२ 'वर्षे संपुटः न' इति वाक्यांशः च ।

८२१ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु २१ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम् ।

८२१० तत् वृत्त-कोष्ठके लेख्यम् ।

८२११ तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः ।

८२१ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से २१ प्रकार की जटिलता हो वहां अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय ।

८२१० वह वृत्त-कोष्ठक में लिखा जाय ।

८२११ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं ।

८२११० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ अप्रकाशित संपुटों के संवत्सर; और

२ 'वर्ष में संपुट नहीं' यह वाक्यांश ।

८२१ इस प्रकार की जटिलता बहुधा पाई जाती है। उदाहरणार्थ, अमेरिकन बिसन सोसायटी की अनुअल रिपोर्ट १९०५ में संपुट १ के रूप में प्रारम्भ हुई थी। वह आज भी चल रही है, कन्तु १९२१ तथा १९२२ में उसका कोई अंक प्रकाशित नहीं हुआ था।

प्रथम विश्वयुद्ध में अनेक सामयिक प्रकाशनों के प्रकाशन में व्याघात पड़ गया था। उदाहरणार्थ, वाशिंगटन डी. सी. के असोसिएशन आफ आफिशल एग्रिकल्चरल केमेस्ट्स का जर्नल १९१५ में आरम्भ हुआ था। तब से वह एक संपुट प्रतिवर्ष के क्रम से निरन्तर प्रकाशित होता चला आ रहा है, किन्तु १९१७ से १९१९ तक उक्त सामयिकों का कोई अंक न निकल सका। परिणाम यह हुआ कि १९२० के संपुट का समंक ३ है, ६ नहीं। इसके अतिरिक्त, हिस्टरी आफ साइन्सेज सोसायटी, वाशिंगटन डी. सी. ने १९१३ में इसिस सामयिक आरम्भ किया था। उसे जुलाई १९१४ से अगस्त १९१९ तक बन्द रखना पड़ा था। परिणाम यह हुआ कि १९१३ के संपुट का समंक तो १ है, किन्तु १९२० के संपुट का समंक ८ नहीं दिया गया, अपितु २ दिया गया है। इसी प्रकार नार्थ केरोलाइना फार्मास्युटिकल असोसिएशन के द्वारा १९१५ में आरम्भ केरोलाइना जर्नल आफ फार्मेसी १९१८ से १९२१ के बीच बन्द कर दिया गया था। परिणाम यह हुआ कि १९२२ के संपुट का समंक ८ नहीं दिया गया है, अपितु ४ दिया गया है।

हम एक दूसरा उदाहरण, प्रस्तुत करते हैं। पोर्टलैंड सोसायटी आफ नेचुरल हिस्टरी के जर्नल के प्रथम संपुट का प्रथम अवदान १८६४ में प्रकाशित हुआ था, किन्तु अब तक उसका द्वितीय अवदान नहीं प्रकाशित हुआ। एक और उदाहरण लीजिये। उसी परिषद ने प्रोसीडिंग्स शीर्षक से एक और सामयिक प्रकाशन प्रकाशित किया था। १८६२ से १९३० वर्षों के बीच उसके केवल ४ संपुट प्रकाशित हुए। किन्तु परिषद् अब भी सक्रिय है तथा कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि आगे के संपुट नहीं प्रकाशित होंगे।

हम एक और उदाहरण उपस्थित करते हैं जिसमें एक सामयिक प्रकाशन शैशवावस्था में ही समाप्त मान लिया गया था। चिर काल तक यही मान लिया गया था कि अब वह सदा के लिए समाप्त हो गया। किन्तु आश्चर्य की घटना यह घटी कि एक शताब्दी के बाद उसका पुनर्जन्म हो गया। "कनेक्टिकट एकेडेमी आफ हार्टस एण्ड साइंसेज १७९९ ई. में संघटित हुई थी तथा राज्य के द्वारा उसे

अधिकार-पत्र दिया गया था। १८१० में उसने एकेडेमी के मेमायर्स के प्रथम संपुट का प्रथम भाग प्रकाशित किया। . .इस संपुट का भाग २ सन् १९११ में प्रकाशित हुआ, भाग ३ सन् १८१३ में तथा भाग ४ सन् १८१६ में प्रकाशित हुआ ....। १८१६ से लेकर उस परिषद् के सामने पढ़े गए शास्त्रीय निबन्ध अमेरिकन जर्नल आफ साइंस के द्वारा ही अधिकतर प्रकाशित हुआ करते थे। उस जर्नल का प्रथम अवदान अगस्त १८१८ में प्रकाशित हुआ था।" [31] सच पूछा जाय तो अवदान का सर्वप्रथम लेख येल कालेज के प्राध्यापक श्री फिशर का एसे ऑन म्युजिकल टेम्परमैन्ट है, जो निम्नलिखित टिप्पण के साथ प्रकाशित हुआ था:—"कनेक्-टिकट एकेडेमी के पाण्डुलिपि निबन्धों से, जो अब उनकी अनुमति द्वारा प्रकाशित किए जा रहे हैं"। कनेक्टिकट एकेडेमी ऑफ आर्टस एण्ड साइंसेज़ के मेमायर्स के प्रथम संपुट को पूर्ण होने में ही सात वर्ष लगे थे। बीच में यह निश्चय किया जाने लगा था कि उसका अन्त चुका है। ऊपर उद्धृत अँश में जिस प्रकार सूचित किया जा चुका है उस के अनुसार,१८१८ से १८६५ तक मेमायर्स अमेरिकन जर्नल आफ साइँस में ही प्रकाशित हुआ करता था। १८६६ ई. में एकेडेमी ने अपना दूसरा समुच्चित ट्रान्जेक्शन्स इस शीर्षक से प्रकाशित करना आरम्भ किया। १८६६ से १९०९ तक मेमायर्स उसी में प्रकाशित हुआ करता था। किन्तु जिन दिनों ट्रान्जेक्शन भी चालू ही था, तथा प्रायः एक शताब्दी के व्यवधान के पश्चात्, १९१० ई. में मेमायर्स का संपु. २ प्रकाशित हुआ। इससे सभी को आश्चर्य होना स्वाभाविक था। इस प्रकार, उस सामयिक ने अप्रकाश जीवन में एक पराकाष्ठा सी स्थापित कर ली। दुर्भाग्यवश वह अपने समयानुसार सर्वदा प्रकाशित न हो सका। सप्तम संपुट को साधारण रीति से १९१५ में प्रकाशित होना चाहिये था, किन्तु वह वस्तुतः प्रकाशित हुआ १९२० में। तब से लेकर आज तक यह पता नहीं लगा कि क्या यह समाप्त हो चुका है अथवा उसने अवकाश ग्रहण कर लिया है। किन्तु उसका कनिष्ठ भ्राता ट्रांजेक्शन जीवित है। यह वही कनिष्ठ भ्राता है जिससे वह ज्येष्ठ भ्राता १९१० में अलग हो चुका था। कनिष्ठ भ्राता सर्वथा स्वस्थ एवं चालू है।

---

३१ अमेरिकन जर्नल आफ साइंस के प्रथम संपुट के प्रथम अमेरिकन जर्नल आफ साइंसेज एण्ड आर्टस. संपु. १२. पृ. १३८. १८६६.

इस प्रकार की जटिलता के उदाहरणों के प्रधान संलेख नीचे दिये जाते हैं :–

१. इलंढं७३:थ२४

इसिस (हिस्टरी ऑफ साइंस सोसायटी, वाशिंगटन, डी. सी.). संपु. १—१५ १९१३—१९२३.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९१३—].

{ १९१४—१९१९ में संपु. नहीं }.

---

२. ञ: ग ढं ७३: ढ ८४

जर्नल ऑफ दि असोसिएशन ऑफ एग्रिकल्चरल केमिस्ट्स. (वाशिंगटन. डी. सी.) . संपु. १—१६. १९१५—१९३३.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९१५—].

{ १९१७—१९१९ में संपु. नहीं }.

---

८२२ ८ धारा-२२प्रकारक-जटिलतायाम् अतिरिक्त-अधिसूचनम् ।

८२२० वृत्त-कोष्ठके ।

८२२१ तत्रांशौ द्वौ ।

८२२१० यथा ––

१ अप्रकाशित-संपुट-समङ्कः;

२ "संपुटः न प्रकाशितः" इति वाक्यांशः च ।

८२२ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु २२ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम्

८२२० तत् वृत्त-कोष्ठके लेख्यम् ।

८२२१ तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः ।

८२२ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से २२ प्रकार की जटिलता हो, वहां अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय ।

८२२० वह वृत्त-कोष्ठक में लिखा जाय ।

८२२१ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं :—

८२२१० वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ अप्रकाशित संपुट का समंक; और

२ "संपुट प्रकाशित नहीं" ये पद ।

८२२१० इस प्रकार की जटिलता २१ की जटिलता की भांति इतनी अधिक नहीं पाई जाती ; किन्तु इसका सर्वथा अभाव नहीं है। "अमेरिकन लेरिंगो लॉजिकल, ह्निोलॉजिकल तथा आटोलाजिकल सोसायटी" ट्रान्जेक्शन्स १८९६ में प्रकाशित संपुट २ से ही उपलब्ध होते हैं । यह प्रतीत होता है कि संपुट १ कभी प्रकाशिन ही नहीं हुआ । इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण है-- "सर्टिफाइड मिल्क प्रोडयूसर्स असोसिएशन ऑफ अमेरिका के प्रोसीडिंग्स का । इसका १९१० में प्रकाशित संपुट तीसरा है। प्रथम तथा द्वितीय संपुट कभी प्रकाशित हुए ही नहीं ।

यहां एक दूसरा विचित्र उदाहरण उपस्थित किया जाता है । "अमेरिकन ऑटोलॉजिकल सोसायटी" के ट्रान्जेक्शन्स के विषय में, प्रथम संपुट का प्रथम अवदान केवल हस्तलिखित रूप में ही प्रकट किया गया था । तथा दूसरा संपुट "अमेरिकन आपथेल्मालॉजिकल सोसायटी" के प्रोसीडिंग्स के साथ प्रकाशिन किया गया था । परिणाम यह हुआ था कि ट्रान्जेक्शन्स के संघात में द्वितीय संपुट है ही नहीं, तथा प्रथम संपुट अपूर्ण है। इस के अतिरिक्त "पोटेटो असोसिएशन ऑफ अमेरिका" के प्रोसीडिंग्स के संपुट २ तथा ५-७ कभी प्रकाशित ही नहीं हुए, यद्यपि अन्य संपुट नियमितता के साथ प्रकाशित होते आए हैं।

न्यूयॉर्क नगर के "केमिस्ट्स' क्लब" के द्वारा प्रकाशित परकोलेटर नाम के अनियमित प्रकाशन के प्रथम पांच संपुट १९०९-१९२२ वर्षों में प्रकाशित हुए थे। १९२२-१९२५ वर्षों से प्रकाशन के ५६-६२ अवदान प्रकाशित किए गए, किन्तु उन्हें कभी भी संपुट के रूप में एकत्रित नहीं किया गया । परन्तु १९२६ के अवदान प्रकाशन के अष्टम संपुट के अंश रूप में घोषित किए गए थे। इसी प्रकार "कोलोराडो सोसायटी ऑफ इंजीनियर्स" के द्वारा प्रकाशित इंजीनियर्स बुलेटिन ने १९१८ तथा १९२२ के बीच अपने प्रथम ५५ अवदान प्रकट किए, किन्तु उन्हें संपुट के रूप में एकत्रित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया ।

किन्तु १६२३ से लेकर एक वर्ष में प्रकाशित अवदानों का संपुट बनाया जा रहा है। साथ ही १६२३ के संपुटों का सप्तम समंक दिया गया है।

इस प्रकार की जटिलता वाले सामयिक के प्रधान संलेख का एक उदाहरण यहां दिया जा रहा है :—

उदाहरण

ढट३११ढं७३:थ०८

प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सर्टिफाइड मिल्क प्रोड्यूसर्स असोसिएशन ऑफ अमेरिका. संपु. ३–१६. १६१०–१९३३.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १६१०—].

{१–२ संपु. प्रकाशित नहीं }.

---

८२३ **८ धारा २३ प्रकारक-जटिलतायाम् अतिरिक्त-अधिसूचनम् ।**

८२३० **वृत्त-कोष्ठके ।**

८२३१ **तत्रांशौ द्वौ ।**

८२३१० **यथा —**

१ एक-संपुट-रूप-प्रकाशित-संपुट-समंक-गणः;

२ "संपु सहैव प्रकाशितः" इति वाक्यांशः च;

२० समंक-गण-युगलान्तराले अर्ध-विरामः ।

८२३ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु २३ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम् ।

८२३० तत् वृत्त-कोष्ठके लेख्यम् ।

८२३१ तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः ।

८२३ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से २३ प्रकार की जटिलता हो वहां अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय ।

८२३० वह वृत्त-कोष्ठक में लिखा जाय।
८२३१ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं।
८२३१० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ एक संपुट के रूप में प्रकाशित संपुट का समंक-गण;
और
२ "संपु. साथ ही प्रकाशित" यह वाक्यांश;

२० दो समंक-गणों के बीच में अर्ध विराम किया जाय।

८२३ इस अध्याय की धारा ८६३ के अन्तर्गत उदाहरण २.१ तथा २.२ द्रष्टव्य हैं।

८३ आख्या-अंतर

८३१ ८ धारा-३१ प्रकारक-जटिलतायां प्रति-विभिन्न-आख्यां पृथक्-प्रधान-पत्रकम्।

८३११ तानि सन्तत-पत्रक-संघातः।

८३१२ अन्त्य-इतर-पत्रकेषु 'प्रकाशन पूरित-समंकनम्'।

८३१ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ३१ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र प्रत्येकां विभिन्नाम् आख्याम् अधिकृत्य पृथक् प्रधान-पत्रकं लेख्यम्।

८३११ पूर्वोक्त-प्रकारके प्रत्येकस्मिन् पत्रके वर्ग-समङ्कः एक एव स्यादिति तानि अपि पत्रकाणि ०३८१ धारानुसारं सन्तत-पत्रक-संघातः इति उच्यते।

८३१२ अन्त्यात् पत्रकात् इतरेषु सर्वेषु पत्रकेषु समङ्कनं ७१५२ धारानुसारं 'प्रकाशन-पूरित-समङ्कनम्' इति उच्यते।

८३१ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ३१ प्रकार की जटि-

लता हो, वहां आख्या के प्रत्येक विभिन्न शीर्षक को लेकर पृथक् प्रधान-पत्रक लिखा जाय।

८३११ पूर्वोक्त प्रकार के प्रत्येक पत्रक में वर्ग-समंक एक ही होगा अतः वे सभी पत्रक ०३८१ धारा के अनुसार सन्तत-पत्रक-संघात कहे जाते हैं।

८३१२ अन्त्य-पत्रक से भिन्न सभी पत्रकों में समंकन ७१५२ धारा के अनुसार 'प्रकाशन-पूरित-समंकन' कहा जाता है।

८३१२ सामयिक-प्रकाशन की आख्या में तथा उसके प्रकाशन के लिए उत्तरदायी परिषद् के नाम में परिवर्तन दोनों ही बहुत अधिक अवसरों पर पाये जाते हैं। इस प्रकार की जटिलता बहुधा देखने में आया करती है। किन्तु थोड़े ही प्रकाशन ऐसे होंगे जो इस जटिलता के शिकार न बने हों। यह कहा जाता है कि एक परिषद् ने १४ वर्षों में ४१ बार अपने नाम बदले थे। कभी कभी तो आख्या-अन्तर इतना अधिक बढ़ जाता है कि वर्गकार विभिन्न वर्ग-समंक ही देने बैठ जाता है। किन्तु जब वह देखता है कि संपुटों पर क्रमशः समंक दिए हुए हैं, अथवा सभी आख्याओं का समावेश करने वाले सामूहिक निर्देशी विद्यमान हैं तो उसे रुक जाना पड़ता है। आख्या के अन्तर का समाधान करने के लिए वह वर्ग-समंक को नहीं बदल पाता। इस अध्याय के अन्त में दिए हुए उदाहरणों में तथा प्रस्तुत व्याख्या के अन्त में दिए हुए उदाहरणों में उपर्युक्त प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

यहां हम कतिपय और उदाहरणों को प्रस्तुत करते हैं जो उतने व्यापक नहीं हैं। डेट्रायट,मिशिगन में १९०५ ई. में "नेशनल असोसिएशन ऑफ सीमेन्ट यूज़र्स की स्थापना हुई। १९१३ में उसका नाम बदल कर "अमेरिकन कान्क्रीट इन्स्टीट्यूट" हो गया। उसके द्वारा एक समुच्चित प्रकाशित किया जाता है, जिसे १९०५ से १९१३ तक प्रोसीडिंग्स कहा गया था, १९१४ से १९१५ तक जर्नल कहा गया था, तथा १९१६ से पुनः प्रोसीडिंग्स कहा जाने लगा। इस परिस्थिति में भी संपुटों के समंक चले आ रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, एक और महत्त्वपूर्ण उदाहरण दिया जाता है। १८९० में "अमेरिकन एलेक्ट्रो थेराप्युटिक असोसिएशन" की स्थापना हुई। मेडिकल लायब्रेरी नामक एक समुच्चित, किसी आश्रय के बिना ही १८८३ से निरन्तर निकल रहा था। उस असोसिएशन ने इस समुच्चित को अपना लिया तथा उसका नाम

बदल कर जर्नल आफ एलेक्ट्रो-थेराटिक्स कर दिया, किन्तु संपुटों के समंकन में वही पुराना कक्षा-क्रम रखा। इस प्रकार जर्नल ऑफ एलेक्ट्रो थेराप्युटिक्स का प्रथम संपुट १८६० में संपुट ८ के रूप में प्रकाशित हुआ। १६०२ में प्रकाशन का नाम पुनः बदल दिया गया तथा इस प्रकार संपुट २० से ३३ (१६०२ से १६१५) "जर्नल ऑफ एडवांसड थेराप्युटिक्स" इस अधिक प्रभावोत्पादक आख्या से युक्त हो कर प्रकाशित हुए। यह नाम किस प्रकार स्वीकृत किया गया। इसकी कहानी उस समुच्चित के संपादक ने निम्नलिखित शब्दों में कही है :—[३२]

"१६०१ ई. में, बफेलो में मिली हुई अमेरिकन एलेक्ट्रो थेराप्युटिक असोसिएशन की वार्षिक बैठक में असोसिएशन ने भावी संपादक की हैसियत से, संपादक के प्रबन्ध की अधीनता में जर्नरल को संघ के मुखपत्र के रूप में स्वीकार कर लिया। उस प्रबन्ध के अधीन तथा अमेरिकन एलेक्ट्रो थेराप्युटिक असोसिएशन के अग्रणी सदस्स्यों के सहयोग से प्रथम जनवरी १६०२ के लिए प्रथम अवदान प्रस्तुत किया गया। आरम्भ में यह निर्णय किया गया था कि उस समय से यह जर्नल अमेरिकन जर्नल ऑफ एलेक्ट्रोलाजी एण्ड रेडियोलाजी आख्या से प्रकाशित हो और उस आख्या से एक अवदान प्रस्तुत भी किया गया। किन्तु अकस्मात् प्रकाशक ने एक प्रार्थना की। वह अपने किसी और प्रकाशन को उस जर्नल के साथ मिलाना चाहता था। उसकी प्रार्थना के अनुसार नाम बदल दिया गया तथा प्रथम संपुट के द्वितीय अवदान से उसका नाम जर्नल आफ एडवान्स्ड थेराप्युटिक्स हो गया।"

उस अवस्था में भी, आरम्भ का वह विचार असोसिएशन के मस्तिष्क में सुषुप्तावस्था में पड़ा ही रहा था ऐसा प्रतीत होता है। कारण अन्त में उस ने जोर मारा तथा १६१६ से १६२५ तक ३४ से ४३ तक के संपुट अमेरिकन जर्नल ऑफ एलेक्ट्रो-थेराप्युटिक्स इस लम्बी आख्या के साथ प्रकाशित हुए। किन्तु १६२६ में प्रकाशित ४४ संपुट से नाम में पुनः और परिवर्तन हुआ तथा फिर वह फ़िज़िकल थेराप्युटिक्स बन गया। मानों इस आख्या से संगत एवं अनुरूप होने के लिये ही असोसिएशन का भी नाम अक्तूबर १६२६ में "अमेरिकन फिजिकल थेरापी असोसिएशन" कर दिया गया। इसका कारण यह था कि वह "वेस्टर्न असोसिएशन आफ फिजिकल थेरापी" के साथ मिला दिया गया था। इस सामयिक प्रका-

३२ फिजिकल थेराप्युटिक्स. संपु. ४४. १६२६. पृ. ५६–५७.

शन के नाम-सम्बन्धी भविष्य के गर्भ में न जाने और क्या-क्या छिपा है, यह तो परमात्मा ही जान सकता है। संभव है और भी परिवर्तन होते किन्तु १९३२ के एप्रिल मास से इसका तिरोभाव हो गया तथा यह इसके समुच्चित के गर्भ में समा गया। एप्रिल १९३२ के अवदान में यह सूचना थी :—"अमेरिकन फिजिकल थेरापी असोसिएशन का मुख पत्र फिजिकल थेराप्युटिक्स अब से आर्काइक्स आफ फिजिकल थेरापी, एक्स-रे, रेडियम के अन्तर्गत हो रहा है जो कि अमेरिकन कांग्रेस ऑफ फिजिकल थेरापी का मुख पत्र है। कारण यह है कि अमेरिकन फिजिकल थेरापी असोसिएशन ने अपने हितों को अमेरिकन कांग्रेस ऑफ फिजिकल थेरापी के हितों के साथ एक रूप कर दिया है। आप को चन्दे की अवधि तक सामयिक प्रकाशन उक्त परिषद् द्वारा मिलता रहेगा।"

यहां हम एक दूसरे और अधिक चित्रमय उदाहरण को प्रस्तुत करते हैं। १८९५ में न्यूजर्सी फारेस्टर का जन्म हुआ। प्रथम संपुट के समाप्त होने के पूर्व ही उसका नाम बदल कर फारेस्टर कर दिया गया। यह नाम सप्तम संपुट १९०१ तक जारी रहने दिया गया। किन्तु एक विशिष्ट घटना घटी कि १८९८ में "अमेरिकन फारेस्टरी असोसिएशन" के प्रोसीडिंग्स का इसी में छपने का निश्चय हो गया था। उस असोसिएशन ने १८८२ में "अमेरिकन फारेस्ट्री कांग्रेस" नाम अपनाया था, किन्तु १८८९ में उस ने अपना नाम बदल कर "अमेरिकन फारेस्ट्री असोसिएशन" कर लिया था। आठवां संपुट १९०२ में प्रकाशित हुआ। उसी के साथ सामयिक को लिए फारेस्ट्री एण्ड इर्रीगेशन लम्बा नाम दे दिया गया। किन्तु संपुट १४ तथा १९०५ वर्ष के मध्य भाग में ही, जब कि संपुट १४ के केवल ८ अवदान ही प्रकाशित हुए, उसकी समाप्ति के लक्षण नजर आने लगे। १९०८ में उसे पुनरुज्जीवित किया गया तथा उसका नाम कन्जर्वेशन रखा गया। किन्तु मजेदार बात तो यह है कि ज्यों ही वह पुनरुज्जीवित हुआ त्यों ही उसे पूर्व जन्म की स्मृति जाग उठी। उसने इस बात का आग्रह किया कि कन्जर्वेशन का प्रथम अवदान संपुट १४ अवदान ९ के रूप में प्रकाशित किया जाय। किन्तु यह नया अवतार कुछ ही समय के लिए जीवित रह सका। कारण वह नाम पुनः १९१० में अमेरिकन फारेस्ट्री हो गया। यह नाम संपु. १६ से २९ अर्थात् १९१० से १९२३ तक चालू रहा। इसके पश्चात् जब १९२४ में संपुट ३० प्रकाशित किया गया तब हमारे इस अनेकनामा समच्चित के लिये एक नया जन्म ही मनाया गया। अब

उसका नाम अधिक व्यापक अमेरिकन फारेस्ट्स एण्ड फारेस्ट लाइफ रखा गया। हम यही कामना करते हैं कि हमारा यह सशक्त बन्धु और भी अनेक जन्म पाय तथा संपुट-समंकन की कथा की स्मृति उसे ठीक-ठीक बनी रहे।

कभी-कभी नाम में अन्तर बहुत ही थोड़ा होता है और उसे सरलता से पहचाना नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ, जो समुच्चित १९०६ से जर्नल आफ अब्नॉरमल सॉइकॉलॉजी एण्ड सोशल सॉइकॉलॉजी आख्या से पुकारा जाता था वह १९२६ में परिवर्तित हो कर जर्नल आफ अब्नारमल एण्ड सोशल सॉइकॉलॉजी हो गया।

कभी-कभी तो स्वयं विद्वत्परिषदें ही अपना नाम भूल जाती हैं। उदाहरणार्थ, इलिनॉय स्टेट एकेडेमी ऑफ साइंस ने अपनी जीवन यात्रा १९०७ में प्रारम्भ की। अपने जीवन के प्रथम वर्ष में ही उसने अपना ट्रान्जेक्शन्स यह समुच्चित प्रकाशित किया, जो आज भी चालू है। किन्तु १९११ से १९१७ तक उसने अपने उस समुच्चित को ट्रान्जेक्शन्स ऑफ दि इलिनॉय एकेडेमी ऑफ साइंस यह नाम दिया। संभवतः उसे पुराना एवं यथार्थ नाम ध्यान में ही नहीं रहा। १९१८ में जा कर 'स्टेट' पद अपने यथार्थ स्थान पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया गया। न जाने किसने उसे इस वस्तु के औचित्य का स्मरण कराया।

एक विद्वान् समष्टि अपने नाम के स्मरण में कितनी बड़ी अव्यवस्थित भूल कर सकती है तथा अपने एकमात्र समुच्चित के नाम में कितने अधिक उतार-चढ़ाव ला सकती है। इसका उदाहरण निम्नलिखित लेख द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जॉर्जिया की मेडिकल असोसिएशन का आविर्भाव १८४९ में हुआ। उसी समय उसने अपना समुच्चित आरम्भ किया तथा वह आज तक नियमित रूप से निरन्तर एक संपुट प्रतिवर्ष के क्रम से प्रकाशित होता आ रहा है। किन्तु उसके आख्या-पत्र पर कितने ही नामों की परंपरा दृष्टिगोचर होती है जिसे देख कर चकित हो जाना पड़ता है। प्रथम तथा द्वितीय संपुट का नाम था मिनिट्स ऑफ दि प्रोसीडिंग्स आफ दि मेडिकल असोसिएशन आफ जौर्जिया। तृतीय तथा चतुर्थ संपुट ट्रान्जेक्शन्स ऑफ दि मेडिकल सोसायटी आफ दि स्टेट ऑफ जॉर्जिया कहे गये। संपुट ५ को प्रथम उत्पन्न समुच्चित का नाम दिया गया। संपुट ६ से १९ तक प्रोसीडिंग्स ऑफ दि जॉर्जिया मेडिकल असोसिएशन नाम से प्रसिद्ध हुए। संपुट २०

से २३ तक ट्रान्जेक्शन्स ऑफ दि जॉर्जिया मेडिकल असोसिएशन कहे गये, जब कि संपुट २४ से ६१ ट्रान्जेक्शन्स ऑफ दि मेडिकल असोसिएशन ऑफ जॉर्जिया। एक आख्या के साथ ३८ वर्षों तक निरन्तर नियमित रूप से क्रमशः एक के पश्चात् एक प्रकाशित होकर सम्पुटों की संख्या ६१ तक पहुंच गई है। आगे चलकर यह स्थिरता निभ न सकी। असोसिएशन ने १९११ में समुच्चित का नाम बदल कर जर्नल कर दिया गया। साथ ही संपुटों के समंकन के लिए भी एक नई कक्षा का ही अवलम्बन किया गया। यदि संस्थाओं की इस अव्यवस्थितता को देख कर कोई सहसा चिल्ला उठे, "चिकित्सक, तुम अपनी ही चिकित्सा पहले करो" तो वह न्यायसंगत कहा जायगा किन्तु, बिचारे सूचीकार के लिए तो इन अव्यवस्थाओं का अर्थ होता है कि वह एक पत्रक के स्थान में ७ प्रधान पत्रक लिखे, तथा दो के स्थान में संभवतः कम-से-कम ९ निर्देशी पत्रक लिखे। इस प्रकार सूचीकार का कार्य पांचगुना बढ़ जाता है। क्या ग्रन्थालय के अधिकारी ग्रन्थालयों की इन दुःखगाथाओं से परिचित हैं? क्या वे उन्हें जानते हैं? क्या वे सूचीकारों को पांचगुना अधिक बढ़ाना चाहेंगे? उनकी वर्तमान प्रवृत्ति तो इसके विपरीत ही प्रतीत होती है। वे सूचीकरण के मार्ग की कठिनाइयों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। वे अज्ञान में ही सुख मान कर बैठे हुए हैं। वे वस्तु स्थिति का ज्ञान ही नहीं चाहते। यह एक दुर्भाग्यमय रूढ़ि ही का कुफल है कि वे आज की सूचीकरण को अर्धशिक्षित व्यक्तियों के द्वारा किया जाने वाला अति तुच्छ कार्य मानते हैं। हमारे ग्रन्थ "ग्रन्थालय-शास्त्र-पंचसूत्री" से निम्नलिखित अंश का उद्धरण यदि किया जाय तो वह संगत सिद्ध होगा:—"किन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ग्रन्थों को पढ़ने के अतिरिक्त और भी उपयोग कर सकते हैं। वे साहित्यिक शैली की समालोचना करने में अपने को समर्थ मानते हैं। ज्ञान-जगत् की विशिष्ट शाखा से उन्होंने कुछ विशिष्ट परिचय भी प्राप्त किया होता है। ऐसे व्यक्तियों की श्रेष्ठ धृष्ठता तो और भी अधिक मनस्ताप उत्पन्न करती है। वे यह कल्पना कर बैठे रहते हैं कि उनकी (अपनी) विद्वत्ता से अतिरिक्त ग्रन्थालय में और जो कुछ भी है वह सब श्रम कार्य है, लेखकीय है तथा उनके उद्योगों से निम्न-तर कोटि का है। उन्हें यह पता ही नहीं है कि वे स्वयं जैसे मनुष्यों में से ग्रन्थालयी गढ़े जा सकते हैं। बहुधा हमारी किसी पण्डितों से मुठभेड हो जाया करती है। उसकी इतनी हिम्मत तो देखिये! वह सूचीकरण को निर्देशीकरण मान कर पूछ उठते हैं कि निर्देशीकरण में क्या रखा है। उस समय हमारी यही इच्छा होती है कि उसे कहा जाय, "भाई, आओ, जरा निर्देशीकरण करो तो सही'। उसे कुछ

महीनों तक वही काम करने दिया जाय। तभी उस को ज्ञात हो सकेगा कि वह कितनी अव्यवस्था उत्पन्न कर सकता है !"

हम यहां अब एक ऐसे समुच्चित के प्रधान-पत्रकों के उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते हैं जिस के अपने तथा जन्मदातृ संस्था नाम में परिवर्तन हुए हैं। उन उदाहरणों को देख कर हम प्रस्तुत चर्चा को समाप्त करेंगे।

१.१ ड:४:७ढं७३:ढ८८

ट्रान्जेक्शन्स ऑफ दि नेशनल असोसिएशन ऑफ रेलवे सर्जन्स, युनाइटेड स्टेट्स. १८९१—१८९३.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८९१–१८९३].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.२ ड:४:७ढं७३:ढ८८ सन्तत १.

रेलवे सर्जन. (नेशनल असोसिएशन ऑफ रेलवे सर्जन्स, युनाइटेड स्टेट्स). संपु. १–४. १८९४—१८९७.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८९४—१८९७].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.३ ड:४:७ ढं७३:ढ८८ सन्तत २.

रेलवे सर्जन. (इन्टरनेशनल असोसिएशन ऑफ रेलवे सर्जन्स, अमेरिका). संपु. ५–१०. १८९८–१९०३.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८९८–१९०३].

अनन्तर पत्रक में संतत.

१.४ ड:४:ढं७३:ढ८८ सन्तत ३.

रेलवे सर्जिकल जर्नल ऑफ दि अमेरिकन असोसिएशन ऑफ रेलवे सर्जन्स. संपु. ११–२७ १९०४–१९२०.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९०४–१९२०].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.५ ड:४:७ढं७३:ढ८८ सन्तत ४.

सर्जिकल जर्नल ऑफ दि अमेरिकन असोसिएशन ऑफ रेलवे सर्जन्स. संपु. २८–४०. १९२१–१९३३
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९२१—].

८३२ **८ धारा-परिगणित-३२ प्रकारक-जटिल-तायां ८३१ धारोपधारा-अनुकरणम् ।**

८३२ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ३२ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र ८३१ धारा तदुपधाराः च अनुकर्त्तव्याः ।

८३२ **जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ३२ प्रकार की जटिलता हो, वहां ८३१ धारा और उसकी उपधाराओं का अनुसरण करना चाहिए ।**

८३२ यह जटिलता पहली के समान ही अधिकतर स्थलों पर पाई जाती है। दोनों ही उस अंश में एक समान हैं। हम यहां कुछ उदाहरण दे रहे हैं। जो संस्था १८५९ ई. में "ऐन्टमॉलाजिकल सोसायटी आफ फिलडलफिया" के नाम से संघटित हुई थी, वह १८६७ से "अमेरिकन एन्टमालाजिकल सोसायटी" नाम से विख्यात होती आ रही है। परिणाम यह हुआ है कि उसके समुच्चितों में से एक १८६१ से १८६७ तक प्रोसीडिंग्स आफ दि एन्टमालाजिकल सोसायटी आफ फिलडेलफिया नाम से प्रकाशित हुआ था, तथा उसके बाद की तिथि से आज तक ट्रान्जेक्शन्स आफ दि अमेरिकन एन्टमालाजिकल सोसायटी नाम से प्रकाशित होता आ रहा है। किन्तु इसके संपुट समंकन में कक्षा भिन्न है ।

इसके अतिरिक्त एक उदाहरण और भी है। "अमेरिकन जोग्राफिकल एण्ड स्टेटिस्टिकल सोसायटी" नामक संस्था १८५४ ई. में स्थापित हुई थी। उसने १८७१ ई. में अपना नाम बदल कर "अमेरिकन जोग्राफिकल सोसायटी आफ न्यूयार्क" कर दिया। उसने १८५९ में एक समुच्चित प्रकाशित किया था। उसके

नाम में कितना परिवर्तन हुआ है वह कहानी बड़ी ही रोचक है। प्रथम दो संपुट जर्नल आफ दि अमेरिकन जोग्राफिकल एण्ड स्टेटिस्टिकल सोसायटी इस नाम से प्रकाशित हुए। तृतीय संपुट सोसायटी के अनुअल रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित हुआ। संपुट ४ से ३२ तक के अवदान बुलेटिन के रूप में प्रकाशित हुए थे। किन्तु संपुटित होने पर उनका नाम जर्नल कहा जाना निश्चित हुआ। इस परिस्थिति में भी, ३३ से ४७ तक के संपुटों को उनके अपने अवयवों के नाम से ही अर्थात् बुलेटिन के नाम से ही विख्यात होने की अनुमति दे दी गई थी। यह १९१५ तक ही रहा किन्तु १९१६ में यह समुच्चित जोग्राफिकल रिव्यू के नाम से प्रकाशित होने लगा। नाम के इस परिवर्तन मानों संपुटों के समंकन में एक नई कक्षा प्रारम्भ कर दी गई थी।

प्रस्तुत धारा की लक्ष्यभूत जटिलता से युक्त समुच्चित के प्रधान-संलेखों को प्रस्तुत कर हम इस धारा को समाप्त करेंगे।

उदाहरण

१.१ डढं७३:ढ५०

प्रोसीडिंग्स आफ दि शिकागो मेडिकल सोसायटी.
संपु. १–३. अव. १०. १८८८–१८९१.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८८८–१८९१).]
[संपु. ३ अपूर्ण].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.२ डढं७३:ढ५० सन्तत १.

शिकागो मेडिकल रिकार्ड. (शिकागो मेडिकल सोसायटी).
संपु. १–२. १८९१–१८९२.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८९१–१८९२].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.३ डढं७३:ढ५० सन्तत २.

शिकागो मेडिकल रिकार्डर. (शिकागो मेडिकल सोसायटी).
संपु. ३–४३. १८९३–१९३३.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८९३–].

---

८४१ विलयः

विलय

८४१	८ धारा-परिगणित-४१ प्रकारक-जटिलतायां प्रचलदाख्यायै नवीन-प्रधान-पत्रकम् ।
८४११	तानि 'सन्तत-पत्रक-संधातः' ।
८४१२	विलीन-प्रकाशन-पत्रकेषु प्रकाशन-पूरित-समङ्कनम् ।
८४१३	नवीन-प्रधान-पत्रके अतिरिक्ताधिसूचनम् ।
८४१३०	उद्धार-कोष्ठके ।
८४१३१	तत्रांशौ द्वौ ।
८४१३१०	यथा — १ एकीभूत-सामयिक-प्रकाशन-वर्ग-समंक-आख्या; २ 'इति एतद् एकीभावयति' इति वाक्यांशः ।
८४१३१०१	प्रति-प्रकाशनं पृथक् वाक्यम् ।
८४१४	अतिरिक्तानुच्छेद-उल्लिखित-प्रति-सामयिक-प्रकाशन-अन्त्य-प्रधान-पत्रके अतिरिक्ताधिसूचनम् ।
८४१४०	उाद्धर-कोष्ठके ।
८४१४१	तत्रांशौ द्वौ ।
८४१४१०	यथा — १ विलापक-प्रकाशन-वर्ग समंक-आख्ये; २ इत्येतेन एकीभूतम्' इति वाक्यांशः च ।

८४१ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ४१ प्रकारका जटिलता स्यात् यत्र या आख्या विलयानन्तरमपि प्रचलिता स्यात् तस्यै आख्यायै नवीनं प्रधान-पत्रकं लेख्यम्

८४११ नवीने प्रधान-पत्रके स एव वर्ग-समङ्कः स्यात् यः तदाख्या-विशिष्टे पूर्वस्मिन् प्रधान-पत्रके स्यादिति तानि सर्वाणि अपि पत्रकाणि ०३८१ धारोपधारानुसारं सन्तत-पत्रक-संघातः इति उच्यते ।

८४१२ सर्वेषां विलीनानां प्रकाशनानां प्रधान-पत्रकेषु प्रचलदाख्या-विशिष्ट-पूर्व-पत्रके च समङ्कनं ७१५२ धारानुसारं 'प्रकाशन-पूरित-समङ्कनम्' इति उच्यते ।

८४१३० तत् उद्धार-कोष्ठके लेख्यम् ।

८४१३१ तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः ।

८४१३१० तौ अंशौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः —

१ एकीभूतस्य सामयिक-प्रकाशनस्य वर्ग-समङ्कः आख्या च प्रथमः अंशः भवति;

२ 'इति एतद् एकीभावयति' इति वाक्यांशः द्वितीयः अंशः भवति; ।

८४१३१०२ प्रत्येक-प्रकाशनस्य सम्बद्धं विवरणं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

८४१४ नवीनस्य प्रधान-पत्रकस्य अतिरिक्तानुच्छेदे उल्लिखितस्य प्रत्येकस्य सामयिक-प्रकाशनस्य अन्त्ये प्रधान पत्रके अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम् ।

८४१४० तत् उद्धार-कोष्ठके लेख्यम् ।

८४१४१ तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः ।

८४१४१० तौ अंशौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः —

१ यस्मिन् सामयिक-प्रकाशने प्रस्तुतं प्रकाशनं विलीनं स्यात् तस्य सामयिक-प्रकाशनस्य वर्ग-समङ्कः नाम च प्रथमः अंशः भवति;

२ 'इत्येतेन एकीभूतम्' इति वाक्यांशः द्वितीयः अंशः भवति।

८४१ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ४१ प्रकार की जटिलता हो वहां जो आख्या विलय के अनन्तर भी प्रचलित हो उस आख्या के लिए नवीन-प्रधान-पत्रक लिखा जाय।

८४११ नवीन-प्रधान-पत्रक में वही वर्ग-समंक होगा जो उस आख्या से युक्त पूर्व-प्रधान-पत्रक में होगा; अतः वे सभी पत्रक ०३८१ धारा तथा उसकी उपधारा के अनुसार सन्तत-पत्रक-संघात कहे जाते हैं।

८४१२ सभी विलीन प्रकाशनों के प्रधान-पत्रकों में तथा चालू आख्या से युक्त पूर्व-पत्रक में समंकन, ७१५२ धारा के अनुसार 'प्रकाशन-पूरित-समंकन' कहा जाता है।

८४१३ नवीन प्रधान-पत्रक में अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय।

८४१३० वह उद्धार-कोष्ठक में लिखा जाय।

८४१३१ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं।

८४१३१० वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ एकीभूत सामयिक-प्रकाशन का वर्ग-समंक और आख्या प्रथम अंश होता है;

२ "को विलीन करता है" यह वाक्यांश द्वतीय अंश होता है;

८४१३१०१ प्रत्येक प्रकाशन से सम्बद्ध विवरण पृथक् वाक्य माना जाय।

८४१४ नवीन प्रधान-पत्रक के अतिरिक्त अनुच्छेद में उल्लिखित प्रत्येक सामयिक-प्रकाशन के अन्त्य-प्रधान-पत्रक में अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय।

८४१४० वह उद्धार-कोष्ठक में लिखा जाय।

८४१४१ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं।

८४१४१०　वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ जिस सामयिक-प्रकाशन में प्रस्तुत प्रकाशन विलीन हो, उस सामयिक-प्रकाशन का वर्ग-समंक और नाम प्रथम अंश होता है;

२ 'में विलीन' यह वाक्यांश द्वितीय अंश होता है।

८४२　८ धारा-परिगणित-४२ प्रकारक-जटिलतायां ८४१ धारोपधारा-अनुकरणम्।

८४२　यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ४२ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र ८४१ धारा तदुपधाराः च अनुकार्याः।

८४२　जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ४२ प्रकार की जटिलता हो, वहां ८४१ धारा और उसकी उपधाराओं का अनुसरण किया जाय।

८४२ उदाहरण

१.१　मढं७३:ढ६१

एजुकेशनल रिव्यू संपु. १—७६. १८६१—१६२८.

[२ संपु. प्रतिवर्ष. १८६१—१६२८].

{ संपु. ७६ में अन्तिम दो अवदान नहीं }.

"म ढं ७३: थ १५ स्कूल एण्ड सोसायटी में विलीन."

१.२　मढं७३:थ१५

स्कूल एण्ड सोसायटी. संपु. १—२७. १६१५—१६२८.

[२ संपु. प्रतिवर्ष. १६१५—१६२८].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.३ मढं७३:थ१५ सन्तत.

स्कूल एण्ड सोसायटी. संपु. २८–३८. १६२८–१६३३.
[२ संपु. प्रतिवर्ष. १६२८–].
"म ढं ७३: ढ६१ एजुकेशनल रिव्यू को विलीन करता है."

सामयिक प्रकाशनों के एक दूसरे में विलय भी बहुधा हुआ करते हैं। कभी कभी तो उनका विलय अकस्मात् हो जाता है। कभी इसकी सूचना प्राप्त हो भी जाती है। यदि आरम्भ में नहीं तो कम से कम विलय हो जाने के बाद ही पाठकों का ध्यान उस ओर आकृष्ट कर दिया जाता है। कुछ अवसरों पर, आख्या में थोड़ा सा ही अन्तर होता है। उसके अतिरिक्त और कोई सुझाव नहीं दिया होता। अन्तर को पहचानने का केवल एक वही चिह्न होता है। ऊपर जो उदाहरण दिए हुए हैं उनमें यह दिखलाया गया है कि किस प्रकार एक लम्बे समय से निकलने वाले समुच्चित को भी किसी अन्य समुच्चित में अपना विलय कर डालना पड़ता है। एजुकेशनल रिव्यू समुच्चित ७६ संपुटों तक अपनी जीवन यात्रा निर्विघ्न संपादित करता रहा। वह अच्छी ठोस नींव पर सुदृढ़ हो कर जमा था। किन्तु न जाने सहसा ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी कि उसे अपने से छोटे समुच्चित के साथ गठ-बन्धन करना पड़ा और वह भी ऐसे समय जब कि वह एक संपुट के मध्य में था। डा० फ्रेंक पीयरपांट ग्रेव्स, जो न्यूयार्क स्टेट कमिश्नर आफ एजुकेशन तथा युनिवर्सिटी आफ दि स्टेट आफ न्यूयार्क के प्रेजिडेन्ट थे, उन्होंने उस एजुकेशनल रिव्यू को कुछ वर्षों तक पाला-पोसा था। उन्होंने बड़े ही करुण शब्दों में यह कहानी कही है कि किस प्रकार वह समुच्चित स्कूल एण्ड सोसायटी में विलीन हो गया।[३३]

क्या यह एक दुःखमय घटना नहीं है कि इस प्रकार का एक समुच्चित अपना नाम-निशान खो बैठे? .... कुछ भी हो, यह तो निर्णय हो चुका है कि नाम तथा रूप दोनों निर्णायक तत्त्व नहीं हैं। अब तो सन्तोष यही है और सौभाग्य इसी में है कि इस समुच्चित की भावना तथा तत्त्व ऐसे समुच्चित में समाविष्ट तथा सुरक्षित रखे जायेंगे जो स्कूल एण्ड सोसायटी के नाम से शिक्षा जगत् के नेतृत्व के उच्च शिखर पर आसीन है।"

३३. स्कूल एण्ड सोसायटी. संपु. २८. पृ. ५२६.

इस अतिव्यापक स्कूल एण्ड सोसायटी ने १८७४ में स्थापित स्कूल जर्नल तथा १८७८ में स्थापित टीचर्स' मेगजीन को भी आत्मसात् कर लिया है।

उदाहरण

२.१ मढं७३:ढ९७

अमेरिकन एजुकेशन. संपु. १–३२. १८९७–१९२८.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८९७–१९२८].
{ संपु. ३२ में केवल चार अवदान थे }.
"मढं७३:ढ८० एजुकेशन में विलीन".

२.२ मढं७३:ढ८०

एजुकेशन संपु. १–४८. १८८०/१८८१–१९२७/१९२८.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १८८०।१८८१–१९२७।१९२८].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

२.३ मढं७३:ढ८० सन्तत.

एजुकेशन. संपु. ४९–५२. १९२८/१९२९–१९३२।१९३३.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९२८–१९२९–].
"मढं ७३:ढ९७ अमेरिकन एजुकेशन को विलीन करता है".

यहां पर जब अमेरिकन एजुकेशन संपुट ३२ के प्रथम चार अवदान प्रकाशित कर चुका था तब विलय की आवश्यकता आ पड़ी हो ऐसा प्रतीत होता है। कारण संपुट ३२ के चतुर्थ अवदान में निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट घोषणा थी।[३४]

"दिसम्बर के अवदान के आगे अमेरिकन एजुकेशन का पृथक् समुच्चित के रूप में अस्तित्व समाप्त होता है। वह एजुकेशन में विलीन हो रहा है।——"

विलय तथा एकीभाव के और भी अनेक विचित्र प्रकार पाये जाते हैं। ऊपर ऐसे दो उदाहरण दिए गए हैं जिनमें अवयव-रूप समुच्चितों का नाम-निशान ही मिट गया है। किन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं जहां यह बात नहीं होती। वहां जीवित रहने वाला समुच्चित स्वागतकारी के रूप में व्यवहार करता है तथा साथ ही विलीन समुच्चितों के साथ अतिथि का व्यवहार किया जाता है और उन का

---

३४ पृ. १४८.

अस्तित्व भी किसी न किसी रूप में सुरक्षित रहने दिया जाता है। यहां कुछ उदाहरण दिए जाते हैं:—१८७६ में स्थापित "अपेलेशियनमाउन्टेन क्लब" से १८७६ अपेलेशिया, १८७६ से रजिस्टर तथा १६०७ से बुलेटिन इन तीन समुच्चितों को चला रहा है। अपेलेशिया का स्वतन्त्र अस्तित्व १८७६ से १६२१ तक रहा। १६२२ से वह बुलेटिन के केवल अवदान के रूप में प्रकट होने लगा। उदाहरणार्थ, १६२२ का संपुट बुलेटिन के संपु. १६ अंक ५ का अवदान है। बुलेटिन रजिस्टर के लिए भी स्वागतकारी का कार्य करता है तथा उसने इसके लिए अपने एक अवदान को भी रिक्त कर दिया है।

३१ दिसम्बर, १८६१ को संघटित "ओहायो एकेडेमी ऑफ साइंस" द्वारा प्रकाशित प्रोसीडिंग्स का प्रकाशन १८६२ में प्रारम्भ हुआ और आज तक चला आता है। १८६२ से लेकर १६०२ तक एनुअल रिपोर्टस स्वतन्त्र आवर्तित के रूप में प्रकाशित होती रही थी तथा उसके संपुटों पर भी १-११ समंक दिए गए थे। वह आवर्तित १६०३ से आगे उसी प्रोसीडिंग्स का अवयव बन गया। इसी प्रकार स्पेशल पेपर्स के प्रथम सात संपुट १८६६ से १६०२ तक स्वतन्त्र रुप से प्रकाशित हुए। अब वह आश्रित है। इसके बाद के इसके संपुट, अष्टम संपुट से लेकर प्रोसीडिंग्स के अतिथि प्ररायण आवरणों में पाये जाते हैं।

"अमेरिकन सिरेमिक सोसायटी के जर्नल, बुलेटिन तथा सिरेमिक एक्स्ट्रेक्ट्स एक और ही विचित्र प्रकार के विलय का उदाहरण है। वे सब एक ही आवरण में प्रकाशित किए जाते हैं, किन्तु उनके पृष्ठांकन पृथक् होते हैं। यहां एक जटिलता और भी है कि वे तीनों मिल कर ट्रान्जेक्शन्स के अनुगामी माने जाते हैं। वह परिषद् १८६६ में स्थापित हुई थी। १८६६ से १६१७ तक उस परिषद् ने अपने ट्रान्जेक्शन्स के १६ संपुट प्रकाशित किए। १६१८ में ट्रान्जेक्शन्स के स्थान में जर्नल प्रकाशित होने लगा। १६२२ में बुलेटिन तथा सिरेमिक एबस्ट्रेक्टस अस्तित्व में आए, और ये तीनों समुच्चित एक ही आवरण में प्रकाशित होने लगे परन्तु इन तीनों का पृष्ठांकन अलग-अलग रहा। इस तरह प्रत्येक अपने अस्तित्व को अपने स्वतन्त्र पृष्ठांकन से सूचित करेगा।

८४३ ८ धारा-परिगणित-४३ प्रकारक-जटिलतायां नवीनाख्यायै नवीन-प्रधान-पत्रकम्।

८४३१ प्रचलत्संपुटांकन-पूर्वाख्या-वर्ग-समंकत्वे ८४१ धारोपधारा-अनुकरणम् ।

८४३२ विभिन्नत्वे ८४४ धारोपधाराः ।

८४३ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ४३ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र नवीन-आख्यायै नवीनं प्रधान-पत्रकं लेख्यम् ।

८४३१ यस्याः पूर्वाख्यायाः संपुट-समङ्कनं नवीनाख्यायां प्रचलत् स्यात् तदीय एव वर्ग-समङ्कः नवीनाख्याया अपि विद्यते चेत् ८४१ धारा तदीयोपधाराः च अनुकार्याः ।

८४३२ नवीनाख्यायाः नवीन एव वर्ग-समङ्कः विद्यते चेत् ८४४ धारा तदीयोपधाराः च अनुकार्याः ।

८४३ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ४३ प्रकार की जटिलता हो, वहां नवीन आख्या के लिए नवीन प्रधान-पत्रक लिखा जाय ।

८४३१ जिस पूर्व आख्या का संपुट-समंकन नवीन आख्या में चालू हो यदि उसका ही वर्ग-समंक नवीन आख्या में भी विद्यमान हो, तो ८४१ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुकरण करना चाहिए ।

८४३२ नवीन आख्या में नवीन ही वर्ग-समंक विद्यमान हो, तो ८४४ धारा तथा उसकी उपधाराओं का अनुकरण करना चाहिए ।

८४४ ८ धारा-परिगणित-४४ प्रकारक जटिलतायां नवीनाख्यायै नवीन-प्रधान-पत्रकम् ।

८४४१ नवीन-प्रधान-पत्रके अतिरिक्ताधिसूचनम् ।

८४४१० उद्धार-कोष्ठके ।

८४४११ तत्रांशौ द्वौ ।

८४४११० यथा —

१ विलीन-सामयिक-प्रकाशन-वर्ग-समंक-आख्ये;

२ 'इति एतद् एकीभावयति' इति वाक्यांशः च।

८४४११०१ प्रति-प्रकाशनं पृथक् वाक्यम् ।

८४४२ विलीन-प्रकाशन-पत्रकेषु प्रकाशन-पूरित-समंकनम् ।

८४४३ प्रति-विलीन-प्रकाशन-अन्त्य-प्रधान-पत्रकम् अतिरिक्ताधिसूचनम् ।

८४४३० तत्रांशौ द्वौ ।

८४४३१ यथा —

१ विलापक-प्रकाशन-वर्ग-समंक-आख्ये;

२ 'इत्यत्र विलीनम्' इति वाक्यांशः च ।

८४४ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ४४ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र नवीन-आख्यायै नवीनं प्रधान-पत्रकं लेख्यम् ।

८४४१० तत् उद्धार-कोष्ठके लेख्यम् ।

८४४११ तत्रांशौ द्वौ ।

८४४११० तौ अंशौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः —

१ विलीन-सामयिक-प्रकाशनस्य वर्ग-समङ्कः नाम च प्रथमः अंशः भवति;

२ 'इति, एतद् एकीभावयति' इति वाक्यांशः द्वितीयः अंशः भवति ।

८४४११०१ प्रत्येक-प्रकाशनस्य सम्बद्धं विवरणं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

८४४२ सर्वेषां विलीनानां प्रकाशनानां प्रधान-पत्रकेषु समङ्कनं ७१५२ धारानुसारं 'प्रकाशन-पूरित-समङ्कनम्' इति उच्यते ।

८४४३ प्रत्येकस्य विलीनस्य प्रकाशनस्य अन्त्ये प्रधान-पत्रके अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम् ।

८४४३० तत्र यथाक्रमं द्वौ अंशौ भवतः ।

८४४३१ तौ द्वौ अंशौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः—

१ यस्मिन् प्रकाशने प्रस्तुतं प्रकाशनं विलीनं स्यात् तस्य वर्ग-समङ्कः आख्या च प्रथमः अंशः भवति;

२ 'इत्यत्र विलीनम्' इति वाक्यांशः द्वितीयः अंशः भवति ।

८४४ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ४४ प्रकार की जटिलता हो वहां नवीन आख्या के लिए नवीन-प्रधान-पत्रक लिखा जाय ।

८४४१ नवीन-प्रधान-पत्रक में अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय ।

८४४१० वह उद्धार-कोष्ठक में लिखा जाय ।

८४४११ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं ।

८४४११० वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ विलीन-सामयिक-प्रकाशन का वर्ग-समंक और नाम प्रथम अंश होता है;

२ "को विलीन करता है" यह वाक्यांश द्वितीय अंश होता है;

२० प्रत्येक प्रकाशन से सम्बद्ध विवरण पृथक् वाक्य माना जाय ।

८४४२ सभी विलीन प्रकाशनों के प्रधान-पत्रकों में समंकन ७१५२

धारा के अनुसार 'प्रकाशन-पूरित-समंकन' कहा जाता है।

८४४३ प्रत्येक विलीन प्रकाशन के अन्त्य-प्रधान-पत्रक में अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय।

८४४३० उसमें क्रमशः दो अंश होते हैं।

८४४३१ वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ जिस प्रकाशन में प्रस्तुत प्रकाशन विलीन हो उसका वर्ग-समंक और आख्या प्रथम अंश होता है;

२ "में विलीन" यह वाक्यांश द्वितीय अंश होता है।

८४४३१ उदाहरण

१.१ ज२ढं७३:थ१७

एब्स्ट्रैक्ट्स आफ बेक्टेरियालाजी. संपु. १–१०. १९१७–१९२६.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९१७–१९२६].
"चढं ७३: थ२७ बायोलाजिकल एब्स्ट्रेक्ट्स में विलीन."

१.२ जढं७३:थ२०

बोटानिकल एब्स्ट्रेक्ट्स संपु. १–७. १९२०–१९२६.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९२०–१९२६].
"चढं७३:थ२७ बाओलाजिकल एब्स्ट्रेक्ट्स में विलीन."

१.३ चढं७३:थ२७

बाओलॉजिकल एब्स्ट्रेक्ट्स. संपु. १–७. १९२७–१९३३.
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९२७–].
"जढं७३:थ२० बोटानिकल एब्स्ट्रेक्ट्स तथा ज२ढं७३:थ१७ एब्स्ट्रेक्टेस आफ बेक्टेरिओलाजी को विलीन करता है."

---

८५ अनेकीकृतम्

८५१ **८ धारा-परिगणित-५१ प्रकारक-जटिल-तायां प्रति-अनेकीभूत-प्रकाशनं नवीन-प्रधान-पत्रकम् ।**

८५११ पूर्व-प्रचलद्वर्ग-समंक-प्रकाशन-प्रधान-पत्रके सन्तत-पत्रक-संघातः।

८५१२ पूर्व-प्रधान-पत्रके 'प्रकाशन-पूरित-समंकनम्'।

८५१३ मूल-प्रकाशन-प्रधान-पत्रके अतिरिक्ताधिसूचनम् ।

८५१३० उद्धार-कोष्ठके।

८५१३१ तत्रांशौ द्वौ।

८५१३१० यथा —

१ प्रचलद्वर्ग-समंक-इतर-अनेकी-भावाश्रय-प्रति-प्रकाशन-वर्ग-समंक-आख्ये;

२ 'इत्येवमंशतोऽनेकीभूतम्' इति वाक्यांशः च।

८५१३१०१ प्रति-प्रकाशनं पृथक् वाक्यम्।

८५१४ प्रचलद्वर्ग-समंक-इतर-प्रति-अनेकीभूत-प्रकाशन-प्रधान-पत्रके अतिरिक्ताधिसूचनम् ।

८५१४० उद्धार-कोष्ठके ।

८५१४०१ तत्रांशौ द्वौ।

८५१४०१० यथा —

१ मूल-प्रकाशन-वर्ग-समंकाख्ये;

२ इत्यस्मादंशतोऽनेकी-भूतम्' इति वाक्यांशः च।

८५१४०१०१ प्रति-प्रकाशनं पृथक् वाक्यम्।

८५१ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ५१ प्रकारका जटिलता स्याद् तत्र मूलभूतं सामयिक-प्रकाशनम् अनेकीभूय यत् यत् सामयिक-प्रकाशन-रूपं स्वीकरोति तस्य तस्य प्रत्येकस्य सामयिक प्रकाशनस्य कृते नवीनं प्रधान-पत्रकं लेख्यम् ।

८५११ पूर्वं प्रधान-पत्रकं, येन प्रकाशनेन च पूर्वः वर्ग-समङ्कः पुनरपि धारितः स्यात् तस्य प्रकाशनस्य प्रधान-पत्रकम् उभे अपि ०३८१ धारानुसारं 'सन्तत-पत्रक-संघातः' इति उच्यते ।

८५१२ पूर्वस्मिन् प्रधान-पत्रके समङ्कनम् ७१५२ धारानुसारं 'प्रकाशन-पूरित-समङ्कनम्' इति उच्यते ।

८५१३ मूलभूतस्य प्रकाशनस्य प्रधान-पत्रके अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम् ।

८५१३० तत् उद्धार-कोष्ठके लेख्यम् ।

८५१३१ तस्मिन् अधिसूचने यथाक्रमं द्वौ अंशौ भवतः ।

८५१३१० तौ अंशौ निम्ननिर्दिष्टौ भवतः —

१ यस्मिन् अनेकीभावाश्रये सामयिक प्रकाशने पूर्वः वर्ग-समङ्कः प्रचलत् स्यात् तस्मात् इतरस्य प्रत्येकस्य अनेकीभावाश्रयस्य प्रकाशनस्य वर्ग-समङ्कः आख्या च इति प्रथमः अंशः भवति;

२ 'इत्येवमंशतोऽनेकीभूतम्' इति वाक्यांशः च द्वितीयः अंशः भवति ।

८५१३१०१ प्रति-प्रकाशनं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

८५१४ यस्मिन् अनेकीभावाश्रये सामयिक-प्रकाशने पूर्वः वर्ग-समङ्कः प्रचलत् स्यात् तस्मात् इतरस्य प्रत्येकस्य

अनेकीभावाश्रयस्य प्रकाशनस्य प्रधान-पत्रके अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम् ।

८५१४० तत् उद्धार-कोष्ठके लेख्यम् ।

८५१४०१ तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः —

८५१ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ५१ प्रकार की जटिलता हो, वहां मूल-भूत-सामयिक-प्रकाशन अनेक होकर जिस जिस सामयिक-प्रकाशन का रूप स्वीकार करे, उस उस सामयिक-प्रकाशन के लिए नवीन प्रधान-पत्रक लिखा जाय ।

८५११ पूर्व-प्रधान-पत्रक, और प्रकाशन के द्वारा पूर्व - समंक फिर भी धारण किया गया हो, उस प्रकाशन का प्रधान-पत्रक दोनों ही ०३८१ धारा के अनुसार 'सन्तत-पत्रक-संघात' कहे जाते हैं ।

८५१२ पूर्व-प्रधान-पत्रक में समंकन ७१५२ धारा के अनुसार 'प्रकाशन पूरित-समंकन' कहा जाता है ।

८५१३ मूलभूत प्रकाशन के प्रधान-पत्रक में अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय ।

८५१३० वह उद्धार-कोष्ठक में लिखा जाय ।

८५१३१ इस अधिसूचन में क्रमशः दो अंश होते हैं ।

८५१३१० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ जिस अनेक बने हुये सामयिक-प्रकाशन में पूर्व वर्ग-समंक चालू हो उससे अन्य अनेक बने हुये प्रत्येक प्रकाशन का वर्ग-समंक और आख्या प्रथम अंश होता है;

२ 'इस प्रकार अंशतः अनेकीभूत' यह वाक्यांश द्वितीय अंश होता है ;

८५१३१०१ प्रति-प्रकाशन पृथक् वाक्य माना जाय ।

८५१४ जिस अनेक बने हुये सामयिक-प्रकाशन में पूर्ववर्ग-समंक चालू हो, उससे अन्य अनेक बने हुये प्रत्येक प्रकाशन के प्रधान-पत्रक में अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय ।

८५१४० वह उद्धार-कोष्ठक में लिखा जाय।

८५१४०१ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं।

८५१४०१० वे दो अंश निम्नलिखित हैं :—

१ मूल प्रकाशन का वर्ग-समंक और आख्या प्रथम अंश होता है; और

२ 'में से अंशतः अनेकीभूत' यह वाक्यांश द्वितीय अंश होता है।

८५१४०१०१ प्रति-प्रकाशन पृथक् वाक्य माना जाय।

८५१४०१० इस अध्याय की धारा ८६३ के अन्तर्गत उदाहरण १.५ तथा २.४ द्रष्टव्य है।

८५२ ८ धारा-परिगणित-५२ प्रकारक-जटिलतायां ८५१ धारोपधारा-अनुकरणम्।

८५२० निर्दिश्यमानस्तु विशेषः।

८५२०१ 'अंशतः' इति न।

८५२ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ५२ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र ८५१ धारा तदुपधाराः च अनुकार्याः।

८५२०१ 'अंशतः' इत्यस्य लोपः कार्यः।

८५२ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ५२ प्रकार की जटिलता हो वहां ८५१ धारा और उसकी उपधाराओं का अनुसरण करना चाहिए।

८५२० निम्नलिखित विशेष माना जाय।

८५२०१ 'अंशतः' इसका लोप किया जाय।

८५२०१ उदाहरण

१.१ ५४२:ढ८७

जर्नल आफ दि कालेज आफ साइंस, इम्पीरियल युनिवर्सिटी आफ टोकियो. संपु. १–४५. १८८७–१९२५.

[निरवधिक. १८८७–१९२५].

"इढं४२:थ२५ जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पीरियल युनिवर्सिटी आफ टोकियो. खण्ड १, इदि; छ ढं ४२: थ २५ जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पीरियल युनिवर्सिटी आफ टोकियो. खंड २ इदि.; ज ढं ४२:थ२५ जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पी-रियल युनिवर्सिटी आफ टोकियो. खण्ड ३ इदि.; ट ढं ४२: थ २५ जर्नल आफ दिफेकल्टी आफ साइंस, इम्पीयिल युनिवर्सिटी आफ टोकियो. खण्ड ४ इदि.; स७ढं४२: थ२५ जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पीरियल युनिवर्सिटी आफ टोकियो. खण्ड ५ इदि. इस प्रकार अनेकीभूत."

१.२ इ ढं ४२: थ २५

जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पीरियल युनिवर्सिटी आफ टोकियो, खण्ड १, इदि. संपु. १– . १९२५।१९२९– .

[निरवधिक. १९२५–१९२९–].

"५४२: ढ ८७ जर्नल आफ दि कालेज आफ साइंस, इम्पीरियल युनि-वर्सिटी आफ टोकियो में से अनेकीभूत."

इस समुच्चित का द्वितीय संपुट १९३४ तक पूर्ण नहीं हुआ था।

१.३ छ ढं ४२: थ २५

जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पीरियल युनिवर्सिटी आफ टोकियो, खण्ड २, इदि. संपु. १–२. १९२५।१९२७–१९२६/१९३०

[निरवधिक. १९२५।१९२७–].

"५४२: ढ ८७ जर्नल आफ दि कालेज आफ साइंस, इम्पीरियल युनिवर्सिटी आफ टोकियो में से अनेकीभूत."

१.४ ज ढं ४२: थ२५
जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पीरियल युनिर्वसिटी आफ टोकियो, खंड ३ इदि. संपु. १–४. १६२५।१६२७–१९३२/१९३३
[निरवधिक. १६२५।१६२७–].
"५४२:ढ८७ जर्नल आफ दि कालेज आफ साइंस, इम्पीरियल युनिर्वसिटी आफ टोकियो में से अनेकीभूत."

१.५ ट ढं ४२: थ २५
जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पीरियल युनिर्वसिटी आफ टोकियो, खंड ४ इदि. संपुक्त १–२ १६२५।१६२६–१९२८–१९३१
[निरवधिक. १६२५।१६२६–].
"५४२: ढ ८७ जर्नल आफ दि कालेज आफ साइंस, इम्पीरियल युनिर्वसिटी आफ टोकियो में से अगेकीभूत."

१.६ स ७ ढं ४२: थ २५
जर्नल आफ दि फेकल्टी आफ साइंस, इम्पीरियल युनिर्वसिटी आफ टोकियो, खण्ड ५, इदि. संपु. १*— . १६२५—.
[निरवधिक. १६२५– .]
"५४२: ढ ८७ जर्नल आफ दि कालेज आफ साइंस, इम्पीरियल युनिर्वसिटी आफ टोकियो में से अनेकीभूत."

*सब से अन्त में उल्लिखित समुच्चित का प्रथम संपुट भी १६३४ तक पूर्ण न हो पाया था। प्रथम संपुट की पूर्णता पर उपरोक्त चिन्ह मिटा देना चाहिए। ८६०१ प्रधान पत्रक में पृष्ठ भाग के दक्षिण पार्श्व में उन सभी एकात्मक पुस्तकों का निर्देश होगा जो सामयिक प्रकाशन के भाग रूप में विद्यमान होंगी।

८६१ अनुगतम्

अनुगत

८६१ ८-धारा-परिगणित-६१ प्रकारक-जटिलतायाम् अनुगतस्य विषयान्तर-संलेखः।

८६१० ७२१ धारा-अनुकरणम्।

८६१	यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ६१ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र अनुगतस्य विषयान्तर-संलेखः लेख्यः ।
८६१	जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ६१ प्रकार की जटिलता हो वहां अनुगत के लिए विषयान्तर-संलेख लिखा जाय ।
८६१०	७२१ धारा का अनुकरण करना चाहिए ।
८६२२०	**१४३ धारोपधाराः प्रमाणम् ।**
८६२३	**सामयिक-प्रकाशन-संपुट-सह-संपुटित-पूर्वोक्त-प्रकारक-अनुगतम् ६१ प्रकारक-वत् ।**
८६२	यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ६२ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र प्रत्येकम् एकात्मकम् अनुगतं पुस्तकं वा सामयिक-प्रकाशनात् पृथक् कार्यम् ।
८६२०	पूर्वोक्तस्य पृथक्कृतस्य अनुगतस्य पुस्तकस्य वा सूची-करणं पृथक् पुस्तकवत् कार्यम् ।
८६२१	सामयिक-प्रकाशनस्य यथोचिते प्रधान-पत्रके अति-रिक्ताधिसूचनं लेख्यम् ।
८६२१०	तत् उद्धार-कोष्ठके लेख्यम् ।
८६२११	तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः ।
८६२२	पृथक्कृतस्य पुस्तकस्य प्रधान-पत्रके यथोचितम् उद्-गृहीत-अधिसूचनं लेख्यम् ।
८६२२०	उद्गृहीतस्य अधिसूचनस्य लेखने १४३ धारा तदीया उपधाराश्च प्रमाणत्वेन स्वीकार्याः ।

८६२३ पूर्वोक्त-प्रकारकम् अनुगतं कदाचित् सामयिक-प्रकाशनस्य संपुटेन सह संपुटितं चेत् तस्य सूचीकरणं तथा कार्यं यथा तत् ६१ प्रकारकं स्यात् ।

८६२ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ६२ प्रकार की जटिलता हो वहां प्रत्येक एकात्मक अनुगत अथवा पुस्तक को सामयिक प्रकाशन से पृथक् किया जाय ।

८६२० पूर्वोक्त पृथक् किए हुये अनुगत अथवा पुस्तक का सूचीकरण पृथक् पुस्तक की भांति किया जाय ।

८६२१ सामयिक प्रकाशन के यथोचित प्रधान-पत्रक म अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय ।

८६२१० वह उद्धार-कोष्ठक में लिखा जाय ।

८६२११ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं।

८६२११० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ 'अनुगत के लिए द्रष्टव्य' यह वाक्यांश प्रथम अंश होता है; और

२ पृथक् की हुई पुस्तक की क्रामक-समंक द्वितीय अंश होता है;

८६२११०१ प्रत्येक क्रामक-समंक पृथक् वाक्य माना जाय ।

८६२२ पृथक् की हुई प्रत्येक पुस्तक के प्रधान-पत्रक में यथोचित उद्गृहीत-अधिसूचन लिखा जाय ।

८६२२० उद्गृहीत-अधिसूचन के लिखने में १४३ धारा और उसकी उपधारा प्रमाण रूप से स्वीकार की जाय ।

८६२३ पूर्वोक्त प्रकार का अनुगत कदाचित् सामयिक-प्रकाशन के संपुट के साथ संपुटित हो तो सूचीकरण उस प्रकार किया जाय मानों वह ६१ प्रकार का हो ।

८६३ ८-धारा-परिगणित-६३ प्रकारक जटिल-तायाम् अनुगत-कक्षाः स्वतंत्र-सामयिक-प्रकाशन-वत् ।

८६३१ **प्रधान-प्रकाशन-प्रधान-पत्रके अतिरिक्ताधि सूचनम् ।**

८६३१० **उद्धार-कोष्ठके ।**

८६३११ **तत्रांशौ द्वौ ।**

८६३११० **यथा—**

१ अनुगत-वर्ग-समंकाख्ये;

२ 'इति अनुगतम्' इति वाक्यांश ।

८६३११०१ **प्रति-अनुगतं पृथक् वाक्यम् ।**

८६३२ **अनुगत-प्रधान-पत्रके अतिरिक्ताधिसूचनम् ।**

८६३२० **उद्धार-कोष्ठके ।**

८६३२०१ **तत्रांशौ द्वौ ।**

८६३२०१० **यथा —**

१ प्रधान-प्रकाशन-वर्ग-समंक-आख्ये;

२ 'इत्यस्य प्रस्तुतम् अनुगतम्' इति वाक्यांशः च ।

८६३ यत्र ८ धारायां परिगणितेषु प्रकारेषु ६३ प्रकारका जटिलता स्यात् तत्र अनुगत-कक्षायाः सूचीकरणं तथा कार्यं यथा तत् स्वतन्त्र-सामयिक-प्रकाशनं स्यात् ।

८६३१ प्रधान-प्रकाशनस्य संवादिनि प्रधान-पत्रके अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम् ।

८६३१० तत् उद्धार-कोष्ठके लेख्यम् ।

८६३११ तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः ।

८६३२ अनुगतस्य प्रधान-पत्रके अतिरिक्तम् अधिसूचनं लेख्यम् ।

८६३२० तत् उद्धार-कोष्ठके लेख्यम् ।

८६३२०१ तस्मिन् अधिसूचने द्वौ अंशौ भवतः ।

८६३ जहां ८ धारा में परिगणित प्रकारों में से ६३ प्रकार की जटिलता हो, वहां अनुगत कक्षा का सूचीकरण उस प्रकार किया जाय मानों वह स्वतन्त्र सामयिक - प्रकाशन हो ।

८६३१ प्रधान प्रकाशन के संवादी प्रधान-पत्रक में अतिरिक्त अधिसूचन लिखा जाय ।

८६३१० वह उद्धार-कोष्ठक में लिखा जाय ।

८६३११ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं ।

८६३११० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ अनुगत का वर्ग-समंक और आख्या प्रथम अंश होता है;

२ 'इससे अनुगत' यह वाक्यांश द्वितीय अंश होता है;

८६३११०२ प्रत्येक अनुगत पृथक् वाक्य माना जाय ।

८६३२ अनुगत के प्रधान-पत्रक में अतिरिक्त - अधिसूचन लिखा जाय ।

८६३२० वह उद्धार-कोष्ठक में लिखा जाय ।

८६३२०१ उस अधिसूचन में दो अंश होते हैं ।

८६३२०१० वे अंश निम्नलिखित हैं :—

१ प्रधान-प्रकाशन का वर्ग-समंक और आख्या प्रथम अंश होता है;

२ 'इसका प्रस्तुत अनुगत' यह वाक्यांश द्वितीय अंश होता है;

८६३२०१० इस अध्याय की धारा ८९३ के अन्तर्गत उदाहरण ३.२५ द्रष्टव्य है ।

८६२ **८-धारा-परिगणित-६२ प्रकारक-जटिलतायां प्रति-एकात्मक-अनुगत-पुस्तक-अन्यतरत् पृथक्कार्यम् ।**

८६२०　**पृथक्-पुस्तकवत्।**

८६२१　**सामयिक-प्रकाशन-प्रधान-पत्रके अति-रिक्ताधिसूचनम्।**

८६२१०　**उद्धार-कोष्ठके।**

८६२११　**तत्रांशौ द्वौ।**

८६२११०　**यथा —**

१ 'अनुगताय द्रष्टव्यम्' इति वाक्यांशः;

२ पृथक्कृत-पुस्तक-क्रामक-समंकः च।

८६२११०१　**प्रत्येकं पृथक् वाक्यम्।**

८६२२　**पृथक्कृत-पुस्तक-प्रधान-पत्रके उद्गृहीत-अधिसूचनम्।**

८६४　**प्रधान-सामयिक-प्रकाशन-समूहक-निर्देशि-समाविष्ट-पृथक्-सामयिक-प्रकाशन-पृथक्-पुस्तक-सूचीकृत-अनुगत, समूहक-निर्देशि-यथोचित-संपुटेषु पृथक्कृत-अनुगत-वर्ग-क्रामक-समंकान्यतरः।**

८६४　पृथक्-सामयिक-प्रकाशन-वत् पृथक् पुस्तक-वत् वा सूचीकृतानि अनुगतानि प्रधानस्य सामयिक-प्रकाशनस्य समूहक-निर्देशिनि समाविष्टानि चेत् समूहक-निर्देशिनः यथोचितेषु संपुटेषु पृथक्कृतानाम् अनुगतानां वर्ग-समङ्काः क्रामक-समङ्काः वा लघु-पत्र-खण्डेषु लिखित्वा मुद्रापयित्वा वा यथोचितं निवेशनीयाः।

८६४ पृथक् सामयिक प्रकाशन की भांति अथवा पृथक् पुस्तक की भांति सूचीकृत अनुगत यदि प्रधान सामयिक-प्रकाशन के समूहक-निर्देशी में समाविष्ट हों, तो समूहक-निर्देशी के यथोचित संपुटों में पृथक् किए हुए अनुगतों के वर्ग-समंक अथवा क्रामकसमंक लघु-पत्र-खण्डों में लिखकर अथवा छापकर यथोचित अन्दर लगाए जायं।

८६४ उदाहरण

१.१ ५०२: २: थ२७

जर्नल आफ ओरिएन्टल रिसर्च. संपु. १–७. १९२७—१९३३
[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९२७–].
"अनुगतों के लिए द्रष्टव्य फ६६शं ख७०:१ १५ च २. द १५: २
ख ३५: २६ च १. न ३१: ख सशं १०१ च०".

१.२ फ ६६ शं ख ७०: १ १५ च २

मण्डन मिश्र.

विभ्रमविवेक एस. कुप्पुस्वामी शास्त्री तथा टी. वी. रामचंद्र दीक्षीतार संपा.

(मद्रास ओरिएन्टल सीरीज, १). (जर्नल आफ ओरिएन्टल रिसर्च, संपु. १, १९२७ का अनुगत).

६१६१६

१.३ द १५: २ख३५: २६ च १

भास.

वीणावासवदत्तम्. एस. कुप्पुस्वामी शास्त्री भूमिकाकार.

(मद्रास ओरिएन्टल सीरीज्, २). (जर्नल आफ ओरिएन्टल रिसर्च, संपु. १, ३–५, १९२७, १९२९–१९३१ का अनुगत)

६१६१७

१.४ न ३१: खशं १०१ च०

तोल्कावियम् . . . .अंग्रेंजी व्याख्या सहित, पी. एस. सुब्रह्मण्य शास्त्री संपा. संपु. १. एलुत्तिकारम्.
(मद्रास ओरिएन्टल सीरीज़, ३).(जर्नल आफ़ ओरिएन्टल रिसर्च, संपु. २–४, १६२८–१६३० का अनुगत).

६१६१८

जटिलता-संकर

अब तक हमने गणितज्ञों की प्रथा का अनुसरण करते हुए प्रत्येक प्रकार की जटिलता का पृथक् रूप से विचार किया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमने उन्हीं उदाहरणों की चर्चा की है जिनमें विशिष्ट प्रकार की कोई जटिलता स्वतन्त्र रूप से एक मात्र विद्यमान थी और उसके साथ किसी प्रकार की जटिलता मिश्रित न थी। यह केवल इसी उद्देश्य से किया कि विषय भली भांति आगे बढ़े। किन्तु वास्तविक जीवन में जटिलताएं इस प्रकार एक एक करके नहीं आतीं। यही बात सामयिकों के सम्बन्ध में भी है। कदाचित् ही ऐसा होता हो कि वास्तविक व्यवहार में कोई मूल जटिलता स्वतन्त्र रूप से कहीं विद्यमान हो। इसके विपरीत प्रत्येक प्रकार की जटिलताएं मिश्रित हो कर अपना चमत्कार दिखाया करती हैं। ऐसी परिस्थिति में सभी ज्ञातव्य बातों का उल्लेख होना चाहिए। अनुसन्धान की सुविधा के लिए हम यह व्यवस्था कर सकते हैं कि विभिन्न अधिसूचनों को विभिन्न नामों से पुकारें। जो अधिसूचन वृत्त कोष्ठकों में लिखे हों वे प्रथम जाति के अधिसूचन कहे जायँ; जो ऋजुकोष्ठकों में लिखे हों वे द्वितीय जाति के अधिसूचन कहे जायँ; जो वक्र-कोष्ठकों में लेख्य हों वे तृतीय जाति के अधिसूचन कहे जायँ; तथा जो उद्धारचिन्हों में लिखे हों वे चतुर्थ जाति के अधिसूचन कहे जायँ। यदि विभिन्न जाति के दो अथवा अधिक अधिसूचन एक ही प्रधान-पत्रक में आयें तो उस प्रधान-पत्रक के लिखने के लिए निम्नलिखित धाराएँ व्यवहार में लाई जायँ।

८९१ सजाति-अधिसूचनानि एकानुच्छेदे।

८९१० पृथक् वाक्यम्।

८९२ विजातीयानि पृथक्।

८९३ **अधिसूचन-विभिन्न-जातिक-अनुच्छेदाः यथा-जाति-नाम-समंकानुक्रमम् ।**

८९१ सजातीयानि अधिसूचनानि एकस्मिन्नेव अनुच्छेदे लेख्यानि ।

८९१० प्रत्येकम् अधिसूचनं पृथक् वाक्यं ज्ञेयम् ।

८९२ विजातीयानि अधिसूचनानि विभिन्नेषु अनुच्छेदेषु लेख्यानि ।

८९३ अधिसूचनानां विभिन्नाभिः जातिभिः निर्मिताः अनुच्छेदाः जातेः नाम्नः समङ्कस्य क्रमम् अनुसृत्य अन्योन्यं व्यवस्थापनीयाः ।

८९१ सजातीय-अधिसूचन एक ही अनुच्छेद में लिखे जायं ।

८९१० प्रत्येक अधिसूचन पृथक् वाक्य माना जाय ।

८९२ विजातीय-अधिसूचन विभिन्न अनुच्छेदों में लिखे जायं ।

८९३ अधिसूचनों के विभिन्न जातियों से निर्मित अनुच्छेद जाति-नाम के समंक के क्रम का अनुसरण करके आपस में व्यवस्थित किए जायं ।

८९३ निम्नलिखित उदाहरण सामान्य प्रकार के हैं:—

१.१ इढ३:ट६०१

एब्स्ट्रेक्ट्स ऑफ दि पेपर्स प्रिंटेड इन दि फिलॉसॉफिकल ट्रान्जेक्शन्स ऑफ दि रॉयल सोसायटी ऑफ लन्दन. संपु. १–४. १८००/१८१४–१८३७/१८४३.

[निरवधिक. १८००/१८१४–१८३७/१८४३].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.२ इ ढ ३: ट ६० १ सन्तत १.

एबस्ट्रेक्ट्स ऑफ दि पेपर्स ऑफ रॉयल सोसायटी आफ लन्दन. संपु. ५–६. १८४३/१८५०–१८५०/१८५४.

[निरवधिक. १८४३/१८५०–१८५०/१८५४].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.३ इढं३:ट६०१ सन्तत २.

प्रोसीडिंग्स आफ दि रायल सोसायटी आफ लन्दन. संपु. ८–५३. १८५६/१८५७–१८६३.

[निरवधिक. १८५५/१८५६–१९०४-१९०५].

"च ढं ३: ट ६०१ प्रोसीडिंग्ज आफ दि रायल सोसायटी आफ लन्दन, सीरीज् बी. इदि. अंशतः अनेकीभूत".

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

१.४ इ ढं ३: ट ६०१ सन्तत ३.

प्रोसीडिंग्स आफ दि रायल सोसायटी आफ लन्दन. सीरीज ए. इदि. संपु. ११५–१४२. १९२७–१९३३.

[निरवधिक. संपु. ७६– . १९०५–].

१.५ च ढं ३: ट ६०१

प्रोसीडिंग्स आफ दि रायल सोसायटी आफ लंदन. सीरीज्. बी. इदि. संपु. ७७–९५. १०१–११३ १९०५/१९०६–१९२३. १९२७–१९३३

[निरवधिक. संपु. ७६– . १९०५–].

"इ ढं ३: ट ६०१ प्रोसीडिंग्स आफ दि रायल सोसायटी आफ लन्दन में से अंशतः अनेकीभूत".

२.१ ऊ ढं २: थ ०७

जर्नल आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल क्लब. संपु. १–२. १९०८–१९१०

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९०८–१९१०].

{ १९०९ में संपु. नहीं} { संपु. १–२ सहसंपुटित }.

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

२.२ ऊढं २: थ ०७ सन्तत १.

जर्नल आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी. संपु. ३–१४. १९११–१९२२.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९११–१९२२].

{ संपु. ३–४; ५–६; ७–८; ९–१०; ११–१२; १३–१४ सह-संपुटित }.

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

२.३ ऊ ढं २: थ ०७ सन्तत २.

जर्नल आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी. संपु. १५–१९. १९२३/१९२४–१९३१/१९३२.

[१ संपु. प्रति दो वर्ष. १९२३/१९२४–१९३१/१९३२].

"संपु. १६ से लेकर प्रत्येक संपुट के साथ ऊ नं २: थ १६ रिपोर्ट आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी, कान्फरेन्स अनुगत है."

"ऊ ढं २: थ ०७१ मेथमेटिक्स स्टूडेन्ट आफ दि इण्डियन मेथ-मेटिकल सोसायटी इस प्रकार अंशतः अनेकीभूत".

२.४ ऊ ढं २: थ ०७१

मेथमेटिक्स स्टूडेन्ट आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी. संपु. १– . १९३३–.

[१ संपु. प्रतिवर्ष. १९३३–].

"ऊ ढं २: थ०७ जर्नल आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी में से अंशतः अनेकीभूत."

२.५ ऊ नं२: थ१६

रिपोर्ट आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी, कान्फेरेन्स. संपु. ४–७. १९२४–१९३१.

[१ संपु. प्रति दो वर्ष. १९२४–].

[संपु. ४ तथा ५ ऊ ढं २: थ०७ इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी जर्नल के क्रमशः संपु. १५ तथा १६ के साथ संपुटित]. [संपु. १–४ पृथक् प्रकाशित नहीं, अपितु ऊढं२:थ०७ जर्नल आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी के संपु. ६, ११, १३ तथा १५ में समाविष्ट].

"ऊ ढं २: थ०७ जर्नल आफ दि इण्डियन मेथमेटिकल सोसायटी का अनुगत."

३.१ क ढं ५५: ड ६६

अनालन देर् फीजीक बी. १–३०; ३१–६०(=नाइय फाल्ग बी १–३०). १७९९–१८१९.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १७९९–१८१९].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.२ क ढं ५५: ड ६६ सन्तत १.

अनालन देर् फीजीक् उन्त देर् फीजीकालिशन खेमी बी. ६१–७६. (=नाएस्त फाल्ग बी. १–१६). १८१९–१८२४.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १८१९–१८२४].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.३ क ढं ५५: ड ६६ सन्तत २.

अनालन देर् फीजीक् उन्त खेमी बी. १–११. (–गान्त्स फाल्ग ७७–८७). १८२४–१८२७.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १८२४–१८२७].

"प्रत्येक संपुट में एक अवान्तर आख्यापत्र है, जिस में अनालन् देर फीजीक आख्या दी हुई है."

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.४ क ढं ५५: ड ६६ सन्तत ३.

अनालन देर् फीजीक् उन्त खेमि बी. १२–३० (=गान्त्स फाल्ग ८८–१०६). १८२८–१८३३.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १८२८–१८३३].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.५ क ढं ५५: ड ६६ सन्तत ४.

अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी बी. ३१–६० (=रैअ २, बी. १–३० =गान्त्स फाल्ग १०७–१३६). १८३४-१८४३.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १८३८–१८४३].

"क ढं ५५: ड ६६१ अनालन् देर फीज़ीक् उन्त खेमी, एर्गेन्त्सुङ-स्वान्त से अनुगत."

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.६ क ढं ५५: ड ६६ सन्तत ५.

अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी बी. ६१–६० (=रैअ ३, बी. १–३० =गान्त्स फाल्स १३७-१६६). १८४४–१८५३.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १८४४–१८५३].

"क ढं ५५: ड ६६१ अनालन् देर फीज़ीक् उन्त खेमी, एर्गेन्त्सुङ-स्वान्त से अनुगत."

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.७ क ढं ५५: ड ६६ सन्तत ६.

अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी. बी. ६१–१२० (=रैअ ४, बी. १–३० =गान्त्स फाल्ग १६७–१६६). १८५४–१६६३.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १८४५–१८६३].

"क ढं ५५: ड ६६१ अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी, एर्गेन्त्सुङस्वान्त से अनुगत."

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.८ क ढं५५: ड ६६ सन्तत ७.

अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी. बी. १२१–१५० (=रैअ ५, बी. १–३० =गान्त्स फाल्ग १६७– २२६ २६). १८६४–१८७३.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १८६४–१८७३].

"क ढं ५५: ड ६६१ अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी, एर्गेन्त्सुङस्वान्त से अनुगत."

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.९ क ढं ५५: ड ९९ सन्तत ८

अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी बी. १५२–१६० (=रैअ ६, बी. १–३० =गान्त्स फाल्ग २२७–२३६) १८७४–१८७७.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १८७४–१८७७].

"क ढं ५५: ड ९९१ अनालन् देर् की फीज़ीक् उन्तखेमी, एर्गेन्त्सुङस्वन्त स्वान्त से अनुगत." "क झंड ९ ६ इ से अनुगत."

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.१० क ढं ५५: ड ९९ सन्तत ९.

अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी. नाइय फाल्ग बी. १–६९ (=गान्त्स फाल्ग २३७–३०५). १८७७–१८९९.

[३ बी. प्रतिवर्ष १८७७–१८९९].

"क ढं ५५: ड ९९१ अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी, एर्गेन्त्सुङस्वान्त से अनुगत."

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.११ क ढं ५५: ड ९९ सन्तत १०.

अनालन देर् फीजीक्. फाल्ग ४. बी १–८७ (=गान्त्स रैअ ३०६–३९२). १९००–१९२८.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १९००–१९२८].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.१२ क ढं ५५: ड ९९ सन्तत ११.

अनालन् देर् फीजीक्. फाल्ग ५, बी १–३ (=गान्त्स रैअ ३९२–३९५). १९२९.

[३ बी. प्रतिवर्ष. १९२९].

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.१३ क ढं ५५: ड ९९ सन्तत १२.

अनालन् देर् फीज़ीक्. फाल्ग ५, बी. ४–१५ (=गान्त्स रैअ ३९६–४०७). १९३०–१९३२.

अनन्तर पत्रक में सन्तत.

३.१४ क ढं ५५: ड ९९ सन्तत १३.
अनालन् देर् फीज़ीक् फाल्ग ५., बी. १६–१९ (गान्त्स रैअ ४०८–४११). १९३३–
[३ बी. प्रतिवर्ष. १९३३].

३.१५ क ढं ५५: ड ९९१
अनालन देर् फीज़ीक् उन्त खेमी, एर्गेन्त्सुङ्स्वान्त. बी. १-८. १८४२-१८७८.
[निरवधिक. १८४२-१८८८]
"क ढं ५५: ड ९९ अनालन् देर् फीजीक् उन्त खेमी का अनुगत."

३.१६ क ढं झं ड ९६ इ
अनालन देर् फीज़ीक् उन्त खेमी, मुबेल्बान्त् देम् हेरौस्गेबर् योत्. त्से. फाग्गेन्दार्फ इदि.
"क ढं ५५: ड ९९ अनालन् देर् फीज़ीक् उन्त खेमी का अनुगत."
५००१

उपर्युक्त विवेचन से यह भली भांति स्पष्ट हो गया होगा कि सामयिक प्रकाशनों की समस्याओं का सुलझाना सरल कार्य नहीं है। किन्तु सामयिक प्रकाशन ही किसी जाति-विशेष की गवेषणा-प्रवृत्ति का मेरु-दण्ड माना जाता है। वही उनका प्राण-तत्त्व होता है। अतः संसार के अधिकांश देशों में ग्रन्थालय-व्यवसाय, विद्वत्-समष्टियां, विश्वविद्यालय तथा प्रशासन—इन सब में सहयोग-भावना का अभ्युदय हुआ है; जिसका उद्देश्य यह है कि विभिन्न ग्रन्थालयों को सुविधाएं प्रदान की जायं तथा ग्रन्थालय सूची को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाया जाय। प्रामाणिकता के बिना खोज कार्य को गति नहीं मिल सकती। इस प्रकार के सहयोग से कई देशों में अनेक ग्रन्थसूची-सम्बन्धी साधनों का सृजन हुआ है। इस प्रकार के ग्रन्थसूचीय स्रोतों की विस्तृत सूची १९३१ में लायब्रेरी आफ कांग्रेस द्वारा प्रकाशित गाइड टु दि केटलागिंग आफ दि सीरियल पब्लिकेशन्स आफ सोसायटीज एण्ड इन्स्टीटयूशन्स, आवृ. २ के अ. ७६–११९ पर है। यह ठीक है कि कुछ स्रोतों का मूल्य नगण्य-सा है, किन्तु उन में से कतिपय स्रोत ऐसे भी हैं जिन की विशदता तथा प्रामाणिकता देख कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। इस प्रकार का एक उदाहरण, लायब्रेरी आफ कांग्रेस के सहयोग द्वारा कार्निजी इन्स्टीटयूशन आफ

वाशिंगटन से उसकी ग्रन्थमाला के ३९वें अवदान के रुप में १९०८ में प्रकाशित हेण्डबुक आफ लर्नेड सोसायटीज़ एण्ड इन्स्टीटयूशन्सः अमेरिका है। इस प्रकार का दूसरा उदाहरण हैः—बुलेटिन आफ दि नेशनल रिसर्च कौन्सिल आफ दि युनाइटेड स्टेट्स के ७६वें अवदान के रूप में १९३० में प्रकाशित हेण्डबुक आफ साइन्टिफिक एण्ड टेकनिकल सोसायटीज़ एण्ड इन्स्टीटयूशन्स आफ दि युनाइटेड स्टेट्स एण्ड केनाडा।

भारत को भी इस प्रकार के ग्रन्थों का निर्माण करना है। जो ग्रन्थालय सूचीकरण में परिपूर्णता तथा तत्परता एवं सेवा में समर्थता को अपना उद्देश्य मानते हैं ऐसे ग्रन्थालयों को इस प्रकार के ग्रन्थों का अभाव बड़ा ही खटकता है। संसार के कतिपय देश अठारहवीं शताब्दी में ही पर्याप्त संख्या में सामयिक का प्रकाशन आरम्भ कर चुके थे; किन्तु भारत ने उनका अनुगमन उन्नीसवीं शताब्दी में जा कर प्रारम्भ किया है। और इसका भी अधिकांश श्रेय उन पश्चिमी विद्वानों के अग्रगामी उद्योगों को दिया जायगा जिन्होंने भारतवर्ष में आधुनिक गवेषणा का श्रीगणेश किया। किन्तु वर्तमान शताब्दी में, सामयिक प्रकाशनों के प्रवर्तन तथा विद्वत् संस्थाओं के स्थापन का चलन देश की सन्तानों पर आ पड़ा है, और परिणाम यह हो रहा है कि पर्याप्ति मात्रा में प्रकाशन होता चला जा रहा है। हाँ, साथ ही यह भी मानना ही पड़ेगा कि उनमें से अनेक शैशवावस्था में काल-कवलित हो जाते हैं, अनेकों का विवाह-सम्बन्ध होता है, अनेक सम्बन्ध-विच्छेद करते हैं, अनेकों को लकवा मार जाता है, अनेक मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं तथा अनेक पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के प्रकाशनों को जिन कठिनाइयों से टक्कर लेनी पड़ती है उनकी संख्या बड़ी विस्तृत है। भारत में न तो संगठित ग्रन्थालय-व्यवसाय ही है, न ग्रन्थ प्रकाशक-व्यापार है और न ही ग्रन्थ-विक्रेतृ व्यवसाय है— इनके सर्वथा अभाव के कारण भी बड़ी-बड़ी बाधाएं उपस्थित होती हैं। उन सामयिक प्रकाशनों की समस्याओं को सुलझाने का कार्य ग्रन्थालयों के लिए और भी जटिलतर हो जाया करता है।

यह कहा ही जा चुका है कि प्रत्येक समुन्नत देश में प्रतिभा-संपन्न महापुरुष, गौरव एवं विद्वत्तापूर्ण नरपुंगव, ग्रन्थालयियों एवं वांगमय सूचीकारों के व्यावसायिक संघटन, प्रकाशकों के तथा ग्रन्थ विक्रेताओं के संघ, स्वयं विद्वत्-समष्टियां, विश्वविद्यालय, राज्य तथा राष्ट्र की गवेषणा के अग्रदूत के रूप में कार्य करने के लिए विशेषतः स्थापित, नेशनल रिसर्च कौन्सिल (राष्ट्रीय गवेषणा

परिषद्) जैसी अर्थ-प्रशासनीय समष्टियां, इसी प्रकार के उद्देश्य की सिद्धि के लिए उदार धन कुबेरों की निधियों द्वारा स्थापित कार्निजी इन्स्टीटयूशन आफ वाशिंगटन तथा स्मिथसोनियन इन्स्टीटयूशन जैसे संघटन अपनी-अपनी बौद्धिक तथा भौतिक सामग्रियों को एक सूत्र में आबद्ध कर रहे हैं तथा पूर्वोक्त प्रकार की सभी ग्रन्थ-सूची विषयक ग्रन्थियों को सुलझा रहे हैं। उनके कार्यों से हमारे देशवासी लाभ उठा रहे हैं तथा चिरकाल तक उठाते रहेंगे। वे स्रोत सूचना तथा अवगम के महान् भण्डार सिद्ध होते रहेंगे। यह उचित नहीं है कि हम संकुचित राष्ट्रीय-भावना के कारण पथ भ्रष्ट हो जायं और उन मार्ग-दर्शकों की सहायता से अपने को वंचित कर लें। हमें उनसे लाभ उठाते रहना चाहिए।

किन्तु क्या हम इतने निर्धन हो गए हैं कि हम उन्हें बदले में कोई भी वस्तु नहीं दे सकते? इस प्रकार से ज्ञान के स्रोत का एक देशमुखी प्रवाह हमारे आत्म-सम्मान को आघात नहीं पहुंचाता? ग्रन्थसूची-विषयक सेवा-सुविधा का यह एक देशमुखी प्रवाह हमारी अन्तर्राष्ट्रीय आत्म गौरव की भावना के लिए अवश्य ही हानिकारक है। बुद्धि के चमत्कारों में, सामग्री तथा आविष्कार की दौड़ और संपन्नता में, अत्याधिक प्रतिभाशाली विभूतियों का जन्म देने में हम किसी भी देश से एक कदम भी पीछे नहीं हैं। हम किसी भी देश से समानता का दावा कर सकते हैं। किन्तु अब भी, त्याग एवं सहयोग की भावना से प्रभावित तथा विद्या-विषयक प्रवृत्ति से विशिष्ट त्यागी एवं निस्वार्थी कार्यकर्ताओं का अभाव ही है। यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि ऐसे कार्यकर्ता धीरे-धीरे क्षेत्र में उत्तर रहे हैं। किन्तु अभी उन की संख्या नगण्य-सी है। यह माना कि भाषा-विषयक, प्रान्तीय, जातीय तथा सांप्रदायिक कारणों द्वारा परिपोषित क्षुद्रतर भावनाएं तथा प्रवृत्तियां बल पकड़ती हैं। किन्तु ऐसे भी चिन्ह लक्षण दिखाई दे रहे हैं जिन से यह स्पष्ट है कि सहकार्य-कर्त्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का उदय तथा समुद्योगों का केन्द्रीकरण होता जा रहा है। हमारी स्वतन्त्रता ने हमारा काया-कल्प कर दिया है। हम में अद्भुत शक्ति एवं स्फूर्ति आ गई है। भारतीय विज्ञान परिषद (इण्डियन एकेडेमी आफ साइन्सेज) तथा भारतीय ग्रन्थालय संघ जैसी संस्थाएं इस दिशा में पर्याप्त कार्य कर चुकी हैं तथा करती जा रही है। ऊपर जिस मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध तथा समुद्योगों के केन्द्रीकरण का उल्लेख किया जा चुका है वह ऐसा है जिस की ओर प्रतिभा, ज्ञान तथा धन की सरिता का प्रवाह कम न होगा। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हमारी गवेषणा शक्ति तथा ज्ञान-जगत् में हमारा आत्म-गौरव उत्तरोत्तर उन्नत होते रहेंगे।

पारिभाषिक-शब्दावली

अंशकार	Contributor
— निर्देशि-संलेख	— Index Entry
अंश लेख	Contribution
अग्ररेखा	Leading line
अग्राक्षर	Initial
अग्राक्षर नाम	Initionym
अग्रानुच्छेद	Leading Section
अंक	Digit
अंकन	Notation
अतिरिक्त	Additional
— संलेख	Added Entry
अद्वय	Unique
अधिकार-क्षेत्र	Jurisdiction
अधिसूचन	Note
अनुकूलक्रम	Helpful Order
अनुगत	Supplement
अनुच्छेद	Section
अनुलय-सेवा	Reference Service
अनुलयी	— Librarian
अनुवर्ग-क्रम	Classified Order
— निर्देशी	— Index
— सूची	— Catalogue
अनुवर्ण	Alphabetical
— कोश	Dictionary
— निर्देशी	Alphabetical Index

— सूची	Dictionary Catalogue
अनुस्यूत	Consecutive
अनेक-माला-अधिसूचन	Multiple Series note
— लक्ष्यक	Multi-focal
— संपुटक	— Volumed
अन्तरीण	Intermediate Item
अन्तर्मार्ग-दर्शक	Gangway Guide
अन्तर्विषय	Subject Analytical
अन्तर्विषयि-संलेख	Cross Reference Entry
अन्तर्विषयी	— Reference
अन्योन्यतन्त्र	Inter-dependent
अपूरितांकन	Open Notation
अल्प विराम	Comma
अल्पाकार	Under-Sized
अवदान	Fascicule; Issue (of periodicals); Number (of a periodical)
अवाञ्छित लक्ष्य	Unsought link
अवान्तर	Alternative
अवान्तर आख्या	— Title
— नाम	— Name
— संलेख	— Name Entry
अस्तित्व-पत्र	Inventory
अस्थायि कक्षा	Temporary Sequence
आख्या	Title
— अन्तर-अधिसूचन	Change of Title Note
— निर्देशि-संलेख	Title Index Entry
— पत्र	— Page
— पृष्ठ	Back of the Title page
— प्रथम-पद-संलेख	First Word of Title Entry

आधार	Receptacle
आनुवंशिक	Hereditary
आवर्तित सामयिक	Serial
— सूची	Bibliography of Serials
— संलेख	Title Entry
आवृत्ति	Edition
आश्लिष्ट	Phased
आश्लेष	Phase
— सम्बन्ध	— Relation
आसंग	Open Access
इष्टदेश	Favoured Country
— भाषा	— Language
— लिपि	— Script
उद्ग्रहण-अधिसूचन	Extraction Note
उद्गृहीत	Extract
— अधिसूचन	— Note
उद्धार-कोष्ठक	Inverted Comma
उन्मुद्रण	Offprint, Reprint, Separate
उपकल्पन	Rendering
उपनाम	Secondary Name
उपमंडल	Taluk
उपमाला	Minor Series
उपवर्ग	Sub-Class
उप-विभाग	Sub-Division of a Department
उपशीर्षक	Sub-Heading
उपसमष्टि	Dependent Body
उपसूत्र	Canon

उपाख्या	Auxiliary Title, Half-Title
उपान्त्य	Penultimate
ऋजु-कोष्ठक	Square Bracket
एक-आत्मक	Monograph
— नामानि	Homonyms
— भागिक	Unipartite
— लक्ष्यक	Unifocal
— सम्पुटक	Single-Volumed
एकीकृत	Consolidated
एकीभाव	Amalgamation
ऐकिक-पत्रक-प्रणाली	Unit Card System
कक्षा	Sequence
कर्तृगण	Personnel, Staff
कल्प	Code
कल्पित-तथ्यनाम-संलेख	Pseudonym-Real-Name Entry
— नाम	Pseudonym
— माला	Pseudo-Series
कृति वर्णन	Bibliographical description
कृति-सूची	Bibliography of Books and Periodicals
केन्द्र	Head-Quarters
कोण-कोष्ठक	Angle Bracket
कोष्ठक	Bracket
क्रम-समंक	Ordinal Numbers
क्रमागत	Successive
क्रामक-समंक	Call Number
— संलेख	— Entry
क्षेत्र	Geographical Area
खातदर्शक	Bay Guide
ग्रन्थ	Embodied Thought

ग्रन्थक	Micro-Unit of Thought
ग्रन्थकार	Author
— निर्देशि-संलेख	— Index Entry
— विश्लेषक	— Analytical
— संलेख	— Entry
— सूची	— Catalogue
ग्रन्थ-दर्शक	Book Tag Guide
— पंजिका	Shelf Register
— व्यवस्थापन	Arrangement
— सूची	Bibliography
— सूचीकरण	Bibliographying
— सूचीकार	Bibliographer
ग्रन्थक-सूची	Analytical bibliography
ग्रन्थालय	Library
— लिपि	— Hand
— शास्त्र-पंच-सूत्री	Five Laws of Library Science
ग्रन्थालयी	Librarian
ग्राम	Village
चित्रकार-संलेख	Illustrator Entry
चिरगहन-ग्रन्थ	Classic
जटिल प्रकार	Complex Types
जटिलता-मिश्रण	Combination of Complexities
जीवन-चरित	Biography
ज्ञानकोश	Encyclopaedia (of a particular Subject)
तथ्य-नाम	Real name
तालिका	Schedule
दर्शक	Guide

— पत्रक	— Card
दशमलव-अंकन	Decimal Notation
— वर्गीकरण	— Classification
— समंक	— Number
देशक	Directing
द्वितीय-इष्ट-भाषा	Second Favoured Language
— माला	— Series
द्वितीयोर्ध्वा	— Vertical
द्विबिन्दु वर्गीकरण	Colon Classification
द्विभागिक	Bipartite
धारा	Rule
नगर	City
नव-माला	New Series
नाम-वृत्त	Who's Who
नामाद्य-शब्द	Forename
नामान्तर-निर्देशि-संलेख	Cross Reference Index Entry
नामान्त्य-शब्द	Surname
नियम	Regulation
निरर्थक, मिथ्या लक्ष्य या लक्ष्याभास	False link
निरवधि	Irregular
निर्धारणीयता का उपसूत्र	Canon of ascertainability
निर्देशक	Director
निर्देशिका	Directory
निर्देशि-संलेख	Index Entry
निर्देशी	Index
निर्धारण	Specification
निश्रेणि	Chain
निहित-कक्षा	Reserved Sequence
नैमित्तिक-पुस्तक	Associated Book
— अधिसूचन	— Note

न्याय	Principle
— विभाग	Judiciary
न्यायालय	Court of Law
पंक्ति	Array
पति	Crown
पत्रक	Card
— आकार-सूची	— Catalogue
— दर्शक	Tab
— पृष्ठ	Back of the Card
पत्र-पृष्ठ	Verso
पत्रादि-विवरण	Collation
पद	Term
पद्धति	Scheme
परंपरित	Subordinate
पराख्या	Later Title
परिगृहीता	Accession-Librarian
परिग्रहण	Accession
— समंक	— Number
परिपाटी	Routine
परिभाग	Division
परिसूत्र	Formula
पात्रक	Tray
पुनर्मुद्रित	Reprinted
पुरातन-प्रदर्शन	Museum
पुष्पिका	Colophon
पुस्तक	Book
— क्रम-पंजिका	Shelf Register
— पत्रक	— Card
— निर्देशि-संलेख	Book Index Entry
— समंक	— Number

पुस्तिका	Pamphlet
— कक्षा	Pamphlet Sequence
पूरितांकन	Closed Notation
पूर्ण-विराम	Full Stop
पूर्ण-समंक	Integer
पूर्वाख्या	Earlier Title
पृथक्-पुस्तक	Simple Book
प्रकारान्तर	Adaptation
प्रकाशक	Publisher
प्रकाशकीय-सूची	Publisher's Catalogue
प्रक्रिया	Procedure
प्रचलत्	Current
प्रचलन का उपसूत्र	Canon of currency
प्रणाली	System
प्रतिपाद्य-विषय	Subject-Matter
प्रथम-माला	First Series
प्रथमोर्ध्वा	— Vertical
प्रदर्शन-कार्य	Shelf Work
प्रदेश	Sub-State
प्रधान-वर्ग	Main Class
प्रधान-संलेख	— Entry
प्रमिति	Thesis
प्रस्तुत का उपसूत्र	Canon of context
प्रातिस्विक	Respective
फलक	Shelf
— दर्शक	Guide
बहुनामानि	Polyonyms.
बोध चिह्न	Signature symbol
भाग	Part
भाषान्तरकार	Translator
— संलेख	— Entry
भूमि-दर्शक	Tier Guide
मण्डल	District
मंत्रिमण्डल	Executive
महाकार	Over-Sized
मात्रा	Unit

मानपद	Honorific
मानित-पत्रक	Standard Card
माला	Series
— अधिसूचन	— Note
— निर्देशि-संलेख	— Index Entry
— समंक	Serial Number
— सम्पादक-संलेख	Editor of Series Entry
— संलेख	Series Entry
मुख	Facet
— परिसूत्र	— Formula
मुख्य-माला	Major Series
मुद्रक	Printer
— सूची	Printer's Catalogue
मुद्रणांक	Imprint
मूल-कृति	Original Works
मौलिक	Fundamental
योजक	Connecting
— अंक	— Symbol
रचना-तन्त्र	Gestalt Theory
रूप-अन्तर-संलेख	Variant form of Word Entry
रेखिका	Dash
लक्ष्य	Focus
लघु-आख्या	Short Title
लघुतर-विराम	Semi Colon
लघु विराम	Colon
लिंग	Characteristic
लिप्यन्तरीकरण	Transliteration
वक्र-कोष्ठक	Crooked Bracket

वरण	Choice
वर्ग	Class
— कार	Classifier
— निर्देशि-संलेख	Class Index Entry
— समंक	— Number
वर्गीकरण	Classification
— आचार्य	Classificationist
वर्णक	Descriptive
वर्ण-केवल-व्यवस्थापन	All-Through Alphabetisation
—क्रम	Alphabetical Order
—व्यवस्थापन	Alphabetisation
वाक्यांश	Phrase
विक्रेत्रीय सूची	Bookseller's Catalogue
विचारवाहक	Organ
विच्छेद	Splitting
विद्वत्-परिषद्	Learned Society
विभाग	Department
विराम-चिन्ह	Punctuation Mark
विरुद	Title (Decoration)
विलय	Absorption
विवरण	Annotation
विशिष्ट	Particular, Specific
— लिपि	Block Letters
— विवरण	Annotation
— विषय	Specific Subject
विशेष-अन्तर्विषयि-संलेख	Special Cross Reference Entry
विश्वकोश	Encyclopaedia (Generalia)

विषय-उपशीर्षक	Subject Sub-Heading
— शीर्षक	— Heading
— सूची	— Catalogue
विषयान्तर	Cross Reference
विसंगत पुस्तक	Artificial Composite Book
वृत्त कोष्ठक	Circular Bracket
व्यक्ति-साधक	Individualising
— साधन	Individualisation
— सिद्ध	Individualised
व्यनुकार	Parody
व्यवस्थापन	Arrangement
व्यष्टि-ग्रंथकार	Personal Author
— नाम	— Name
व्याख्याकार	Commentator
— संलेख	— Entry
व्याहत-प्रकाशन	Interrupted Publication
शासन	Administration
शीर्षक	Heading
संकेत-चिन्ह	Symbol
संक्रम का उपसूत्र	Canon of modulation
संक्षेप	Epitome
श्रेणी	Train
संक्षेपक	Epitomiser
संक्षेपण	Epitomisation
संख्या	Cardinal Number
संगत-पुस्तक	Composite Book
संग्रहण	Compilation
संग्राहक	Compiler
— संलेख	— Entry
संघटन	Organisation
संघात	Set

सन्तत-पत्रक	Continued Card
संलेख	Entry
संवादी	Consistent
संशोधक	Reviser
संस्था	Institution
सजाति-नाम-संलेख	Label Entry
समंक	Number
समपंक्ति	Co-ordinate
समरेखा	Horizontal Line
समष्टि	Corporate Body
— ग्रन्थकार	— Author
— नाम	— Name
समावेशांकन	Inclusive Notation
समासित-नाम	Compound Name
समिति	Committee
समीक्षा	Criticism
समुच्चय	Collection
समुच्चित-सामयिक	Periodical
— सूची	Bibliography of Periodicals
समूह	Group
समूहक-निर्देशी	Cumulative Index
समूह-वर्ग	Generalia Class
सम्पादक	Editor
— निर्देशि-संलेख	— Index Entry
— संलेख	— Entry
सम्पादन	Editing
सम्पुट	Volume
— अंकन	Volume Numbering

सम्पुटक	Binder
सम्पुटकीय सूची	Binder's Catalogue
सम्पुटन	Binding
— कक्षा	— Sequence
सम्पुट-समंक	Volume number
सम्पुट-समयान्तर-अधिसूचन	— Periodicity Note
सम्मेलन	Conference
सरणि	Process
सर्वानुवर्ण-सूची	Dictionary Catalogue
सहकार	Collaborator
— संलेख	— Entry
सह-ग्रन्थकार	Joint Author
— निर्देशि-संलेख	— Index Entry
— संलेख	— Entry
सह-व्यष्टि-ग्रन्थकार	— Personal-Author
सह-समष्टि-ग्रन्थकार	— Corporate-Author
सह-सम्पादक	— Editor
सहाय	Auxiliary
सहायक	Assistant
साधारण-प्रकाशन	Ordinary Publication
सापेक्षता का उपसूत्र	Canon of Relativity
सामयिक	Periodical Publication
सामयिक-सूची	Bibliography of Periodical Publication
सामान्य-लिपि	Ordinary Letter
सामूहिकाख्या	Generic Title
सारिणी	Table
सार्थक लक्ष्य	Significant link
सिद्धांत	Theory
सुरक्षणीय	Abnormal
— कक्षा	Closed Sequence
सुसंगत-पुस्तक	Ordinary Composite Book

सूची	Catalogue
सूचीकरण	Cataloguing
सूचीकार	Cataloguer
सूत्र	Law
सेव्य	Reader
स्वतन्त्र	Independent
स्थान-विभेद-जनित	Local Variation
स्मारक	Memorial

निर्देशी

संख्याओं द्वारा धारा के समंक का अनुसन्धान किया गया है। यदि "व्याख्या" पद समंक के पश्चात् दिया गया हो तो धारा-सम्बन्धी व्याख्या का अनुसंधान मानना चाहिए। यदि "अवतर." पद समंक के पश्चात् दिया गया हो तो धारा-सम्बन्धी अवतरणिका का अनुसन्धान मानना चाहिये।

सं. में उद्ध.—संबन्ध में उद्धृत.
सं. में उल्लि.—संबन्ध में उल्लिखित.

हेंडबुक आफ लर्नेड सोसायटीज एण्ड इन्स्टीटयूशन्स आफ अमेरिका, उल्लि., ८६३ व्याख्या.

हेंडबुक आफ साइन्टिफिक एण्ड टेकनिकल सोसायटीज एण्ड इन्स्टीटयूशन्स आफ दि युनाइटेड स्टेट्स एण्ड केनेडा, उल्लि., ८६२ व्याख्या.

हेत्वाभास, सूची के अधिकार के सं. में, ०१ अवतर.

CONDOLENCE MEETING

To mourn the sad demise of Dr S R Ranganathan, National Research Professor in Library Science and a pioneer of Library movement in India, a public meeting will be held on Monday, the 9th October, 1972 at 6 p. m. at the Students' Hall, College Square, Calcutta-12 Dr. B Mukherjee, President, IASLIC will preside. Your presence is solicited.

P 134, C. I. T. Scheme 52
Calcutta-14
29 September, 1972

S M Kulkarni
Secretary, Indian Association of Special Libraries & Information Centres

P Raychaudhury
Secretary, Bengal Library Association